माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

अहिल्या देवी

बनाम

सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड एवं अन्य

Cont. Case (C) No. 269 of 2008. Decided on 27th October, 2009.

पारिवारिक पेंशन—भुगतान न किया जाना—न्यायालय के पूर्वतर आदेश का पालन नहीं किया गया—अवमान कार्यवाही प्रारम्भ की गयी—फिर भी ब्याज का भुगतान न किया जाना अग्रेतर अवमान याचिका की दाखिला—अभिनिर्धारित, यह एक ऐसा विरल से विरलतम मामला है जहाँ किसी विधवा को, जिसके पति की मृत्यु 1991 में सेवाकाल में ही हो गयी, न्यायालय के बारम्बार निर्देश के बावजूद ब्याज की राशि का भुगतान नहीं किया गया है—राशि का भुगतान 10 दिनों के भीतर करने का आदेश दिया गया जिसमें असफल रहने पर प्रत्यर्थीगण उस तिथि से 22% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करने को दायी होंगे जिस तिथि से यह देय था। (पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—Mr. Ananda Sen, For the Opp. Party-C.C.L; M/s Deepak Roshan, Ratnesh Kr., For the Opp. Party - C.M.P.F..

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. यह अवमान कार्यवाही दिनांक 7.8.2006 के एक आदेश से उद्भूत होती है। याची का पति विद्युत फिटर के तौर पर कार्यरत प्रत्यर्थी-सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड की सेवा में था। कार्यरत रहते हुए दिनांक 6.11.1991 को उसकी मृत्यु हो गयी। याची ने कुटुम्ब पेंशन का दावा किया जिसे प्रत्यर्थी, क्षेत्रीय कमिश्नर, कोयला खान भविष्य निधि द्वारा दिनांक 28.10.1996 के पत्र के तहत ठुकरा दिया गया। याची ने पुनः प्रत्यर्थी को अभ्यावेदन दिया और कुटुम्ब पेंशन का दावा किया। लेकिन कुटुम्ब पेंशन का भुगतान नहीं किया गया और याची उपर्युक्त रिट याचिका दाखिल करने को बाध्य हो गया। इस न्यायालय ने दिनांक 7.8.2006 के आदेश के तहत उक्त याचिका को निपटाया और प्रत्यर्थियों को 9% प्रति वर्ष की दर से सूद सहित कुटुम्ब पेंशन का बकाया निर्मुक्त करने का निर्देश दिया। जब उक्त आदेश का अनुपालन नहीं किया गया, तब याची ने अवमान याचिका सं॰ 102 वर्ष 2007 दाखिल किया। उक्त अवमानना याचिका दिनांक 11.7.2007 को निपटायी गयी। उक्त अवमानना याचिका में यह कथन किया गया था कि कुटुम्ब पेंशन के सारे बकाये का भुगतान कर दिया गया है लेकिन ब्याज का भुगतान नहीं किया गया था। बेहतर मूल्यांकन के लिए दिनांक 11.7.2007 के आदेश को यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया गया है:—

"अब, विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि समस्त कुटुम्ब पेंशन के बकाये का भुगतान कर दिया गया है और सिर्फ 9% की दर से ब्याज का भुगतान जैसा इस न्यायालय द्वारा दिनांक 7.8.2006 के आदेश के तहत आदेशित किया गया था, नहीं किया गया है।

अतः, यह निर्णय किया जाना होगा कि सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड अथवा कोयला खान भविष्य निधि कमिश्नर में से कौन ब्याज के भुगतान का जिम्मेदार है।

फिर भी, इस चरण पर श्री आनंदा सेन, सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने वचन दिया है कि या तो सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड द्वारा अथवा कोयला खान भविष्य निधि कमिश्नर के माध्यम से आज से दो महीने के भीतर याची को ब्याज का भुगतान कर दिया जाएगा।

अतः, यह परिवचन दर्ज किया जाता है।

तद्नुसार, अवमान कार्यवाही समाप्त की जाती है।"

3. इस न्यायालय को प्रत्यर्थियों द्वारा दिनांक 11.7.2007 को दिए गए उपर्युक्त आश्वासन के बावजूद आज तक ब्याज की राशि का भुगतान नहीं किया गया है जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान अवमान याचिका दाखिल की गयी है।

श्री आनन्दा सेन, प्रत्यर्थी सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याची या तो सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड से अथवा कोयला खान भविष्य निधि कमिश्नर से ब्याज पाने का हकदार है लेकिन यह कोयला खान भविष्य निधि कमिश्नर द्वारा भुगतान योग्य है क्योंकि कुटुम्ब पेंशन उन्हीं के पास था। दूसरी ओर, कोयला खान भविष्य निधि कमिश्नर के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि ब्याज सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड द्वारा भुगतान योग्य है।

4. यह एक दुर्लभ से दुर्लभतम मामला है जहाँ एक विधवा, जिसके पति की कार्यरत रहते 1991 में मृत्यु हो गयी थी, को इस न्यायालय के बार-बार निर्देश देने पर भी ब्याज की राशि का भुगतान नहीं किया गया है। प्रत्यर्थियों के बुरे रवैये के कारण, याची-विधवा को विगत 18 वर्षों से तकलीफ उठानी पड़ रही है।

5. उक्त आधारों पर, सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड और कोयला खान भविष्य निधि कमिश्नर को आपसी विवाद सुलझाने और आज से 10 दिनों के भीतर ब्याज की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें विफल रहने पर प्रत्यर्थियों को उस तिथि से, जब से याची को पेंशन का बकाया देय और भुगतान योग्य हो गया, 22% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करना होगा।

6. यह कहना अनावश्यक होगा कि प्रत्यर्थियों में से किसी एक के द्वारा ब्याज की राशि का भुगतान करने के बाद, अन्य प्रत्यर्थी इसे वसूलने का हकदार होगा यदि कानून इसकी इजाजत देता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

भोजहरि सिंह एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1339 of 2005. Decided on 6th October, 2009.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 376 एवं 323 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत संज्ञान का अभिखंडन—अभिनिर्धारित, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 किसी भी याची के विरुद्ध लागू नहीं होता है—भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4, याची संख्या 2 एवं 3 के विरुद्ध लागू नहीं है एवं इसलिए इसे अभिखंडित किया गया—अग्रेतर अभिनिर्धारित, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत याची संख्या-1 की सह-अपराधिता के संबंध में इस चरण में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है इसलिए, उसकी दा॰ वि॰ या॰ खारिज की गयी। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.—Mr. S. Thakur, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

याचियों ने समस्त दांडिक कार्यवाही और दिनांक 19.7.2004 को सी॰ पी॰ केस सं॰ 399 वर्ष 2003 में दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन याचियों के विरुद्ध लिए गए संज्ञान के अभिखंडन हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के

अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है। यहाँ यह कहना अनावश्यक नहीं होगा कि सह-अभियुक्त भोला नाथ सिंह के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध का पृथक संज्ञान लिया जा चुका है जो अनुमंडलीय न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो के समक्ष लंबित है।

2. परिवादी डेल्हो मूरमू द्वारा मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी बोकारो के समक्ष लाए गए परिवाद में अभियोजन का संक्षिप्त मामला यह है कि वह अपने माता-पिता के साथ बोकारो में रहती थी जहाँ उसके पिता बोकारो स्टील लिमिटेड में एक स्थायी कर्मचारी थे। प्रधान अभियुक्त भोलानाथ सिंह उर्फ हेमन्त का पिता अर्थात् भोजहरि सिंह अर्थात याची सं० 1 भी बोकारो स्टील लिमिटेड का एक स्थायी कर्मचारी था और इस कारण दोनों परिवारों के बीच संपर्क था। समय काल में, परिवादी डेल्हो मूरमू और अभियुक्त भोलानाथ सिंह उर्फ हेमन्त के बीच प्रगाढ़ संबंध विकसित हुआ और उन्होंने एक दूसरे को पत्र लिखना शुरु कर दिया। यह अभिकथन किया गया है कि विवाह का प्रलोभन देकर अभियुक्त भोला नाथ सिंह ने परिवादी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित किया जिसके परिणामस्वरूप वह गर्भवती हो गयी और उसने भोलानाथ सिंह को इस तथ्य से अवगत कराया जिसने मामले को रफा-दफा करने की कोशिश की। उसने तब अपने माता-पिता को सूचना दी जिन्होंने जब इस सूचना के अनुसरण में याचियों से अर्थात् क्रमश: प्रधान अभियुक्त भोलानाथ सिंह उर्फ हेमन्त के पिता, माता और बहन से संपर्क किया तो उन्होंने उनका अपमान किया और इस आधार पर कि यदि भोला नाथ सिंह का विवाह कहीं और होगा तो उन्हें दहेज में वृहत राशि मिलेगी जबकि परिवादी का पिता सिर्फ 50,000/- रुपये देने की स्थिति में है, परिवादी का विवाह भोलानाथ सिंह के साथ करने से इन्कार कर दिया। भोलानाथ सिंह ने भी उससे विवाह करने से इनकार कर दिया।

3. याचियों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि स्वीकार्यत: याची सं० 1 भोलानाथ सिंह उर्फ हेमन्त का पिता है, याची सं० 2 माता है और याची सं० 3 अविवाहित बहन है जिनका भोलानाथ सिंह का परिवादी के साथ अभिकथित प्रेमसंबंध से कोई लेना-देना नहीं है और उन्हें इस आधार पर कि याची सं० 1 भोजहरि सिंह ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी बोकारो के समक्ष परिवादी और उसके माता-पिता के विरुद्ध परिवाद दाखिल किया था कि उन्होंने उसके पुत्र भोलानाथ सिंह का पिछले डेढ़ महीने से अपहरण कर लिया है जिसे आखिरी बार परिवादी के पिता के घर में देखा गया था और यह कि तत्पश्चात् उसको जीवित अथवा मृत नहीं ढूंढ़ा जा सका, झूठा फँसाया गया है। विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि वर्तमान मामला पूर्ववर्ती मामले की आगे की कड़ी है और माता-पिता को बचाने के लिए उनके कहने पर परिवादी ने भोलानाथ सिंह, उसके माता-पिता एवं बहन के विरुद्ध परिवाद दाखिल किया है। विद्वान अधिवक्ता ने प्राख्यान किया है कि यद्यपि भोलानाथ सिंह लापता है, फिर भी भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया जा चुका है। अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याचीगण मंदोदरी देवी और रीता कुमारी के विरुद्ध न तो कोई अपराध निर्मित होता है और न ही भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन, अथवा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन ही ऐसा अभिकथन किया गया है। याची सं० 1 भोजहरि सिंह के विरुद्ध ऐसा अभिकथन गढ़ा गया है कि उसने अप्रत्यक्ष तौर पर यह कहते हुए विवाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया कि यदि वह अपने पुत्र की शादी कहीं और करता है तो उसे 50,000/- रुपये से अधिक मिलेगी।

4. विद्वान अपर लोक अभियोजक को सुना गया।

5. मैं मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से पाता हूँ कि इसमें के किसी भी याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अभिकथन आकर्षित नहीं होता है। इसी प्रकार, दो अन्य याचियों मंदोदरी देवी और रीता कुमारी के विरुद्ध दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 और भारतीय दंड संहिता की धारा 323 आकर्षित नहीं होती है, अत: उनके विरुद्ध लिया गया अपराध का संज्ञान

कायम नहीं रखा जा सकता है और ऐसा करना घोर अन्याय की कोटि का होगा। जहाँ तक याची सं॰ 1 भोज हरिसिंह की सह-अपराधिता का संबंध है, यह संप्रेक्षित करना जल्दबाजी होगी कि उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323 और/अथवा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन अपराध बनता है या नहीं।

6. सुविचारित दृष्टिकोण अपनाते हुए यह दांडिक विविध याचिका, इसमें की गयी चर्चा के मुताबिक अंशतः अनुज्ञात की जाती है। तद्नुसार, अनुमंडलीय न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो के समक्ष लंबित सी॰ पी॰ केस सं॰ 399 वर्ष 2003 में याचीगण मंदोदरी देवी और रीता कुमारी का दांडिक अभियोजन अभिखंडित किया जाता है लेकिन वर्तमान में याची सं॰ 1 भोजहरि सिंह के विरुद्ध इस याचिका को अस्वीकार किया जाता है लेकिन उसे उचित चरण पर मामला उठाने की स्वतंत्रता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

बिनी देवी एवं अन्य

बनाम

कामिनि देवी एवं अन्य

W.P. (C) No. 2409 of 2005. Decided on 27th October, 2009.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 1—90 दिन व्यतीत हो जाने के बाद भी लिखित कथन दाखिल नहीं किए गए एवं न्यायालय द्वारा बारम्बार निर्देश दिए गए—विचारण न्यायालय ने प्रतिवादीगण को लिखित कथन दाखिल करने से विवर्जित किया—अभिनिर्धारित, यद्यपि, सि॰ प्र॰ सं॰ का आदेश VIII, नियम 1 एक विनिर्दिष्ट समयावधि विहित करता है जिसके भीतर लिखित कथन दाखिल कर दिया जाना है परन्तु यह नियम दृढ़ नहीं है एवं यथोचित मामलों में कारणों को संतोषप्रद रूप से स्पष्ट किए जाने पर विचारण न्यायालय इस अवधि का विस्तार करने के लिए एवं वाद व्ययों का अधिरोपण करके प्रतिवादीगण से लिखित कथन स्वीकार करने के लिए अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है। (पैरा 10)

अधिवक्तागण.—Mr. R. Mukhopadhya, For the Petitioners; Mr. N.K. Sahani, For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में अभिधान वाद सं॰ 56 वर्ष 2003 में मुंसिफ, बोकारो द्वारा दिनांक 10.3.2005 को पारित आदेश को चुनौती दी गयी है, जिसमें याचियों द्वारा दिनांक 27.5.2004 के पूर्ववर्ती आदेश जिसके अंतर्गत याचीगण/प्रतिवादीगण को अपने-अपने लिखित बयान दाखिल करने से विवर्जित कर दिया गया था, को वापस लेने हेतु दाखिल किया गया आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया था।

2. याचियों और प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

3. यह प्रतीत होता है कि वादी/प्रत्यर्थीगण द्वारा वर्तमान याचियों सहित 20 प्रतिवादियों के विरुद्ध अभिधान वाद सं॰ 56 वर्ष 2003 दाखिल की गयी थी। कुछ प्रतिवादी दिनांक 26.11.2004 को मामले में उपस्थित हुए और शेष दिनांक 17.2.2004 को उपस्थित हुए। लेकिन उनकी ओर से 90 दिन बीत जाने पर भी कोई लिखित कथन दाखिल नहीं किया गया था। बल्कि, उनके उपस्थित होने की तिथि के पाँच महीनों से अधिक समय के बाद उनकी ओर से लिखित कथन दाखिल किया गया था।

4. यह प्रतीत होता है कि न्यायालय द्वारा बार-बार निर्देश दिए जाने पर जब लिखित कथन दाखिल नहीं किया गया, तब विद्वान मुंसिफ ने दिनांक 27.5.2004 को पारित अपने आदेश द्वारा

प्रतिवादियों को लिखित कथन दाखिल करने से विवर्जित कर दिया और घोषणा की कि वे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 1 के अधीन निहित प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही करेंगे।

5. इसके पश्चात् याचियों ने दिनांक 27.5.2004 के उपर्युक्त आदेश को वापस लेने और लिखित कथन स्वीकार करने के लिए याचिका दाखिल की। लेकिन आक्षेपित आदेश द्वारा प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी।

6. यह भी प्रतीत होता है कि इस याचिका में दिनांक 23.6.2005 के आदेश के तहत अवर न्यायालय के समक्ष मामले में आगे की कार्यवाही स्थगित कर दी गयी थी। परिणामस्वरूप, दिनांक 23.6.2004 से अवर न्यायालय के समक्ष लंबित अभिधान वाद कोई प्रगति नहीं हुई है।

7. याचियों के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यद्यपि प्रतिवादियों की ओर से लिखित कथन दाखिल करने में अत्यधिक विलम्ब हुआ है लेकिन इस विलम्ब के लिये प्रतिवादियों को पूरी तरह दोषी नहीं ठहराया जा सकता है इस तथ्य की दृष्टि में कि वादियों द्वारा निर्दिष्ट और विश्वास प्रकट किए गए दस्तावेजों को वादपत्र के साथ दाखिल नहीं किया गया था और प्रतिवादी/याचीगण दस्तावेजों के गुणागुणों का मूल्यांकन करने हेतु और उन पर अपना प्रत्युत्तर दाखिल करने हेतु ऐसे दस्तावेजों को तत्परता से हासिल नहीं कर सकते थे।

8. दिनांक 27.5.2004 के आदेश से यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने लिखित कथन दाखिल करने में हुए विलम्ब के लिए याचियों द्वारा दिए गए कारणों पर विचार ही नहीं किया है।

9. दिनांक 10.3.2005 के आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 1 के प्रावधानों का दृढ़तापूर्वक अनुसरण किया है और प्रतिवादियों को अपने लिखित कथनों को दाखिल करने की अनुमति देने हेतु अवधि बढ़ाने के लिए अथवा आक्षेपित आदेश की तिथि तक उनके द्वारा दाखिल लिखित कथनों को स्वीकार करने के लिए स्वविवेक का प्रयोग नहीं किया है।

10. जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय एवं इस न्यायालय के अनेक निर्णयों में स्पष्ट किया जा चुका है, निःसंदेह सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 1 के प्रावधान एक निश्चित समय सीमा निर्धारित करते है जिसके अंदर प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन दाखिल किया जाना है। फिर भी नियम कठोर नहीं है और उचित मामलों में, संतोषप्रद कारण स्पष्ट करने पर विचारण न्यायालय अवधि बढ़ाने के लिए स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है और प्रतिवादियों के लिखित कथनों को, न्याय सुनिश्चित करने हेतु व्यय अधिरोपित करके स्वीकार कर सकता है।

11. वर्तमान मामले में, जैसा याचियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया है, इस न्यायालय द्वारा पारित स्थगन के अंतरिम आदेश के कारण अवर न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में कोई प्रगति नहीं हुई है, यहाँ तक कि विवाद्यकों की रचना भी नहीं की गयी है और इसलिए वादी/प्रतिवादीगण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा यदि याची/प्रतिवादीगण द्वारा दाखिल लिखित कथन स्वीकार किया जाता है।

12. याचियों के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्रधान प्रतिवादी की मृत्यु हो गयी है और उसकी विधवा एवं अन्य वैध प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापन द्वारा पक्षकार बनाया गया है और उन पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा यदि प्रतिवादियों की ओर से दाखिल लिखित कथनों को अभिलेख पर स्वीकार नहीं किया जाता है।

13. समस्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और न्याय के उद्देश्य पर विचार करने के बाद दिनांक 10.3.2005 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। विचारण न्यायालय याची/प्रतिवादीगण की ओर से दाखिल लिखित कथनों को स्वीकार करेगा। यह आदेश इस शर्त के अध्यधीन है कि

याची/प्रतिवादीगण इस आदेश की तिथि से दो सप्ताह के अंदर 5000/- रुपयों की अदायगी करे।

14. इस मामले मे पारित अंतरिम आदेश रिक्त किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

मदन प्रसाद खारवार

बनाम

झारखण्ड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cr. Rev. No. 975 of 2008. Decided on 17th September, 2009.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—सह-पठित भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 302/120B—उन्मोचन–यह अभिवाक् कि याची ने धारा 302/120B का मुख्य अपराध कारित नहीं किया है परन्तु उसके विरुद्ध अभिकथन कि उसने अभिकथित रूप से अभियुक्त व्यक्तियों को बचाने के लिए कथन अभिलिखित किया है–अभिनिर्धारित, याची भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/120B के अधीन आरोपों से उन्मोचित किए जाने के हकदार है–लेकिन, वह भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 193 एवं 194 के अधीन आरोपों के दायित्व से उन्मोचित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 18 एवं 19)

निर्णयज विधि.–2008TL PRE -0-710; 2005 Cr L.J. 3950; AIR 1999 SC 2640; (2001)7 SCC 569—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajan Raj, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the CBI.

आदेश

यह दांडिक पुनरीक्षण विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰-सह-अपर सत्र न्यायाधीश, अष्टम् धनबाद द्वारा सत्र विचारण सं॰ 21 वर्ष 2008 में पारित आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अंतर्गत मामले से याची को उन्मोचित करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन दाखिल याचिका अस्वीकार कर दी गयी थी, के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. मामले को उत्पन्न करने वाले तथ्य यह है कि प्रमोद कुमार सिंह, कोयला व्यापारी, जो सुरेश सिंह के साथ काम करता था, रेलगाड़ी से दिनांक 3.10.2003 को बनारस से धनबाद आया। धनबाद रेलवे स्टेशन पर उसने एक निजी गाड़ी भाड़े पर लिया और अपने घर आया। जब वह अपने घर की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था तो मोटर साइकिल पर सवार दो व्यक्ति अचानक वहाँ आए और उसके ऊपर गोली दागी जिसके परिणामस्वरूप प्रमोद कुमार सिंह को गोली लगने की उपहति हुई। उसे तत्काल उसके पड़ोसियों और मित्रों द्वारा सेन्ट्रल अस्पताल, धनबाद ले जाया गया जहाँ उसे दिन 11.15 बजे सुबह भर्ती कर लिया गया था। वहाँ अस्पताल में, इस याची जो उस समय सरायढ़ेला पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी के रूप में पदस्थापित था, ने सुरेश सिंह, संतोष सिंह एवं रणबिजय सिंह की उपस्थिति में उक्त घायल प्रमोद कुमार सिंह द्वारा अभिकथित तौर पर दिए गए बयान, जिसमें प्रमोद कुमार सिंह ने रामाधीन सिंह एवं राजीव रंजन सिंह को अपने ऊपर गोली दागने वाले व्यक्तियों के तौर पर नामजद किया था, को दर्ज किया। उक्त बयान पर रामाधीन सिंह और राजीव रंजन सिंह के विरुद्ध आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34 के अधीन धनबाद (धनसार) पी॰ एस॰ केस सं॰ 638 वर्ष 2008 दर्ज किया गया। लेकिन, जब प्रमोद कुमार सिंह की उपहति के कारण मृत्यु हो गयी, तब भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन भी मामला दर्ज किया गया।

3. तत्पश्चात्, मामले को सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा ले लिया गया, जिसने इसे आर॰ सी॰ सं॰ 11 (एस॰) वर्ष 2003 के तौर पर दर्ज किया। मामले की छानबीन करने के बाद, यह प्रकट हुआ कि अभियुक्त सुरेश सिंह ने प्रमोद कुमार सिंह की हत्या करने के लिए अभियुक्त कश्मीरी खान और सैय्यद मोहम्मद अख्तर उर्फ खड़क सिंह के साथ मिलकर आपराधिक षड्यन्त्र रचा था और खड़क सिंह को योजना कार्यान्वित करने के लिए तीन लाख रुपया नगद दिया गया था। इसके बाद, दोनों उपर्युक्त अभियुक्तों ने गैर-कानूनी कृत्य को कार्यान्वित करने के लिए हीरा खान से संपर्क किया जो सैय्यद अरशद अली के साथ घटना की तिथि के दिन सैय्यद अरशद अली द्वारा चलायी जा रही लाल रंग की यामहा मोटरसाइकिल पर प्रमोद कुमार सिंह के घर आया और दूसरे अभियुक्त हीरा खान ने प्रमोद कुमार सिंह पर गोली चलायी जिससे वह घायल हो गया। तत्पश्चात् दोनों अभियुक्त व्यक्ति वहाँ से भाग कर अभियुक्त मोहम्मद अयूब खान उर्फ नन्हे के घर पर आए और सूचना दी कि उसने प्रमोद कुमार सिंह की हत्या कर दी है।

4. अन्वेषण के दौरान, आगे यह पता चला कि प्रमोद कुमार सिंह को गोली लगने पर अस्पताल लाया गया। जहाँ इस याची, सरायढेला, पुलिस थाना के उप-निरीक्षक ने अभियुक्त सुरेश सिंह, संतोष सिंह एवं रणबिजय सिंह की प्रेरणा पर मृतक प्रमोद कुमार सिंह द्वारा तात्पर्यित तौर पर दिया गया झूठा बयान तैयार किया जिसके द्वारा सुरेश सिंह, संतोष सिंह और रणबिजय सिंह को अभियोजन से बचाने के लिए राजीव रंजन सिंह और रामाधीन सिंह को गलत ढंग से फँसाया गया था।

5. अन्वेषण की समाप्ति के उपरांत, सी॰ बी॰ आई॰ ने इस याची सहित उपरोक्त सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध आरोप-पत्र पेश किया जिसने प्रमोद कुमार द्वारा अभिकथित रूप से दिया गया मृत्युकालिक घोषणा अभिलिखित किया था यद्यपि सी॰ बी॰ आई॰ के अनुसार, उसने ऐसा कोई कथन नहीं किया था।

6. तत्पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 120(B) सह-पठित धाराएँ 302, 193 एवं 194 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन सभी अभियुक्तों के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया।

7. मामले की सुपुर्दगी पर जब इसे सत्र विचारण सं॰ 21 वर्ष 2008 के तौर पर दर्ज किया गया था, विद्वान विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰-सह-अपर सत्र न्यायाधीश, अष्टम, धनबाद के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन मामले से याची को उन्मोचित करने के लिए एक आवेदन दाखिल की गयी क्योंकि याची के अनुसार मृतक की हत्या करने हेतु अन्य अभियुक्तों द्वारा रचित षड्यन्त्र में याची ने कोई भूमिका नहीं निभायी थी, बल्कि याची ने डॉक्टर की उपस्थिति में प्रमोद कुमार सिंह जब वह I.C.U. में था उसका मृत्युकालिक घोषणा अभिलिखित किया, डॉक्टर ने बाद में फर्दबयान अभिलिखित किए जाते समय अपनी उपस्थित होने के बात से इनकार किया, लेकिन उसके मुकर जाने पर भी झूठा साक्ष्य गढ़ने में याची की आपराधिकता सिद्ध नहीं की जा सकती है। लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अभियुक्त के विरुद्ध जबरदस्त साक्ष्य और सामग्री है, उन्मोचन प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया।

उक्त आदेश से व्यथित होकर यह आवेदन दाखिल की गयी है।

8. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजन राज ने निवेदन किया है कि यद्यपि मृतक प्रमोद कुमार सिंह के फर्दबयान के मुताबिक रामाधीन सिंह और राजीव रंजन सिंह ने प्रमोद कुमार सिंह की हत्या की लेकिन सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा किए गये अन्वेषण के दौरान यह पता चला कि अभियुक्त सुरेश सिंह ने प्रमोद कुमार सिंह की हत्या के लिए कश्मीरा खान और सैय्यद मोहम्मद अख्तर उर्फ खड़क सिंह के साथ मिल कर षड्यंत्र रचा था और उन्हें तीन लाख रुपया भी दिया था

और तब उक्त गैर-कानूनी कृत्य हीरा खान द्वारा कार्यान्वित किया गया, जो सैय्यद अरशद अली के साथ मृतक के घर आया और मृतक को गोली मारी जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी। सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा एकत्रित इन सारे तथ्यों को अगर सत्य मान भी लिया जाए तब भी ऐसे किसी साक्ष्य की अनुपस्थिति में यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि अन्य अभियुक्तों द्वारा रचे गए षड्यंत्र में याची का हाथ था एवं, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि याची ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 120(B) के अधीन अपराध किया है।

9. इस संबंध में, आगे यह निवेदन किया गया कि अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने का साक्ष्य हो सकता है, लेकिन एक बिल्कुल ही भिन्न अभिकथित अपराध करने के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि याची ने मुख्य अपराध करने के लिए अन्य अभियुक्तों के साथ षड्यन्त्र किया है।

10. अपने निवेदन के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **योगेश उर्फ सचिन जगदीश जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य [एस॰ एल॰ पी॰ (क्रि॰) सं॰ 5515 वर्ष 2007 से उद्भूत] (2008 TLPRE-0-710)** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

11. इस प्रकार, यह निवेदन किया गया था कि मुख्य अपराध कारित करने के लिए अन्य अभियुक्त के साथ किसी षडयंत्र, जो कुछ भी, करने का कोई साक्ष्य न होने के कारण याची भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120(B) सह-पठित धारा 302 के अधीन आरोप-पत्र में लगाये गए आरोप से उन्मोचित किए जाने का हकदार है।

12. सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि इस न्यायालय ने पहले ही इस तथ्य को ध्यान में लिया है कि कैसे इस याची ने वास्तविक अपराधियों को बचाने के लिए मृतक का झूठा बयान निर्मित किया और यह तथ्य स्वयं किसी भी संदेह के परे बताता है कि प्रमोद कुमार सिंह की हत्या करने के लिए अभियुक्तों द्वारा किए गए षड्यन्त्र के पक्षकारों में से एक याची भी था और इस प्रकार याची भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 120(B) के अधीन एवं अन्य अपराधों के लिए भी किए जा रहे अभियोजन से भाग नहीं सकता है।

13. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि जब सहमति के अनुसरण में षड्यन्त्रकारियों ने निजी रूप से अपराध किया है अथवा वैध कृत्य करने हेतु अवैध तरीका अपनाया है, जो षड्यन्त्र के लक्ष्य से जुड़ा हुआ है, तब वे सारे ऐसे अपराधों हेतु जिम्मेदार है भले ही उनमें से कुछ ने उन अपराधों को अंजाम देने में सक्रिय रूप से हिस्सा नहीं लिया है।

14. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **राज्य (एन॰ सी॰ टी॰, दिल्ली) बनाम नवजोत संधु (2005 क्रि॰ एल॰ जे॰ 3950)** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

15. अत: विचारण के लिये प्रश्न यह है कि क्या याची को झूठा दस्तावेज गढ़ने के आधार पर अन्य अभियुक्तों द्वारा रची गयी साजिश के अनुसरण में मुख्य अपराध करने के लिए अभियोजित किया जा सकता है?

16. अन्य प्रश्नों के साथ ऐसा ही एक प्रश्न **राज्य (एन॰ सी॰ टी॰, दिल्ली) बनाम नवजोत संधु (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विचार हेतु आया था जिसमें राज्य की ओर से यह तर्क किया गया था कि जहाँ प्रत्यक्ष रूप से कृत्य किया गया है, सारे षड्यन्त्रकारियों को सारवान अपराध के लिए बराबर सजा दी जानी चाहिए भले ही उनमें से कुछ ने प्रत्यक्ष कृत्य में हिस्सा नहीं लिया हो।

17. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने अपने पक्ष के समर्थन में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **नलिनी मामले (ए॰ आई॰ आर॰ 1999 एस॰ सी॰ 2640)** एवं **फिरोजुद्दीन बशीरुद्दीन बनाम केरल राज्य [2001)7 एस॰ सी॰ सी॰ 569]** के मामले में किए गए संप्रेक्षणों पर विश्वास प्रकट किया जिसमें

अभिनिर्धारित किया गया था कि एजेन्सी के सिद्धांत के आधार पर, जहाँ षड्यंत्र की परिणति सुस्पष्ट अपराध गठित करते हुए प्रत्यक्ष कृत्य में होती है, सारे षड्यंत्रकारी षड्यंत्र के अनुसरण में किए गए सारे अपराधों के लिए जिम्मेवार होंगे, लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस अभिवचन को अस्वीकृत कर दिया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

> *''हम नहीं समझते हैं कि एजेन्सी का सिद्धांत का विस्तार इतनी दूर तक किया जा सकता है अर्थात् सारे षड्यंत्रकारियों को एक साझा उद्देश्य के कार्यान्वियन में किए गए वास्तविक अपराधों के लिए दोषी ठहराया जा सकता है भले ही वैसे अपराध अंततः उनमें से कुछ के द्वारा अन्यों की हिस्सेदारी के बिना किए गए हो। हमारा दृष्टिकोण यह है कि जिन्होंने षड्यन्त्र के अनुसरण में विभिन्न प्रत्यक्ष कृत्य करते हुए अपराध किया है, वे आपराधिक षड्यंत्र के साथ उन अपराधों के लिए व्यक्तिगत तौर पर जिम्मेवार होंगे, लेकिन हिस्सा न लेने वाले षड्यंत्रकारियों को अन्य षड्यंत्रकारियों द्वारा किए गए अपराध अथवा अपराधों के लिए दोषी नहीं पाया जा सकता है। उनके द्वारा नहीं किए गए मुख्य अपराध के लिए षड्यंत्रकारियों को दोषी ठहराने के लिए एजेन्सी के सिद्धान्त को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है। दांडिक अपराध और सजा कानून से शासित होते हैं। सिर्फ दंड विधि के सरल निबंधनों के अंतर्गत आने पर ही अपराधी सजा का जिम्मेवार है। सदृश्यता के चलते अथवा सामान्य विधि सिद्धांत का विस्तार करके एक अपराध हेतु दांडिक जिम्मेदारी जकड़ी नहीं जा सकती है।''*

यहाँ, वर्तमान मामले में, जैसा मैंने पहले ही गौर किया है कि याची ने अभिकथित तौर पर झूठा दस्तावेज गढ़ा है लेकिन ऐसा दर्शाने का कोई साक्ष्य नहीं है कि याची भी उन व्यक्तियों में से एक था जिसने अन्य अभियुक्तों के साथ मिल कर मृतक की हत्या का षड्यंत्र रचा था।

18. मामले की इस दृष्टि में, और सर्वोच्च न्यायालय **राज्य (एन॰ सी॰ टी॰ दिल्ली) बनाम नवजोत संधु (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित निर्णयाधार की दृष्टि में याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 120(B) के अधीन अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार आदेश का वह बिंदु, जिसके अधीन जिसके अंतर्गत विद्वान विचारण न्यायालय ने याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 120(B) के अधीन लगाए गए आरोप से उन्मोचित करने से इन्कार कर दिया है, को अपास्त किया जाता है।

19. तद्नुसार, याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 120(B) के अधीन लगाए गए आरोपों से उन्मोचित किया जाता है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 193 और 194 के अधीन आरोप लगाने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है और इसलिए, उस विस्तार तक विचारण न्यायालय ने याची की प्रार्थना को सही तौर पर अस्वीकृत किया है।

20. परिणामस्वरूप, यह याचिका अंशतः अनुज्ञात की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

मंजू कुमारी सिंह उर्फ मंजू सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

Criminal Revision No. 608 of 2007. Decided on 17th September, 2009.

दांडिक अपील सं॰ 35 वर्ष 2007 में श्री लक्ष्मी कांत शर्मा, अपर सत्र न्यायाधीश-III, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 14.6.2007 के सजा के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 498A/34, 341, 323 एवं 504—दहेज की मांग के लिए यातना–अपीलीय न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को दोषमुक्त किया–परिवादी द्वारा कोई तर्कपूर्ण साक्ष्य नहीं दिया गया–यहाँ तक कि परिवादी का परिसाक्ष्य भी उसके अपने साक्षियों द्वारा ही सम्पोषित नहीं किया गया था–अभियोजन यह भी प्रमाणित करने में विफल रहा कि क्या घटना की अभिकथित तिथि को घटना घटित हुई थी अथवा नहीं–परिवाद का विलम्ब के उपरांत दाखिल किए जाने को भी उचित रूप से स्पष्टीकृत नहीं किया गया था–अभिनिर्धारित, अपीलीय न्यायालय ने उचित रूप से ही अभियुक्त को दोषमुक्त किया है। (पैरा 10)

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathy, Ananda Sen, For the Petitioner; Mr. Mahesh Tiwari, For the O.P. No. 2 & 3; Mr. V.S. Sahay, A.P.P., For the State.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–याची, विरोधी पक्षकार-2 और राज्य के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. यह पुनरीक्षण, दांडिक अपील सं० 35 वर्ष 2007 में श्री लक्ष्मी कांत शर्मा, अपर सत्र न्यायाधीश-III, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा दिनांक 14.6.2007 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिस निर्णय द्वारा उन्होंने समस्त साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात पाया कि साक्षीगण भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 498A/34, 341, 323 और 504 के अधीन आरोपों को सिद्ध करने में विफल रहे हैं और उन्होंने जी० आर० केस० सं० 1857 वर्ष 1999 में दिनांक 31.1.2007 को विचारण न्यायालय अर्थात् सी० जे० एम०, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा पारित उस निर्णय एवं आदेश को अपास्त कर दिया जिसके द्वारा विद्वान सी० जे० एम०, हजारीबाग ने विरोधी पक्षकार सं० 2 एवं 3 को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 498A/34, 341, 323 और 504 के अधीन दोषी पाया था और भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 498A/34 के अधीन एक वर्ष के सश्रम कारावास भुगतने और एक हजार रुपये जुर्माना, भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन तीन महीने के सश्रम कारावास भुगतने और भारतीय दंड संहिता की धारा 341 के अधीन 15 दिनों के सश्रम कारावास की सजा दी थी यद्यपि, उन्होंने निर्देश दिया कि समस्त सजाएँ साथ-साथ चलेंगी।

3. याची, मामले का सूचक, के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्यों का गलत मूल्यांकन करके विचारण न्यायालय के निष्कर्ष से असहमति व्यक्त किया है और इस कारण अपील में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दोषमुक्ति का निष्कर्ष विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त करने योग्य है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अभियुक्तों ने यह बिन्दु उठाया है कि परिवाद 6 दिनों के लम्बी विलम्ब के बाद दाखिल किया गया था चूँकि घटना दिनांक 22.10.1999 को घटित हुई थी, जबकि प्राथमिकी दिनांक 28.10.1999 को दर्ज की गयी थी। यह निवेदन किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने छः दिनों के विलम्ब का स्पष्टीकरण स्वीकार किया है जो सूचक के पिता को हृदय रोग के चलते और बीमार रहने के कारण हुआ था लेकिन अपीलीय न्यायालय द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया गया था और उन्होंने गलत रूप से पाया कि उपर्युक्त प्राथमिकी अत्यधिक विलम्ब के बाद दर्ज की गयी थी। परिवादी ने यह भी कथन किया था कि 22.10.1999 और 28.10.99 की अवधि के दौरान मामले में सुलह करने का प्रयास भी किया गया था लेकिन दोनों विरोधाभाष को अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है और उसे दोषमुक्ति का निर्णय पारित करने में स्वयं को अपनिदेशित किया है।

5. दूसरी ओर, अभियुक्तों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों पर समुचित रूप से विचार किए बिना आदेश पारित किया था क्योंकि परिवादी ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में स्वीकार किया था कि दिनांक 22.10.1999 को उसपर प्रहार किया गया था और उसे उपहति हुई थी और उसे अस्पताल ले जाया गया था जहाँ उसका उपचार किया गया था। लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय यह परखने में विफल

रहा कि डॉक्टर, जिसे न्यायालय में परीक्षित किया गया था, ने स्पष्टत: कथन किया था कि याची को अस्पताल में भर्त्ती नहीं किया गया था। डॉक्टर, जो अ० सा० 11 के तौर पर परीक्षित किया गया था, ने कथन किया था कि उसने परिवादी को एक्सरे प्लेट लाने को कहा था लेकिन वह ऐसा करने में विफल रही और वह एक्सरे के साथ कभी वापस नहीं आयी और यदि कोई उपहति हुई भी थी तो यह सरल प्रकृति की थी। लेकिन विचारण न्यायालय डॉक्टर के साक्ष्य से कोई विपरीत निष्कर्ष निकालने में विफल रहा और उसके के लिए परिवादी को लाभ प्रदान किया। इस प्रकार विचारण न्यायालय का निष्कर्ष अनुचित है। अपीलीय न्यायालय ने सही-सही परखा है कि दिनांक 22.10.99 को अभिकथित घटना की तिथि पर कोई घटना घटित नहीं हुई थी क्योंकि वह दिनांक 22.10.1999 को अपने ससुराल में नहीं रह रही थी और न ही उसके ससुराल वालों के लिए उस पर प्रहार करने अथवा घर से निकालने का अवसर था।

6. मामले के इस दृष्टिकोण में, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय समुचित, सुविचारित है और पुनरीक्षण में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की गुंजाइश नहीं है।

7. दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात्, यह प्रतीत होता है कि यह यातना अथवा प्रहार का मामला है जिसे अभियुक्तों, वि० प० सं० 2 और 3 के विरुद्ध निर्मित किया गया है। जबकि इसी साक्ष्य के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों वि० प० सं० 2 और 3 को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 498A/34, 341, 323 और 504 के अधीन अपराध का दोषी पाया है।

8. अब यह देखना है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित है या नहीं। इस पर विचार करने हेतु दो मुख्य बिन्दु निम्नलिखित है:-

I. क्या दिनांक 22.10.1999 को कोई घटना घटित हुई थी जैसा कि परिवादी ने अभिकथित किया है या नहीं और क्या वह दिनांक 22.10.1999 को अपने ससुराल, अर्थात् वि० प० सं० 2 और 3 का घर, में उपस्थित थी या नहीं।

II. क्या परिवादी द्वारा प्राथमिकी दर्ज करने में हुए विलम्ब का समुचित स्पष्टीकरण दिया गया है या नहीं। ये दो ऐसे आधार हैं जिन पर अपीलीय न्यायालय ने वि० प० सं० 2 और 3 को दोषमुक्त कर दिया है।

9. अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गये साक्ष्यों के परिशीलन से प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय में आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन ने 11 गवाहों का परीक्षण किया है।

10. अ० सा० 1, रामचन्द्र सिंह परिवादी मंजू सिंह का पिता है। अ० सा० 2, रामा नंदी देवी परिवादी की माता है। अ० सा० 3, सुधा ठाकुर परिवादी की बड़ी बहन है। अ० सा० 4, शिवधारी तिवारी विवाह का मध्यस्थ है। अ० सा० 5, यमुना पांडे परिवादी के पिता का मित्र है। अ० सा० 6, मंजू सिंह परिवादी है। अ० सा० 7, बिहारी यादव पक्षद्रोही गवाह है। अ० सा० 8, सुबोध कुमार मामले का अन्वेषण अधिकारी है। अ० सा० 9, प्रदीप कुमार नायक पक्षद्रोही गवाह हैं। अ० सा० 10, नरेश कुमार एक अन्य पक्षद्रोही गवाह है। अ० सा० 11, डॉ० दिवाकर हंसदा डॉक्टर है जिसने परिवादी का परीक्षण किया था।

11. विचार योग्य मुख्य बिन्दु यह है कि क्या दिनांक 22.10.1999 को प्रहार एवं यातना की कोई घटना घटित हुई थी या नहीं। विचार करने हेतु मुख्य गवाह परिवादी स्वयं अर्थात् अ० सा० 6, मंजू सिंह, अ० सा० 1 उसका पिता रामचंद्र सिंह, अ० सा० 5 यमुना पाँण्डेय जो परिवादी को घटना की तिथि पर पुलिस थाना ले गया था और अ० सा० 11 डॉक्टर दिवाकर हंसदा है।

12. अ० सा० 6, मंजू सिंह मुख्य परीक्षण में दिए गए अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उसके पति, सास, ससुर और देवर ने दिनांक 22.10.1999 को उसके और उसके पिता द्वारा गाड़ी की मांग पूरी नहीं जाने के लिए उसके साथ दुर्व्यवहार करना शुरू किया। वे हिसंक हो गए और उस पर प्रहार

करना प्रारंभ किया। उसके पति ने उसका सात माह का शिशु छीन लिया और जमीन पर पटक दिया। तत्पश्चात्, उसने उसके शरीर और पेट पर लातों-मुक्कों से प्रहार किया। उसकी सास ने उसका बाल पकड़ लिया और टेम्पों में डाल दिया और टेम्पो ड्राइवर को उसकी माँ के घर पहुँचा देने को कहा। तब उसने टेम्पो ड्राइवर को पुलिस थाना चलने को कहा लेकिन वह उसे पुलिस थाना ले जाने को तैयार नहीं था क्योंकि वह उसके ससुराल वालों को जानता था। तब अचानक उसने सड़क पर अपने पिता के मित्र यमुना पांडे को देखा। तब वह उसके साथ उसके घर गयी और उसके घर से वह पुलिस थाना गयी जहाँ उसने घटना के बारे में बताया। तब दरोगा उसके साथ उसके ससुराल गया और उसके ससुर, सास, देवर और पति को थाना लाया। चूँकि उसकी हालत खराब थी, उसे टेलको अस्पताल उपचार के लिए भेजा गया। वहाँ से उसे एम॰ जी॰ एम॰ अस्पताल भेज दिया गया जहाँ उसका उपचार किया गया। उसने कथन किया कि दिनांक 21.10.1999, घटना के एक दिन पहले, उसके पति ने उसके पिता से टेलीफोन पर बातचीत की थी। उसने उसके पिता को गाली एवं धमकी दी कि अगर वह गाड़ी नहीं देगा तो उसकी पुत्री की हत्या कर दी जाएगी। यह सुनने के बाद उसके पिता को दिल का दौरा हुआ और उसे इलाज के लिए टेलको अस्पताल ले जाया गया। उसने कथन किया कि इस प्रकार उसके पति, ससुर, सास और देवर ने उस पर प्रहार किया और दिनांक 22.10.1999 को जब वह अपने 'ससुराल' में थी उसे बाहर निकाल दिया। उसने कथन किया कि वह अपने पिता के साथ दिनांक 21.10.1999 को शाम में अपने ससुराल गयी थी। उसके पिता ने उसे टेम्पों द्वारा उसके ससुराल पहुँचाया और तब वह उसकी बड़ी बहन के घर गोविन्दपुर चला गया। उसके संपूर्ण शरीर पर उपहतियाँ थी और उसकी दाँत से खून बह रहा था।

13. अब, यह देखना है कि अन्य गवाह उसके बयान का समर्थन करते हैं या नहीं। उसके बयान के अनुसार, दिनांक 21.10.1999 को उसे उसके पिता द्वारा शाम में उसके पति के घर ले जाया गया। अब उसके पिता (अ॰ सा॰ 1) के साक्ष्य पर विचार करें। अ॰ सा॰ 1 ने न्यायालय में कथन किया है कि उसकी पुत्री मंजू सिंह का विवाह दिनांक 16.2.1997 को अभियुक्त अविनाश सिंह के साथ हुआ था और वह अपने पति के साथ 10-12 दिनों तक रही थी। तत्पश्चात्, चूँकि उसके ससुराल वाले दहेज के लिए उसे प्रताड़ित करने लगे थे। इसलिए वह अगस्त 1998 में अपने घर वापस आयी और तब से वह उसके साथ रह रही थी। उसने कथन किया कि दिनांक 21.10.1998 को उसके देवर अर्थात् किरण कुमार ने उसे अपने घर आने के लिए टेलीफोन किया और तब वह अपने पति के घर गयी और तब उसपर प्रहार किया गया। उसकी नतिनी को पति ने फेंक दिया था। प्रहार के बाद वह टेम्पो से अपने घर आ रही थी जब उसने यमुना पांडे को देखा। उसने कथन किया कि दिनांक 21.10.1998 को उसके समधी ने उसे टेलीफोन किया था लेकिन इसी बीच उसके दामाद ने उसको गाली देना शुरू किया जिसके कारण उसे दिल का दौरा पड़ा और वह गिर गया। लेकिन इसी समय प्रोफेसर ए॰ के॰ ओझा और एल॰ बी॰ तिवारी उसे टेलको अस्पताल ले गए। उसको दिनांक 28.10.1998 को छोड़ा गया और जब वह अपने घर आया तब गोबिन्दपुर का प्रभारी अधिकारी रात्रि 9 बजे उसके घर आया और उसकी पुत्री का बयान लिया जो प्राथमिकी में दर्ज किया गया।

14. घटना की तिथि एवं प्रहार के बिन्दु का तीसरा गवाह यमुना पांडे (अ॰ सा॰ 5) है। उसने कथन किया है कि दिनांक 22.10.1999 को परिवादी मंजू सिंह उसके घर प्रात: 8 बजे आयी। उसकी हालत अच्छी नहीं थी। वह रो रही थी उसने उसे एक गिलास पानी दिया और शांत होकर बैठने को कहा। तब वह जितेन्द्र सिंह के घर आया और उसके पुत्र ने उसे फटकारा। तब वह अपने घर आया और मंजू सिंह को पुलिस थाना जाने को कहा। तब मंजू सिंह पुलिस थाना गयी और थानेदार ने उसे बुलाया और दोनों परिवारों के बीच शांति स्थापित करने को कहा और उसने कहा कि दस दिनों में मामला सुलझ जाएगा।

15. इस प्रकार, घटना की तिथि और प्रहार को लेकर तीनों गवाहों द्वारा दिया गया साक्ष्य एक दूसरे का विरोधाभाषी है। जबकि अ॰ सा॰ 6 परिवादी ने कथन किया है कि वह दिनांक 22.10.1999 को अपने ससुराल में रह रही थी जब घटना घटित हुई क्योंकि वह अपने पिता के साथ पिछली शाम अर्थात् दिनांक 21.10.1999 को साथ आयी थी। उसके देवर के कहने पर उसका पिता उसकी बहन के घर गोबिन्दपुर चला गया लेकिन पिता अ॰ सा॰ 1 का कथन भिन्न है। उसने कथन किया है कि दिनांक 21.10.1998 को जब वह अपने समधी से बात कर रहा था, उसके दामाद ने उसके साथ दुर्व्यवहार करना शुरू किया जिसके चलते उसे दिल का दौरा पड़ा और वह गिर गया। लेकिन इसी समय प्रोफेसर ए॰ के॰ ओझा और एल॰ बी॰ तिवारी उसे टेलको अस्पताल ले गए। उसने कथन किया है कि दिनांक 21.10.1999 को ही उसे अस्पताल में भर्त्ती कर लिया गया और इस तरह उसके पास मौका ही नहीं था कि वह दिनांक 21.10.1999 को अपनी पुत्री को उसके ससुराल ले जाए और वह नहीं कहता है कि वह दिनांक 21.10.1999 को मंजू को उसके ससुराल ले गया था। इसके अलावा, उसने अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 3 में कथन किया है कि उसकी पुत्री ने दिनांक 22.10.1999 को स्वयं प्राथमिकी दर्ज की थी लेकिन 22.10.1999 को प्राथमिकी निबंधित नहीं की गयी थी।

16. चतुर्थत:, परिवादी मंजू सिंह ने बयान में कथन किया है कि प्रहार के बाद जब उसे उसके ससुराल वालों द्वारा टेम्पो पर उसके घर भेज दिया गया तब टेम्पो ड्राइवर ने उसे पुलिस थाना ले जाने से इन्कार कर दिया और उसने अचानक अपने पिता के मित्र यमुना पांडे को देखा। तब यमुना पांडे उसे अपने घर ले गये और वहाँ से वह पुलिस थाना गयी। लेकिन जब यमुना पांडे का अ॰ सा॰ 5 के तौर पर परीक्षण किया गया, तो उसने कथन किया कि वह उससे सड़क पर नहीं मिला जब वह टेम्पो से आ रही थी। उसने कथन किया है कि दिनांक 22.10.1999 को मंजू सिंह प्रात: 8 बजे उसके घर आयी और कथन किया कि उसके ससुराल वालों ने उस पर प्रहार किया है। वह रो रही थी तब उसने उसे एक गिलास पानी दिया और शांत होकर बैठने को कहा। तब वह जितेन्द्र सिंह के घर गया और उसके पुत्र ने उसको फटकारा और तब वह अपने घर आया और मंजू सिंह को अकेले थाना जाने को कहा।

17. घटना और प्रहार के बिन्दु पर परिवादी के बयान को सत्यापित करने वाला तीसरा गवाह डॉक्टर अ॰ सा॰ 11, डॉ॰ दिवाकर हंसदा है चूँकि परिवादी अ॰ सा॰ 6 ने कथन किया था कि उसके शरीर पर उपहति थी और उसके दाँत और मुँह से खून बह रहा था। डॉक्टर अ॰ सा॰ 11 ने न्यायालय में कथन किया है कि उसने टेलको बुक्सा अस्पताल और पेरिफेरल डिस्पेंसरी में दिनांक 22.10.1999 को मंजू कुमारी का परीक्षण किया था और उसे एक्स-रे कराने को कहा था लेकिन दिनांक 2.11.1999 तक कोई भी एक्स-रे प्लेट लेकर नहीं आई थी और इसलिए उसने कोई उपहति रिपोर्ट नहीं तैयार किया था। उसने अपने प्रति-परीक्षण में यह भी कथन किया है कि वह मंजू सिंह को उसके आने के पहले तक नहीं जानता था। उसके शरीर पर कोई बाहरी उपहति नहीं थी और इसलिए उसने उसे एक्स-रे करवाने को कहा क्योंकि उसकी डिसपेन्सरी में एक्स-रे विभाग नहीं था। उसने उसे एक्स-रे के लिए एम॰ जी॰ एम॰ अस्पताल नहीं भेजा था।

18. इस प्रकार, मैं उपर्युक्त गवाहों के साक्ष्यों से पाता हूँ कि उसके द्वारा अपने बयान में दी गयी परिवाद कथा, जब उसका अ॰ सा॰ 6 के तौर पर परीक्षण किया गया था उसके अपने गवाहों द्वारा संपुष्ट नहीं की गयी है। उसके पिता के मुताबिक उसकी पुत्री घटना की तिथि अर्थात् 22.10.1999 तक अपने पिता के घर पर रह रही थी। उसने कथन किया है कि दिनांक 22.10.1999 को उसके देवर द्वारा टेलीफोन किए जाने के बाद उसका पिता उसे उसके पति के घर ले गया और उसे बाहर छोड़ा और उसकी बहन के घर चला गया, लेकिन उसके पिता ने कथन किया है कि दिनांक 21.10.1998 को उसके पति द्वारा टेलीफोन किए जाने पर उसे दिल का दौरा पड़ा और दिनांक 21.10.1999 को ही उसे अस्पताल में भर्ती कर लिया गया था। अत: कोई भी नहीं था, जो उसके साथ उसके ससुराल चलता। उसने कथन किया है कि रास्ते में उसकी मुलाकात गवाह यमुना पांडे से हुई जो उसे अपने घर ले गया, लेकिन अ॰ सा॰ 5 यमुना पांडे ने कथन किया है कि दिनांक 22.10.1999 को मंजू सिंह स्वयं

उसके घर आयी। उसने कथन किया है कि उसके शरीर पर उसके ससुराल वालों के प्रहार से कारित अनेक उपहतियाँ थी, लेकिन अ॰ सा॰ 11, डॉक्टर, जैसा ऊपर चर्चा की गयी है, ने मंजू सिंह के शरीर पर कोई भी बाहरी उपहतियाँ नहीं पायी। उसकी बहन का भी अ॰ सा॰ 3 के तौर पर न्यायालय में परीक्षण किया गया लेकिन सुधा ठाकुर ने भी उसके बयान की संपुष्टि नहीं की थी। उसने अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 2 में कथन किया कि उसने दिनांक 28.10.1999 को पुलिस को अपना बयान दिया जब वह अपने घर अपने पिता को देखने गयी थी। यद्यपि उसने कथन किया कि दिनांक 22.10.1999 को उसके ससुराल वालों द्वारा मंजू सिंह पर प्रहार किया गया था, लेकिन वह उसे देखने नहीं गयी थी और न ही उसने पुलिस से शिकायत की थी। उसने कथन किया कि दिनांक 22.10.1999 को अपने पिता को अस्पताल में देखने जाने से पहले वह घर गयी थी जहाँ उसकी मुलाकात मंजू सिंह और माता से हुई थी लेकिन तब भी पुलिस के पास सूचना दर्ज नहीं की गयी थी। उसने कथन किया कि प्राथमिकी दर्ज करने का कोई मौका नहीं था।

19. इस तरह उपर्युक्त सभी साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, मैं पाता हूँ कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने इन सारे साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, सही निष्कर्ष निकाला है कि दिनांक 22.10.1999 को कोई घटना नहीं हुई थी और दिनांक 22.10.1999 को हुई घटना के संबंध में परिवादी द्वारा दी गयी सारी कहानी को किसी भी गवाह द्वारा समर्थित और संपुष्ट नहीं किया गया है और अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप सिद्ध करने में विफल रहा है। उन्होंने बिल्कुल सही पाया है, जैसा ऊपर चर्चा की गयी है, कि दिनांक 22.10.1999 को घटी घटना के संबंध में दिनांक 28.10.1999 को प्राथमिकी दर्ज करने का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

20. मैं पाता हूँ कि अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय में कोई अनुचितता नहीं है बल्कि गवाहों के बयानों में अनेक विरोधाभास होने पर भी विद्वान विचारण न्यायालय ने वि॰ प॰ सं॰ 2 और 3 को दोषसिद्ध किया है।

21. मैं इस पुनरीक्षण याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मिर्जा तिर्के

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cr. Rev. No. 1146 of 2008. Decided on 11th September, 2009.

किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 49 सह-पठित झारखंड किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) नियमावली, 2003—नियम 22(5)—उम्र का अवधारण–विद्यालय प्रमाणपत्र अन्य दस्तावेजों पर या यहाँ तक कि उम्र का अवधारण करने वाले चिकित्सीय साक्ष्य पर भी अभिभावी होगा–न्यायालयों को उम्र का अवधारण करने में शैक्षणिक अभिलेखों पर बारीकी से विचार करना होगा–शैक्षणिक प्रमाण-पत्र में बच्चे के पिता के नाम की छोटी-मोटी अनियमितता जन्म तिथि को अस्वीकार करने का एक आधार नहीं हो सकता है। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.–M/s R. S. Mazumdar & Kaushik Sarkhel,For the Petitioner; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–यह दांडिक पुनरीक्षण अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ॰ टी॰ सी॰-VIII, राँची द्वारा दांडिक अपील सं॰ 128 वर्ष 2008 में पारित आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा दिनांक 29.11.2008 को मंदेर पी॰ एस॰ केस सं॰ 30 वर्ष 2007 के तत्सम जी॰ आर॰ केस सं॰ 1814 वर्ष 2007 से उद्भूत याची की जमानत प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी और किशोर न्याय अधिनियम

की धारा 49 के अधीन संचालित जाँच, जिसके द्वारा याची मिर्जा तिर्के की उम्र 19 वर्ष 9 महीनें निर्धारित की गयी थी में किशोर न्याय बोर्ड, रांची द्वारा दिनांक 29.3.2008 को पारित आदेश की संपुष्टि की गयी थी, के विरुद्ध किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 53 के अधीन दाखिल की गयी है।

2. लिखित रिपोर्ट में यह अभिकथन किया गया था कि जब 11 वर्षीय अभियोक्ती किरण तिर्के शौच से निपट कर रात्रि 10 बजे लौटी रही थी उसे याची सहित 10 अभियुक्तों ने पकड़ लिया और बारी-बारी से उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया जिसके परिणामस्वरूप वह बेहोश हो गयी। जब उसे कुछ देर बाद होश आया और उसने उनसे पानी मांगा, तो यह अभिकथन किया गया है कि अभियुक्तों ने उसे पेशाब पीने के लिए दिया। प्रारंभ में याची को रिमांड होम ले जाया गया। उसने किशोर न्याय बोर्ड, राँची के समक्ष किशोर होने का दावा किया जिसके लिए किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 (संक्षेप में किशोर न्याय अधिनियम) की धारा 49 के अधीन एक जाँच संचालित की गयी और ऐसी जाँच के दौरान कतिपय दस्तावेज प्रस्तुत किए गए। सिविल सर्जन-सह-सी० एम० ओ० राँची से भी एक चिकित्सीय रिपोर्ट मांगी गयी। किशोर न्याय अधिनियम की धारा 49 के अधीन की गयी जाँच में विद्वान किशोर न्याय बोर्ड ने संप्रेक्षित किया कि याची मिर्जा तिर्के ने झारखंड शैक्षिक परिषद् द्वारा जारी वार्षिक माध्यमिक परीक्षा 2007 का पंजीकरण रसीद सं० 1022015, अंक पत्र और प्रवेश पत्र के अलावा कोई मौखिक साक्ष्य अपने उम्र के प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत नहीं किया है। फिर भी, ऐसे शैक्षिक प्रमाण-पत्रों का परिशीलन से बोर्ड ने पाया कि ये मिर्जा तिर्के जो नरेश तिर्के का पुत्र है के पक्ष में जारी किए गए थे जबकि याची मिर्जा तिर्के नारु तिर्के का पुत्र था और याची द्वारा इस प्रतिवाद कि नरेश तिर्के और नारु तिर्के एक ही व्यक्ति है, के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था। याची मिर्जा तिर्के, पुत्र नारु तिर्के के विरुद्ध आरोप पत्र भी दाखिल किया गया था और याची कहीं भी यह अभिवाक नहीं किया था कि उसका पिता नरेश तिर्के के तौर पर भी जाना और संबोधित किया जाता था और इस कारण याची की ओर से दाखिल शैक्षिक प्रमाण पत्रों को विचार में नहीं लिया गया था। सिविल सर्जन-सह-सी० एम० ओ०, रांची द्वारा जारी चिकित्सीय रिपोर्ट दर्शाती है कि दिनांक 6.8.2007 को याची की उम्र 20 वर्ष निर्धारित की गयी थी और चूँकि अभिकथित घटना की तिथि 16.5.2007 थी, किशोर न्याय बोर्ड ने याची की उम्र 19 वर्ष 9 महीना निर्धारित किया। किशोर न्याय बोर्ड के इस निष्कर्ष को दांडिक अपील सं० 128 वर्ष 2008 में दिनांक 29.11.2008 को अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ० टी० सी० VIII, राँची ने संपुष्ट किया है।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री सरखेल ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालयों ने लगातार झारखंड किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) नियमावली, 2003 की धारा 22 के प्रावधानों का सही मूल्यांकन नहीं करके भारी भूल की है जबकि याची की याचिका को अस्वीकार करते हुए अपीलीय न्यायालय ने इस पर चर्चा की थी। किसी व्यक्ति, जो किशोर होने का दावा करता है, के उम्र का निर्धारण किस प्रकार किया जाए, इसके लिये नियम 22 (5) के अधीन प्रावधानों को स्पष्ट तौर पर निम्नलिखित अधिकथित किया गया है:-

''एक किशोर या एक बालक से संबंधित प्रत्येक मामले में, बोर्ड कोः-

(i) निगम अथवा नगरपालिका प्राधिकारी द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र; अथवा

(ii) विद्यालय जिसमें सबसे पहले दाखिला लिया गया है से मिली जन्म प्रमाण पत्र की तिथि;

(iii) मैट्रिकुलेशन अथवा समकक्ष प्रमाण-पत्र, यदि उपलब्ध हो; और

(iv) उक्त (i) एवं (ii) की अनुपस्थिति में, सम्यक् रूप से गठित मेडिकल बोर्ड की राय जो एक वर्ष के मार्जिन के अध्यधीन होगी, जो ऐसे मेडिकल बोर्ड द्वारा अभिलिखित किए जाने वाले उपयुक्त मामलों में होगी (उसके उम्र के सम्बन्ध में) एवं ऐसे मामले में ऐसे साक्ष्य या चिकित्सीय राय यथास्थिति, पर विचार करने के उपरांत उसकी उम्र के सम्बन्ध में एक निष्कर्ष प्राप्त करेगा।''

4. इसमें पहले उल्लिखित नियम स्पष्टत: उम्र के निर्धारण हेतु विचार करने के लिए अधिमानी विकल्प देता है और नियम 5 के उप-नियम (i), (ii) और (iii) की अनुपस्थिति में ही सम्यक् रूप से गठित चिकित्सीय बोर्ड की चिकित्सीय राय अपेक्षित है जो एक वर्ष के मार्जिन के अधीन है। लेकिन वर्तमान मामले में समस्त दस्तावेजी साक्ष्यों, जैसे प्रवेश पत्र, अंक पत्र और झारखण्ड ऐकेडेमिक काँसिल द्वारा जारी वार्षिक माध्यमिक परीक्षा, 2007 का पंजीकरण रसीद 1022015, जिन्हें याची की ओर से प्रस्तुत किया गया था, को सिर्फ इस आधार पर उपेक्षित कर दिया गया था क्योंकि उसमें मिर्जा तिर्के के पिता का नाम नरेश तिर्के उल्लिखित था जबकि प्राथमिकी में याची मिर्जा तिर्के को नारु तिर्के का, न कि नरेश तिर्के का, पुत्र दर्शाया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि अवर न्यायालयों के समक्ष अधिवक्ताओं ने लगातार कथन किया है कि पिता नरेश तिर्के भारतीय सेना का एक भूतपूर्व सैनिक था जो दोनों नामों से संबोधित किया जाता था। अभिलेख पर लाए गए विद्यालय प्रमाण पत्र दर्शाते हैं कि उनमें दिखायी गयी जन्म की तिथि 7.9.1991 दर्ज की है और इस प्रकार अभिकथित घटना की तिथि के दिन वह 18 वर्ष से कम उम्र का था। झारखण्ड शैक्षिक परिषद् द्वारा जारी प्रमाण पत्र कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है और इसमें पहले निर्दिष्ट नियम 22 के उप-नियम-V के प्रावधानों की दृष्टि में चिकित्सीय साक्ष्य के ऊपर अभिभावी होगा।

5. अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किये कि किशोर याची मिर्जा तिर्के को किशोर न्याय बोर्ड, राँची के समक्ष अनेक अवसरों पर प्रस्तुत किया गया था जहाँ उसने वार्षिक माध्यमिक परीक्षा, 2007 में उपस्थित होने के लिए झारखंड एकेडेमिक काँउसिल, रांची द्वारा जारी प्रवेश पत्र प्रस्तुत किया था जिस पर उसके द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षरित चित्र भी लगा हुआ था लेकिन विद्वान किशोर न्याय बोर्ड इन चित्रों पर विचार करने में विफल रहा है। याची मिर्जा तिर्के को जारी किए गए पंजीकरण रसीद पर भी उसका चित्र लगा हुआ था। जिसमें उसे नरेश तिर्के के पुत्र के तौर पर दर्शाया गया था। याची ने दोनों दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किया था जिसकी तुलना न्यायालय में दाखिल उपस्थिति चिन्ह सहित अन्य दस्तावेजों पर उसके स्वीकृत हस्ताक्षर से की जा सकती थी। विधायन की जो बालकों की देखरेख एवं संरक्षण के लिए लाया गया है, आक्षेपित आदेश में पूर्ण उपेक्षा की गयी है जिसमें हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है।

6. उपर्युक्त तथ्यों और याची की ओर से किए गए निवेदनों की दृष्टि में, मै पाता हूँ कि झारखण्ड किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल और संरक्षण) नियमावली, 2003 के नियम 22 के प्रावधानों, जो अभियुक्त जिसने किशोर न्याय अधिनियम की धारा 49 के अधीन संचालित जाँच में किशोर होने का दावा किया है, के उम्र के निर्धारण हेतु अधिमानी विकल्प अधिकथित करते हैं, की उपेक्षा करके अवर न्यायालय ने भारी भूल की है। अवर न्यायालयों ने इन तर्कों को कि नरेश तिर्के अथवा नारु तिर्के एक ही व्यक्ति हैं विचार में नहीं लिया है। मैं आगे सिविल सर्जन-सह-सी० एम० ओ०, राँची द्वारा दाखिल रिपोर्ट में भी अनियमितता पाता हूँ जिसमें याची मिर्जा तिर्के को जालो तिर्के पुत्र के तौर पर दर्शाया गया है। प्रवेश पत्र पर चिपके चित्र पर और झारखण्ड शैक्षिक परिषद् द्वारा जारी पंजीकरण कार्ड पर मिर्जा

तिर्के द्वारा हस्ताक्षर किया गया है और ऐसे चित्रों को अभियोजन द्वारा किसी भी चरण पर खंडित नहीं किया गया है कि ये चित्र उस व्यक्ति के नहीं है जिसे मिर्जा तिर्के के तौर पर रिमाण्ड होम ले जाया गया है। अवर न्यायालय ने ऐसे दस्तावेजों पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं करके और सिविल सर्जन सह-सी० एम० ओ०, राँची द्वारा किए गए उम्र निर्धारण पर विश्वास प्रकट करते हुए उसकी उम्र 19 वर्ष 9 महीने निर्धारित करके भारी भूल की है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला में यह निरंतर अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रवेश पत्र अथवा शैक्षिक बोर्ड/कॉंसिल द्वारा परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर जारी किए गए प्रमाण पत्र में निहित जन्मतिथि अथवा याची द्वारा सबसे पहले विद्यालय से मिली जन्मतिथि प्रमाण पत्र किसी भी अन्य दस्तावेजों अथवा चिकित्सीय साक्ष्य के ऊपर अभिभावी होगा। लेकिन वर्तमान मामले में, अवर न्यायालयों ने चिकित्सीय साक्ष्य पर गलती से विश्वास प्रकट किया है और याची के अन्य शैक्षणिक अभिलेखों की उपेक्षा की है।

7. उक्त कथित कारणों से, मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश विधि के अंतर्गत पोषणीय नहीं है, तद्नुसार, इसे अपास्त किया जाता है और याची को घटना की अभिकथित तिथि पर 18 वर्ष की उम्र के अंदर अधिनिर्धारित किया जाता है।

8. उसके अभिलेखों को बाँट कर और विधि के अनुसार कार्यवाही करने के लिए उचित न्यायालय को हस्तांतरित करने का निर्देश देते हुए यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय आर० आर० प्रसाद, न्यायमूर्ति

गौरव बुधिया

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 100 of 2009. Decided on 28th October, 2009.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन स्थापित एक आवेदन के मामले में।

(क) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944—धाराएँ 9 एवं 13—वारंट के बिना गिरफ्तारी–जब केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी स्वयं किसी व्यक्ति को प्रथम दृष्टया दण्ड का भागी पाते हैं, तो वे गिरफ्तारी के वारंट के बिना उस व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकते हैं। (पैरा 17)

(ख) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944—धारा 14—जमानत का रद्दकरण–जमानत बंधपत्र को अधिनियम की धारा 14 के अधीन अधिकथित प्रावधानों के अनुपालन के बिना रद्द नहीं किया जा सकता है। (पैरा 29 एवं 30)

निर्णयज विधि.–AIR 1994, SC 1775; 2000(118) ELT 8 (P & H); 2003 Cr. L.J. 2002; AIR 1961 SC 1808; Maxwell of Statutes (10th Edition—Page- 229)—Discussed.

अधिवक्तागण.–M/s N.K. Pasari & Indrajit Sinha, For the Petitioner; M/s P.K. Prasad, A. G. & Ratnesh Kumar, For the Respondents.

निर्णय

इस रिट याचिका के माध्यम से याची की ओर से प्रत्यर्थी सं० 3 द्वारा केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिनियम, 1944 (इसमें इसके पश्चात् 'उक्त अधिनियम' के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 13 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का तात्पर्यित प्रयोग करते हुए की गयी उसकी गिरफ्तारी को असंवैधानिक और गैर-कानूनी घोषित करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 में प्रतिष्ठापित इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलम्ब लिया गया है क्योंकि सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा जारी

गिरफ्तारी के किसी वारंट की अनुपस्थिति में किसी व्यक्ति को उक्त अधिनियम की धारा 9 के प्रावधान का उल्लंघन करने के लिए गिरफ्तार करने हेतु सक्षम नहीं है क्योंकि उक्त अधिनियम की धारा 9A के उक्त प्रावधान के निबंधनों के अधीन ऐसे अपराध असंज्ञेय है।

साथ-साथ, सब-जज-II, सह-विशेष न्यायाधीश (आर्थिक अपराध), धनबाद के न्यायालय में लंबित मामले सी॰ ओ॰ सं॰ 1 वर्ष 2009 में कार्यवाही को अभिखंडित करने की मांग की गयी है क्योंकि, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(d) के अधीन परिभाषित किया गया है, उक्त कार्यवाही न तो किसी परिवाद पर प्रारंभ की गयी है और न ही प्राथमिकी के आधार पर प्रारंभ की गयी है।

2. इसके अतिरिक्त, याची ने एक अंतर्वर्ती आवेदन आई॰ ए॰ (क्रि॰) सं॰ 1170 वर्ष 2009 के माध्यम से विशेष न्यायाधीश (आर्थिक अपराध), धनबाद द्वारा दिनांक 18.5.2009 को पारित उस आदेश के अभिखंडन की मांग की है जिसके द्वारा उन्होंने अभियोजन को पक्षों की उपस्थिति में अधिग्रहित लैपटॉप से प्रिन्टआउट निकालने का निर्देश दिया है और याची को लैपटॉप से निकाले गए प्रिन्टआउट को अधिप्रमाणित करने का निर्देश दिया है जिसमें विफल रहने पर उसका जमानत पत्र रद्द कर दिया जाएगा।

3. पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों का उल्लेख करने से पहले इस मामले के तथ्य, जिनसे यह याचिका उद्भूत हुई है, ये हैं कि याची सिलिको मैंगनीज एवं अन्य आनुषंगिक उत्पाद के विनिर्माण में लगी मेसर्स बिहार फाउन्डरी एवं कास्टिन्ग्स लिमिटेड (इसमें इसके पश्चात् 'कंपनी' के तौर पर निर्दिष्ट) के निदेशकों में से एक है। दिनांक 16/17 अक्टूबर, 2008 को मेसर्स बिहार फाउन्डरी एवं कास्टिन्ग्स लिमिटेड और इसकी अन्य इकाईयों, जो मेसर्स गौतम फैरो एल्वाय के नाम से चल रही है के परिसरों की तलाशी केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क आसूचना महानिदेशक, जमशेदपुर और राउरकेला के अधिकारियों की टीम द्वारा ली गयी थी। तलाशी के दौरान कुछ दस्तावेज पाये गये थे जिन्हें याची, जो वहाँ लगातार उपस्थित था, की उपस्थिति में अधिग्रहित किया गया था और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिनियम की धारा 14 के अधीन उसका बयान दर्ज किया गया था। तलाशी के दौरान कारखाने के परिसर से एक लैपटॉप बरामद किया गया जिसमें टैली-9 में आँकड़े निहित थे और जिसकी सात फाइलें थी जिसमें से तीन फाइलों को विकृत (Corrupt) पाया गया था। जब उन चार फाइलों को खोला गया, उनमें से दो उक्त कम्पनी के (Accounted) विक्रय से संबंधित थी, लेकिन दो फाइलों का कानूनी अभिलेखों से मिलान नहीं पाया गया था बल्कि वह कुल वास्तविक विक्रय एवं अगन्य विक्रय निहित करती प्रतीत होती थी। तत्पश्चात् सी॰ डी॰ रॉम की मदद से प्रिन्टआउट निकाले गए जिसे याची ने प्रमाणित किया कि वे दस्तावेज बी॰ एफ॰ सी॰ एल॰ से संबंधित है और अभियोजन के मामले के मुताबिक, याची ने कुछ फाइलों को देखने पर बयान दिया कि कतिपय मामलों में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क शायद भुगतान नहीं किया गया था और इस कारण अग्रिम भुगतान की तौर पर 2.5 करोड़ रुपये चेक इसे जमा करने हेतु दिया गया था। लेकिन याची द्वारा इन्कार किया गया है कि उसने स्वेच्छापूर्वक चेक दिए थे बल्कि उसे उस राशि के चेक देने के लिए मजबूर किया गया था। आगे अभियोजन का मामला यह है कि याची ने यह भी बयान दिया कि फाइल के परीक्षण के पश्चात वह विक्रय मूल्य की भिन्नता और अन्य विवरणों, जो उन दो फाइलों में है, का कारण मालूम कर सकता है। लैप टॉप से प्रिन्टआउट निकालने के बाद इसे आगे अन्वेषण के लिए सम्यक रूप से सील कर दिया गया। याची को अनेक मौकों पर बुलाया गया लेकिन वह दिनांक 14.11.2008 को अपने वकील के साथ आया और जब वकील को उपस्थित रहने से मना किया गया तो याची ने कार्यवाही स्थगित करने की मांग की ताकि वह अपनी शिकायत दूर करवाने के लिए न्यायालय का आश्रय ले सके। उसी दिन, किसी सत्यानन्द झा, याची का मित्र, जिसे भी सम्मन किया गया था, ने एक फैक्स भेजा जिसमें उसने लैप टॉप के स्वामित्व का दावा किया।

4. इसी बीच, याची ने इस न्यायालय के समक्ष तलाशी और अधिग्रहण को चुनौती देते हुए एक

रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (टी॰) सं॰ 5522 वर्ष 2008 दाखिल की जिसे स्वीकार कर लिया गया लेकिन याची के सहयोग से अन्वेषण जारी रखने की अनुमति दे दी गयी।

5. तत्पश्चात, जब याची अपने वकील के साथ दिनांक 2.2.2009 को उपस्थित हुआ तो उन्हें शेष प्रिन्टआउट, जिन्हें लैपटॉप से लिया जाना था, को सत्यापित करने को कहा गया। सील खोलने के उपरांत जब लैपटॉप खोलने के बाद लैपटॉप चालू किया गया तब याची ने प्रासंगिक आकड़ों का प्रिन्टआउट निकालने के लिए अपनी सहमति इस आधार पर नहीं दी कि यह लैपटॉप उसका कभी नहीं था बल्कि उसके अनुसार यह सत्यानन्द झा का था। तत्पश्चात्, लैपटॉप को फिर से सील कर दिया गया था और याची द्वारा शुल्क के अपवंचन का प्रथम दृष्टया साक्ष्य पाये जाने पर और अन्वेषण के प्रति उसके विरोधात्मक रवैये और गवाहों को प्रभावित करने के कृत्य को देखते हुए सक्षम प्राधिकारी की सहमति से उसे गिरफ्तार कर लिया गया था। तत्पश्चात्, विशेष न्यायाधीश (आर्थिक अपराध), पूर्वी सिंहभूम से अभिवहन प्रतिप्रेषण मिलने के बाद याची को दिनांक 3.2.2009 को सब-जज-II-सह-विशेष न्यायाधीश (आर्थिक अपराध), धनबाद के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और इसी तिथि पर अपराध रिपोर्ट, जिसे प्रारंभिक शिकायत कहा गया है, दाखिल किया गया था जिसे सी॰ ओ॰ केस सं॰ 1 वर्ष 2009 के तौर पर दर्ज किया गया और याची को न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया था। तत्पश्चात्, न्यायालय के आदेश के अधीन लैपटॉप में संग्रहित फाइलों, विकृत फाइलों का भी, प्रिन्ट-आउट याची और उसके प्रतिनिधि की उपस्थिति में निकाले गए जिन्हें सील भी कर दिया गया था। उन प्रिंटआउट से अवैध विक्रय के बारे में प्रथम दृष्टया जाना जा सकता था, अत: आगे अन्वेषण जारी रखने के लिए और भुगतान योग्य शुल्क की वास्तविक राशि निर्धारित करने के लिए न्यायालय के समक्ष याची और उसके अधिवक्ता की उपस्थिति में मुहरबंद लिफाफे को खोलना आवश्यक था ताकि उन्हें अभिप्रमाणित किया जा सके और इसलिए ऐसा करने हेतु एक आवेदन भी दाखिल किया गया था लेकिन इसके पहले कि कोई आदेश पारित किया जाता, याची ने इस न्यायालय के समक्ष एक तत्काल रिट याचिका दाखिल किया, जिसे सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया, लेकिन इसी बीच इस प्रभाव का आदेश पारित किया गया कि उन दस्तावेजों, जिन्हें अधिग्रहण के समय अधिग्रहित किया गया था, को नियत अगली तारीख पर याची द्वारा अधिप्रमाणित करवाया जाए। इस न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश के अनुसरण में, याची को दस्तावेजों को अधिप्रमाणित करने के लिए निर्देश देने हेतु एक आवेदन दिया गया। तद्नुसार, न्यायालय ने दिनांक 18.5.2009 के आदेश के तहत याची को उन दस्तावेजों, जिनके प्रिन्टआउट दोनों पक्षों की उपस्थिति में न्यायालय में निकाले गए थे, को अधिप्रमाणित करने का निर्देश दिया।

6. उस आदेश से व्यथित होकर, याची ने अंतर्वर्ती आवेदन के माध्यम से उस आदेश को चुनौती दी है।

7. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा ने निवेदन किया है कि अभियोजन के मुताबिक याची को प्राधिकारी द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उक्त अधिनियम की धारा 9 का उल्लंघन करने वाले अपराधों के लिए गिरफ्तार किया गया था लेकिन वे अपराध उक्त अधिनियम की धारा 9A के धारणा खंड के अधीन असंज्ञेय अपराध है और इस तरह केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन प्राधिकारी को गिरफ्तारी के वारंट के बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की अधिकारिता नहीं है और इस तरह केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विभाग के अधिकारियों द्वारा गिरफ्तारी के वारंट के बिना याची को गिरफ्तार करना असंवैधानिक और गैरकानूनी है। विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **कुमारी रजनी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2003 क्रि॰ एल॰ जे॰ 2062)** को निर्दिष्ट किया है।

8. वह आगे निवेदन करते हैं कि याचिका जिसके आधार पर परिवाद केस सी॰ ओ॰ सं॰ 1 वर्ष 2009 शुरू किया गया था, में प्रयुक्त शब्दावली इतनी विरोधाभासी है कि याची के लिए समझना मुश्किल है कि यह परिवाद है अथवा अन्य कोई आवेदन क्योंकि कुछ स्थानों पर यह कथन किया गया

है कि याची ने अधिनियम की धारा 9(1)(b) (bb) (bbb) सह-पठित धारा 9AA के अधीन अपराध किया है और इस प्रकार उन अपराधों का संज्ञान लिया जाना चाहिए। लेकिन कतिपय पैराग्राफों में किए गए कुछ बयानों से प्रकट होगा कि अन्वेषण अभी भी लंबित है और ऐसी स्थिति में और विभाग के परिपत्र, परिशिष्ट-6 के अधीन उपाबद्ध की दृष्टि में भी, यह परिवाद नहीं हो सकता है क्योंकि परिपत्र को आज्ञा के अनुसार, पक्षों द्वारा प्रस्तुत दावों में न्याय निर्णयन के पहले अभियोजन प्रारंभ नहीं किया जाना चाहिए। स्वीकृत तौर पर, कम्पनी द्वारा शुल्क के अभिकथित अपवंचन के लिए कोई न्याय निर्णयन की प्रक्रिया प्रारंभ नहीं की गयी है और ऐसी स्थिति में, कार्यवाही, जिसे परिवाद माना गया है, अपास्त करने योग्य है।

9. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि अपराध रिपोर्ट/तात्पर्यित परिवाद में लगाए गए आरोप के कारण याची को हमेशा भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के निबंधनों के अनुसार अभियुक्त माना जाएगा और इस कारण उसे स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य देने हेतु मजबूर नहीं किया जा सकता है लेकिन विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 18.5.2009 का आदेश पारित कर, जिसके द्वारा उन्होंने याची को निर्देश दिया कि वह लैपटॉप से निकाले गए प्रिन्टआउट को अधिप्रमाणित करे अन्यथा उसका जमानत रद्द कर दिया जाएगा, याची पर स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य देने हेतु दबाव डाला है जो Principle of self-incrimination भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) में प्रतिष्ठापित स्व-अभियोग के सिद्धांत के विरुद्ध है।

विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि उक्त आदेश विधि की दृष्टि में भी इस तथ्य की दृष्टि में दोषपूर्ण है कि उक्त अधिनियम की धारा 14 के निबंधनों के अनुसार (मामला अभी भी जाँच पड़ताल के चरण पर है और इस कारण इस मामले की छानबीन से संबंधित न्यायिक हस्तक्षेप अनधिकृत होगा।

10. इसके विरुद्ध, विद्वान महाधिवक्ता ने निवेदन करते हैं कि उक्त अधिनियम की धारा 13 के अधीन केंद्रीय उत्पाद-शुल्क अधिकारी में निहित शक्तियों के कारण केंद्रीय उत्पाद-शुल्क कमिश्नर की पूर्व सहमति से केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी किसी व्यक्ति को, यदि उसके पास विश्वास करने हेतु पर्याप्त कारण है कि वह उक्त अधिनियम अथवा इसके अंतर्गत निर्मित नियमों के अधीन सजा का जिम्मेवार है, गिरफ्तार करने में सक्षम है और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिकारी ने याची को परिसरों पर छापे के दौरान जब उत्पाद-शुल्क के वृहत अपवंचन का प्रथम दृष्टया प्रमाण पाया गया, याची को गिरफ्तार किया और मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया।

11. वह आगे निवेदन करते हैं कि उक्त अधिनियम की धारा 18 द्वारा गिरफ्तार करने की शक्ति को सीमित कभी नहीं किया गया है और उसमें अनुबद्ध किया गया है कि इस अधिनियम के अधीन सारी तलाशी या गिरफ्तारी दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार किया जाना होगा जिसका अर्थ है कि गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी को गिरफ्तारी और तलाशी के मामले में संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों में अधिकथित औपचारिकताओं को संप्रेक्षित करना होगा। इस प्रकार, उक्त अधिनियम की धारा 18 के अधीन प्रतिष्ठापित प्रावधान का अर्थ यह कतई नहीं है कि सक्षम अधिकारी गिरफ्तारी के वारन्ट की अनुपस्थिति में एक व्यक्ति को कभी भी गिरफ्तार नहीं कर सकता है भले ही उसके पास विश्वास करने का कारण हो कि उक्त व्यक्ति अधिनियम के अधीन सजा का जिम्मेवार है, जैसा उक्त अधिनियम की धारा 9A में निहित प्रावधान, जो उक्त अधिनियम की धारा 9 के अधीन किए गए अपराधों को असंज्ञेय बताते हैं, को दृष्टि में रखते हुए याची की ओर से निवेदन किया गया है कि यदि ऐसे निवेदन को स्वीकार किया जाता है, अधिनियम के समस्त उद्देश्य को निष्फल कर देगा क्योंकि तब एक सक्षम अधिकारी, जिसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी व्यक्ति ने उक्त अधिनियम के अंतर्गत अपराध किया है, गिरफ्तारी के वारंट की अनुपस्थिति में याची को गिरफ्तार नहीं कर पाएगा, जो कि विधायिका का उद्देश्य कभी नहीं था। अत: सारे प्रावधानों को सामंजस्यपूर्वक अर्थान्वित करना चाहिए ताकि अधिनियम का कोई भी प्रावधान अनावश्यक न समझा जाए।

12. इस संबंध में, आगे यह निवेदन किया गया है कि उक्त अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की उत्पाद शुल्क अधिकारी की शक्ति संपूर्ण आत्यन्तिक है और ये शक्ति उक्त अधिनियम की धारा 9A में निहित प्रावधान द्वारा कभी कम नहीं की जा सकती है और इस प्रकार, किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने हेतु लगाया गया निषेध उत्पाद शुल्क अधिकारी पर लागू नहीं होता है बल्कि यह पुलिस अधिकारी सहित किसी अन्य व्यक्ति से संबंधित है जो किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर रहा है जिसके ऊपर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन अपराध करने का आरोप लगाया जा रहा है। ऐसी ही **प्रतिपादना सुनील गुप्ता बनाम भारत संघ, 2000(118) E.L.T. 8 (P & H)** मामले में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित की गयी है। इस प्रकार, यह निवेदन किया गया था कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी द्वारा की गयी याची की गिरफ्तारी कभी भी असंवैधानिक अथवा गैर–कानूनी नहीं प्रतीत होती है। आगे यह निवेदन किया गया था कि यद्यपि परिवाद याचिका में कतिपय विरोधाभासी बयान दिए गए है, लेकिन उन बयानों से मुख्य बात अर्थात् सार जो प्रकट होता है वह यह है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी, ऐसा विश्वास करने का कारण होते हुए कि याची ने केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन अपराध किया है, ने उसे मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया जिसके समक्ष एक परिवाद, जिसे एक अपराध रिपोर्ट कहा जा सकता है, कतिपय बयान देते हुए दर्ज किया गया जिसमें दर्शाया गया कि मामला अभी भी अन्वेषित किया जा रहा है। जब एक बार उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन अपराध करने के लिए याची को मजिस्ट्रेट के समक्ष भेज दिया गया, तब मजिस्ट्रेट को याची को न्यायिक हिरासत में भेजने की पूरी शक्ति है। तत्पश्चात्, मजिस्ट्रेट द्वारा जो भी आदेश पारित किया गया था वह अन्वेषण/जाँच की मदद हेतु था और इसलिए, उन आदेशों को गैर–कानूनी नहीं कहा जा सकता है।

13. इस तरह, उक्त अधिनियम के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हुए, याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अपना तर्क दिया है कि गिरफ्तारी का वारंट नहीं होने पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी को किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति नहीं है जबकि प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यद्यपि प्रकटतः विरोधाभास प्रतीत होते हैं लेकिन ये केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के गिरफ्तार करने की शक्ति पर प्रभाव नहीं डालते हैं यदि अधिनियम के प्रावधानों का सामंजस्यपूर्वक अर्थ लगाया जाए। इस चरण पर जब प्रावधान के निर्माण से संबंधित मामला उद्भूत हुआ है मैं मैक्सवेल ऑफ स्टैच्यूट (दसवाँ संस्करण) के पृष्ठ 229 पर उद्धृत लेखांश को निर्दिष्ट करना चाहूँगा जो निम्नलिखित है:–

> *''जब कानून की भाषा, अपने सामान्य अर्थ एवं व्याकरण के अनुसार, अधिनियमिति के दृश्यमान उद्देश्य के प्रकट विरोधाभास है अथवा कुछ असुविधा, अर्थहीनता, कठिनाई अथवा अन्याय, जो प्रकल्पित रूप से आशयित नहीं है, तो इसका एक ऐसा अर्थान्वयन किया जा सकता है जो शब्दों एवं वाक्य की संरचना को भी उपान्तरित करता है जब किसी कानून का मुख्य उद्देश्य और आशय स्पष्ट है, तो आवश्यकता अथवा प्रयुक्त भाषा की कठोर जटिलता की स्थिति के सिवाय प्रारुपकार के अकौशल अथवा विधि को अनभिज्ञता के कारण इसे अकृतता तक नहीं घटा देना चाहिए।*
>
> *उक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए न्यायालयों ने प्रकल्पित रूप से अनेक अवसरों पर अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालयों को ऐसा उद्घोषित करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए कि विधायिका अपनी इच्छा के अंतर्गत संपूर्णतः आने वाले मामलों पर अपने निरंतर व्यक्त प्रकट विचारों में भूल की है और इसे अधिनियम के शब्दों का सरल, सामान्य और व्याकरण के अनुरूप अर्थ लेना चाहिए जो सर्वोत्तम मार्गदर्शक हो सकता है लेकिन विधायी आशय को सामने लाने हेतु, न्यायालयों को प्रकट उद्देश्य, लक्ष्य और वास्तविक विधायी आशय को विचार में लेने की अनुमति है। अन्यथा शब्दों की एक अनाकृत यांत्रिक व्याख्या और उद्देश्य एवं*

लक्ष्य की धारणा से रहित विधायी आशय का उपयोजन विधायिका को अर्थहीन बना देगी।''

14. उक्त सिद्धान्त एवं विधि के मुख्य सिद्धान्त कि प्रत्येक कानून का निर्माण न्याय के उद्देश्य को अग्रसर करने हेतु न कि तकनीकी आधार पर विफल करने हेतु किया गया है, को ध्यान में रखते हुए मैं कानूनी व्याख्या के सिद्धान्तों और संबंधित अधिनियम की आत्मा और उद्देश्य की पृष्ठभूमि में पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों पर विचार करुँगा।

15. अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उत्पाद शुल्क का उद्ग्रहण और संग्रहण है जिसके लिए केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी नियुक्त किए गए हैं। वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सके, उन्हें शक्तियाँ प्रदान की गयी है कि वे सुनिश्चित करे कि शुल्क का अपवंचन नहीं किया जा रहा है और शुल्क में अपवंचन के दोषी व्यक्ति को कानून की गिरफ्त में लाए। उक्त अधिनियम की धारा 9 उक्त अधिनियम के अधीन किसी भी देय शुल्क के भुगतान का अपवंचन करने पर और नियमों द्वारा अपेक्षित किसी सूचना को देने में विफल रहने पर उक्त अधिनियम की धारा 6 या धारा 8 के अधीन अथवा उक्त अधिनियम की धारा 37(2) के खंड III के अधीन निर्मित नियमों के अधीन जारी अधिसूचना के किसी प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए, सजा की व्यवस्था करता है। अधिनियम के अधीन अनुबद्ध अधिकतम सजा सात वर्ष है। उक्त अधिनियम की धारा 9A एक धारण खंड है, जो अनुबद्ध करता है कि अधिनियम के अधीन अपराध असंज्ञेय है। उक्त अधिनियम की धारा 13 अधिकथित करती है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्यक् रूप से सशक्त कोई भी केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है जिसके बारे में उसे विश्वास करने का उसके पास कारण है कि वह इस अधिनियम के अधीन सजा का दायी है। उक्त अधिनियम की धारा 18 अधिकथित करती है कि इस अधिनियम अथवा इसके अंतर्गत निर्मित नियमों के अधीन की गयी सारी तलाशियाँ और इस अधिनियम के अधीन की गयी सारी गिरफ्तारियाँ दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों जो संहिता के अधीन क्रमशः तलाशियों और गिरफ्तारियों से संबंधित है, के अनुरूप की जानी चाहिए। उक्त अधिनियम की धारा 19 अधिकथित करती है कि इस अधिनियम के अधीन गिरफ्तार प्रत्येक व्यक्ति को बिना विलम्ब के निकटतम केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के सम्मुख भेजा जाना चाहिए जो ऐसे गिरफ्तार व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के पास भेजने हेतु सशक्त है, अथवा यदि युक्तिसंगत दूरी के अंतर्गत कोई केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी उपलब्ध नहीं है तो उसे निकटतम पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी के पास भेजना चाहिए। उक्त अधिनियम की धारा 21 जिसका अंतर्ग्रस्त विवाद्यकों पर गहरा प्रभाव पड़ेगा, को विस्तारपूर्वक ध्यान में लेना चाहिए, जो निम्नलिखित तौर पर पठनीय है:-

"(1) जब धारा 19 के अधीन कोई व्यक्ति केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के पास भेजा जाता है जो उस तरह गिरफ्तार व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के पास भेजने हेतु सशक्त है, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों की छानबीन करना चाहिए।

(2) इस उद्देश्य हेतु केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी समरुप शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और वह उन्हीं प्रावधानों के अध्यधीन होगा जिनका प्रयोग किसी पुलिस थाना का प्रभारी-अधिकारी कर सकता है और यह किसी संज्ञेय मामले का अन्वेषण करते समय दंड प्रक्रिया संहिता, 1989 (sic) के अध्यधीन होगाः

बशर्ते कि-

(a) यदि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी का मत है कि अभियुक्त के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य अथवा संदेह का युक्तियुक्त आधार है, उसे उस मामले में अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत हेतु प्रस्तुत करना होगा अथवा ऐसे मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में भेज देना होगा।

(b) यदि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी को प्रतीत होता है कि अभियुक्त के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य अथवा संदेह का युक्तियुक्त आधार नहीं है, उसे अभियुक्त को, प्रतिभूति सहित था बिना, उसके द्वारा बंधपत्र निष्पादित किए जाने पर निर्मुक्त कर देना चाहिए जिसे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के निर्देशानुसार अधिकारिता वाले

मजिस्ट्रेट के समक्ष, यदि और जब अपेक्षित हो, उपस्थित होना होगा और मामले के सारे विवरणों की संपूर्ण रिपोर्ट अपने उच्चतर अधिकारी को देना होगा।''

16. ये धाराएँ स्पष्टत: दर्शाती है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी को प्रदत्त गिरफ्तारी और तलाशी की शक्तियाँ उत्पाद शुल्क योग्य मालों पर लगाए गए शुल्क के उद्ग्रहण और संग्रहण के मुख्य कृत्य के समर्थन में है। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी, जो धारा 13 के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए सशक्त किये गये हैं, के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी धारा 19 के अधीन एक व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए सशक्त प्रतीत होते हैं परन्तु उस व्यक्ति द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति को केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के समक्ष भेजा जाना आवश्यक है जो उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजने के लिए सशक्त है और यदि ऐसा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी आस-पास उपलब्ध नहीं है तब निकटतम पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष गिरफ्तार व्यक्ति को भेजा जाना चाहिए। तत्पश्चात्, पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी पर धारा 20 के अधीन बाध्यता डाली गयी है कि या तो वह उसे जमानत के लिए मजिस्ट्रेट के सम्मुख ले जाए अथवा व्यतिक्रम में उसे ऐसे मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में भेज दे। आगे, यह प्रतीत होता है कि यदि धारा 19 के अधीन गिरफ्तार व्यक्ति केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी को भेजा जाता है, उसे धारा 21(2) के निबंधनों के अनुसार उन सारी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जो पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी को संज्ञेय मामलों के अन्वेषण हेतु प्राप्त है, मामले की छानबीन करेगा और यदि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी पर्याप्त साक्ष्य पाता है, उसे उसको जमानत लेने के लिए मजिस्ट्रेट के सम्मुख भेजेगा अथवा उसे ऐसे मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में भेज देगा।

17. अत:, यह ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा कि यदि कोई व्यक्ति केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा गिरफ्तार किया जाता है, गिरफ्तार व्यक्ति को या तो केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिकारी या फिर पुलिस अधिकारी के समक्ष भेजा जाना आवश्यक है और यदि गिरफ्तार व्यक्ति केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के समक्ष भेजा जाता है उसे छानबीन के दौरान सारी शक्तियाँ रहेंगी जो प्रभारी-अधिकारी को किसी संज्ञेय अपराध के अन्वेषण के मामले में रहती है। प्रकटत: उसे किसी व्यक्ति की वारन्ट के बिना निरुद्ध करने की शक्ति होगी। अत: ऐसा अभिनिर्धारित करना असंगत होगा कि जब केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी स्वयं किसी व्यक्ति को प्रथम दृष्टया सजा का दायी पाता है, वह उसे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 19 में प्रतिष्ठापित प्रावधान के कारण गिरफ्तारी के वारंट के बिना गिरफ्तार नहीं कर सकता है। विधायिका का यह आशय कदापि नहीं हो सकता है कि वह समरुप अपराध को एक स्थिति में संज्ञेय अपराध माने और दूसरी स्थिति में उसे असंज्ञेय अपराध माने जहाँ तक यह व्यक्ति की गिरफ्तारी से संबंधित है। अत: तार्किक निष्कर्ष यह होगा कि अपराधों के असंज्ञेय होने के कारण गिरफ्तारी के मामले में यदि कोई प्रतिबंध है भी तो इसे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के ऊपर अधिरोपित किया गया प्रतीत कभी नहीं होता है बल्कि यह पुलिस अधिकारी सहित अन्य व्यक्तियों पर अधिरोपित है और विधायिका की आज्ञा बिना किसी उद्देश्य के नहीं है बल्कि सुरक्षा हेतु उद्देश्यपूर्ण औजार है ताकि व्यक्ति को केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा अनावश्यक रूप से परेशान नहीं किया जाए। जिससे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी की भाँति उत्पाद शुल्क से संबंधित कानून के प्रावधान से सुपरिचित होने की अपेक्षा नहीं की जाती है। विधायिका का ऐसा आशय प्रावधान से परिलक्षित होता है जो अनुबद्ध करता है कि जब कभी भी एक अभियुक्त को पुलिस के समक्ष भेजा जाता है, पुलिस के पास उसे जमानत देने और जमानत के व्यतिक्रम में मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजने की आवश्यकता के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं है।

18. इस प्रकार, विधायिका का आशय केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी की शक्ति को प्रतिबंधित करना नहीं है सिवाय जैसा उक्त अधिनियम की धारा 13 के अधीन किया गया है। जहाँ तक उक्त अधिनियम की धारा 18 के अन्तर्गत प्रावधान का संबंध है, यह गिरफ्तारी और तलाशी के मामले में

अपनायी गयी प्रक्रिया से संबंधित है जैसा दंड प्रक्रिया संहिता में दिया हुआ है। दूसरे शब्दों में, यह गिरफ्तारी और तलाशी के मामले में अपनायी गयी प्रक्रिया तक ही सीमित है और यह कभी भी उक्त अधिनियम की धारा 13 के अधीन केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी को प्रदत्त गिरफ्तारी की शक्ति को लघुकृत अथवा निरावृत्त नहीं करता है। यह प्रतिपादना **सुनील गुप्ता (ऊपर)** के मामले में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित की गयी है, जबकि **कुमारी रजनी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2003 क्रि॰ एल॰ जे॰ 2062)** मामले में दिए गए निर्णय में ऐसा अभिनिर्धारित किया गया है कि एक विशेष अधिनियम उदाहरणस्वरुप केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 के अधीन कार्यरत प्राधिकारी गिरफ्तारी अथवा परिवाद दाखिल करने के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का अध्यारोही नहीं हो सकता है, एक बिल्कुल ही भिन्न तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में है जहाँ जिसमें जब एक कम्पनी के परिसर पर छापामारी की गयी थी और तीन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया था जिन्होंने उस मामले में याची व्यक्तियों के विरुद्ध बयान दिया था और जिसके चलते याचियों को उच्च न्यायालय के समक्ष जाना पड़ा ताकि वो प्राधिकारी को गिरफ्तार नहीं करने का निर्देश दे और तथ्य की इस पृष्ठभूमि में कि न तो कोई परिवाद है और न ही याचियों के विरुद्ध उत्पाद शुल्क प्राधिकारी द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गयी है न्यायालय ने ऐसा ही अभिनिर्धारित किया था। फिर भी, उसी समय न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया था:-

> *''उपर्युक्त चर्चा से निष्कर्ष पर आते हुए, यह प्रकट है कि प्राधिकारियों को उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन किसी को गिरफ्तार करने की शक्ति नहीं है सिवाय उन मामलों के, जैसा उक्त अधिनियम की धारा 13 में विहित है जैसा उक्त अधिनियम की धारा 13(2) में प्रगणित है। छानबीन पूरी होने पर उन्हें परिवाद दाखिल करने का और विधि के अनुसार कार्यवाही हेतु न्यायालय के समक्ष प्रार्थना करने का भी अधिकार है।''*

इस प्रकार, यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी को उक्त अधिनियम की धारा 13 के निबंधनों के अनुसार किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है और यह शक्ति अधिनियम की किसी अन्य प्रावधान के अध्यधीन कभी नहीं की गयी है।

19. दूसरे बिन्दु पर आते हुए, यह कहा जाना चाहिए कि सी॰ ओ॰ सं॰ 1 वर्ष 2009 के तौर पर विशेष न्यायाधीश, आर्थिक अपराध के समक्ष लंबित कार्यवाही को इस आधार पर अभिखंडित करने की मांग की गयी है कि परिवाद के जरिये कोई अभियोजन वैध रूप से शुरु नहीं किया जा सकता जबकि मामला अभी भी अन्वेषण/छानबीन के अधीन है और इस प्रकार ऐसी कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग की कोटी का होगा।

20. इस संबंध में उठाया गया अन्य बिन्दु यह है कि परिशिष्ट-6 में निहित कार्यपालक अनुदेश है जो अनुबद्ध करता है कि प्राधिकारी के समक्ष मामले के न्याय निर्णयन से पहले तक अभियोजन प्रारंभ करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन उक्त अनुदेश को अनदेखा करते हुए परिवाद दर्ज किया गया है और इस प्रकार दोनों आधारों पर, अभियोजन अभिखंडित किया जाना चाहिए।

21. आवेदन के परिशीलन से जिस पर उक्त मामला संस्थित किया गया है, यह भ्रम हो सकता है कि यह परिवाद याचिका है या अपराध रिपोर्ट जिसे प्रारंभिक परिवाद कहा गया है लेकिन इसके सार से यह प्रकट होता है कि यह वस्तुत: अपराध रिपोर्ट है क्योंकि मामला अभी भी अन्वेषण के अंतर्गत है। उक्त आवेदन में यह कथन किया गया है कि सामान्यत: न्याय निर्णयन प्रक्रिया पूरा हो जाने के बाद ही अभियोजन आरंभ किया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 200 के निबंधनों के अनुसार कोई परिवाद दाखिल नहीं किया गया है क्योंकि आरोप का अन्वेषण/छानबीन अभी चल ही रहा है और न्याय निर्णयन प्रक्रिया पूरी की जानी बाकी है। मामले की इस दृष्टि में मैं याची की ओर से किए गए निवेदनों में सार नहीं पाता हूँ।

22. इसके अतिरिक्त मैं **प्रवर्तन महानिदेशालय बनाम दीपक महाजन एवं एक अन्य (ए॰ आई॰ आर॰ 1994 एस॰ सी॰ 1775)** मामले को निर्दिष्ट करना चाहता हूँ जहाँ अन्य प्रश्नों के अलावा विचार के लिए एक प्रश्न यह था कि क्या मजिस्ट्रेट द्वारा प्राधिकृत निरोध के तहत विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम की धारा 35(2) के अधीन और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104(2) के अधीन अग्रसारित व्यक्ति को न्यायिक हिरासत में अथवा किसी अन्य रूप में रखना आरंभ से ही शून्य एवं गैर कानूनी है।

23. मैं इंगित करता हूँ कि **फेरा** की धारा 35(2) और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 (1) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 19 के समरुप है। फेरा की धारा 35(2) और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 (2) मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को भेजे जाने के बारे में बताती है।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता के अनेक प्रावधानों पर विचार करने के बाद अभिनिर्धारित किया था कि इसका अपरिहार्य परिणाम यह है कि संहिता की धारा 167(1) के प्रथम अंश में उद्धृत 'कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है' फेरा की धारा 35 के अधीन अथवा सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 के अधीन भी, जैसा मामला हो, अपनी परिधि के अंतर्गत 'प्रत्येक गिरफ्तार व्यक्ति' का रुप ले लेता है और 'गिरफ्तार व्यक्ति' दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए मजिस्ट्रेट द्वारा निरुद्ध किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में फेरा अथवा सीमा शुल्क अधिनियम के अधीन 'गिरफ्तार व्यक्ति' धारा 167 (1) की सीमा के अंतर्गत 'अभियुक्त' का लक्षण सन्निहित करता है और इस प्रकार वह धारा 167 (2) के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा अपने समक्ष प्रस्तुत किए जाने पर निरुद्ध किये जाने का भागी है।

25. अत: उपर्युक्त चर्चित कारणों के लिए कार्यवाही को गैरकानूनी बताने वाला निवेदन गुणागुण रहित है।

26. अंत में, दिनांक 18.5.2009 को पारित आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अधीन किसी को भी स्वयं के विरुद्ध गवाही देने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है लेकिन अवर न्यायालय ने भारत के संविधान के उपर्युक्त प्रावधान के अधीन सुरक्षा की गारंटी को अनदेखा करके आदेश पारित किया और याची का दस्तावेजों को अधिप्रमाणित करने का निर्देश दिया जिसमे विफल रहने पर उसका जमानतपत्र रद्द कर दिया जाएगा।

27. यह निवेदन तथ्यों की पृष्ठभूमि में विचार किये जाने की अपेक्षा करता है कि जब कारखाने के परिसर पर दिनांक 16//17 अक्टूबर 2008 को छापेमारी की गयी, एक लैपटॉप अभिग्रहित किया गया था और तब लैप टॉप में संग्रहित कुछ फाइलों का प्रिंटआउट लिया गया था, जिसे याची द्वारा अधिप्रमाणित किया गया था। लेकिन तत्पश्चात जब पक्षों की उपस्थिति में न्यायालय को आदेश का अनुसरण करते हुए अन्य फाइलों का प्रिंटआउट निकाला गया, याची ने उन दस्तावेजों को अभिप्रमाणित करने से इन्कार कर दिया और अब उक्त आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि ऐसा अभिप्रमाणित करना स्वयं को फँसाना होगा जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अधीन प्रतिबंधित है लेकिन प्रश्न है कि क्या ऐसा अधिप्रमाणितीकरण स्वयं को फँसाना होगा या नहीं।

28. मैंने पहले ही ध्यान में लिया है कि पक्षों की उपस्थिति में न्यायालय के आदेश के अधीन कतिपय फाइलों का प्रिंटआउट निकाला गया था जिन्हें अभिप्रमाणित करना अपेक्षित था ताकि आगे जटिलता से बचा जा सके। अत: जो भी सूचना हो, वह स्वयं को फँसाती है या नहीं पहले से ही प्रिंट आउट में है और याची को उक्त सूचना को संपुष्ट करने कभी नहीं कहा गया है बल्कि उसे सिर्फ उन दस्तावेजों को अधिप्रमाणित करने कहा गया है। ऐसी स्थिति में, दस्तावेजो का सरल अधिप्रमाणीकरण स्वयं को फँसाने वाला बयान नहीं होगा और अगर यह स्वयं को फँसाने वाला बयान नहीं होगा और अगर यह स्वयं को फँसाने वाला नहीं है तो याची संविधान के अधीन मिली गारंटी का लाभ नहीं ले

पाएगा। इस चरण पर मैं **बाम्बे राज्य बनाम कथी कालू ओघड़, (ए॰ आइ॰ आर॰ 1961 एस॰ सी॰ 1808)** मामले में दिये गये निर्णय को निर्दिष्ट करना चाहूँगा जिसमें न्यायालय ने अधिकथित किया है:-

''किसी अभियुक्त व्यक्ति द्वारा दिए गए परिसाक्ष्य को स्वयं को आलिप्त करने वाला कहे जाने के क्रम में, जिसकी बाध्यता सांवैधानिक प्रावधान के निषेध के अन्तर्गत आता है इसे ऐसी प्रकृति का होना चाहिए जो अभियुक्त को आलिप्त करने की प्रवृति रखे यदि ऐसा वास्तविक रूप से नहीं भी किया जाता है। अन्य शब्दों में, इसे एक ऐसा कथन होना चाहिए जो अभियुक्त के विरूद्ध मामले को कम से कम स्वयं के द्वारा विचार किया गया, सम्भाव्य बनाता है।''

29. उक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं इस निवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। लेकिन, आदेश का वह अंश जिसमें कथन किया गया है कि उसमें निहित निर्देश के अननुपालन के आधार पर याची का जमानत पत्र रद्द कर दिया जाएगा विधि में पोषणीय नहीं है क्योंकि उक्त अधिनियम की धारा 14 के अधीन निर्देश के अननुपालन के परिणाम को अनुध्यात किया गया है और इस प्रकार दिनांक 18.5.2009 को पारित आदेश का अंश, जहाँ यह कथन किया गया है कि याची का जमानत पत्र रद्द कर दिया जाएगा, अभिखंडित किया जाता है।

30. इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं॰ 3 याची की गिरफ्तारी के मामले में कभी भी अधिकारिता के बिना कार्य करता नहीं प्रतीत होता है और न ही दिनांक 18.5.2009 के आदेश सहित विशेष न्यायाधीश (आर्थिक अपराध) के समक्ष लंबित कार्यवाही दोषपूर्ण है सिवाय आदेश के उस अंश के जहाँ यह कथन किया गया है कि उसमें निहित निर्देश के अननुपालन के कारण याची का जमानतपत्र रद्द कर दिया जाएगा, आदेश के उस अंश को अभिखंडित किया जाता है।

31. परिणामस्वरूप, यह आवेदन ऊपर दर्शायी सीमा तक अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

सुधांशु शेखर

बनाम

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, आदित्यपुर, जमशेदपुर एवं अन्य

W.P. (S) No. 1595 of 2005. Decided on 16th September, 2009.

सेवा विधि–अनुकंपा पर नियुक्ति–याची की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की गई परन्तु बाद में उसको बर्खास्त कर दिया गया इस आधार पर कि उसकी नियुक्ति काफी विलम्ब के उपरांत की गई थी–अभिनिर्धारित, अगर याची विलम्ब कारित करने के लिए उत्तरदायी नहीं है तो उसकी बर्खास्तगी अवैधानिक है–पिछले पारिश्रमिक के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 14)

अधिवक्तागण.–M/s M.S.Anwar, A.Ahmad, A.Hussain, For the Petitioner; Mr. Manish Mishra, For the Respondents.

आदेश

याची ने इस रिट आवेदन में निदेशक, राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 17.2.2005 के आदेश (परिशिष्ट-11) को चुनौती दी है, जिसके द्वारा याची की सेवाएं आक्षेपित आदेश के निर्गत होने की तिथि से समाप्त कर दी गई है। आक्षेपित आदेश के निरस्तीकरण की प्रार्थना करते समय याची ने प्रत्यर्थी राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान के अधीन गणित विभाग में उसे लिपिक-सह-टंकक के पद पर पुनर्बहाल करने के लिए एक निर्देश को निर्गत करने की भी प्रार्थना की है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

3. याची के मामले के संक्षेप में तथ्य ये हैं कि याची के पिता स्वर्गीय सच्चिदानन्द मलिक को आर॰ आई॰ टी॰, जमशेदपुर में सहायक के पद पर नियुक्त किया गया था। वर्ष 1987 में उसकी सेवा की अवधि के दौरान, याची के पिता को कुलसचिव के पद पर कार्य करने के लिए प्रतिनियुक्ति पर बी॰ आई॰ टी॰ सिन्दरी भेजा गया था। उसकी सेवारत रहते हुए 16.10.1988 को मृत्यु हो गई। कर्मचारी की मृत्यु पर, उसकी विधवा, अर्थात याची की माता ने अपने पुत्र अर्थात् याची को अनुकंपा के आधार पर एक नौकरी प्रदान करने के लिए और मृतक कर्मचारी के खाते से देय मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान करने के लिए भी प्रत्यर्थी एन॰ आई॰ टी॰ के सम्बद्ध प्राधिकारीगण के समक्ष एक अभ्यावेदन दाखिल किया।

4. अभ्यावेदन को सम्बद्ध प्राधिकारीगण द्वारा सचिव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, बिहार सरकार को अग्रसारित कर दिया गया और इसपर यथोचित निर्देश की प्रतीक्षा करते हुए प्रत्यर्थी ने सितम्बर, 1990 में याची को दैनिक वेतनभोगी के तौर पर नियोजित कर लिया था।

तथापि, जनवरी, 1991 में उसकी सेवाओं को रोक दिया गया था। अनुकंपा के आधार पर सेवा में अपने आमेलन की प्रार्थना करते हुए याची ने अपना अभ्यावेदन सौंपा और जवाब में दिनांक 12.12.1991 के एक पत्र (उपाबंध-3) द्वारा याची को साक्षात्कार एवं परीक्षा के लिए चयन समिति के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। समिति ने उसे योग्य पाने पर नियमित नियुक्ति के लिए उसके नाम की अनुशंसा कर दी।

चयन समिति की अनुशंसा के अनुसरण में, प्रत्यर्थीगण के सम्बद्ध प्राधिकारीगण ने दिनांक 13.9.1993 के पत्र (परिशिष्ट-4) द्वारा, जो याची की माता को संबोधित था, उसे सूचित किया कि प्रत्यर्थी संस्थान ने याची को अनुकंपा के आधार पर संस्थान में उसे नियुक्त करने का निर्णय लिया है। तथापि, ऐसे प्रस्ताव को सशर्त रखा गया था और संस्थान द्वारा मृतक कर्मचारी को आबंटित आवास को खाली करने के यह अध्यधीन था।

ऐसा आश्वासन दिए जाने पर, याची की माता ने आवास खाली कर दिया और तत्पश्चात् अनुकंपा आधृत नियुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की। तथापि, प्रत्यर्थीगण ने याची को नियुक्त करने से इन्कार कर दिया जिसपर याची की माता ने इस न्यायालय के समक्ष सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 3772 वर्ष 1998 (आर) के माध्यम से एक रिट आवेदन दाखिल किया।

रिट आवेदन का निस्तारण करते समय, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी संस्थान को अनुबद्ध समय के भीतर अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए याची के दावे पर विचार करने का निर्देश दिया। जब आदेश का अनुपालन नहीं किया गया तो एक अवमान याचिका दाखिल की गई और अवमान याचिका के लम्बित रहने के दौरान, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 9.7.2001 के नियुक्ति पत्र (परिशिष्ट-6/A) द्वारा याची को अनुकंपा पर नियुक्ति प्रदान कर दी थी।

लगभग दो वर्ष उपरांत, प्रत्यर्थी संख्या 3 ने निर्गत पत्र द्वारा याची को पूर्वोक्त पत्र (परिशिष्ट-6/A) की प्राप्ति की तिथि से एक महीने के भीतर, अनुकंपा के आधार पर याची की नियुक्ति से संबंधित दस्तावेजों/सूचनाओं को पेश करने का निर्देश दिया याची ने उपयुक्त माध्यम से प्रत्यर्थी सं॰ 3 को अपने जवाब दाखिल किया। लगभग दो वर्ष उपरांत दिनांक 7.1.2005 की नोटिस (परिशिष्ट-5) द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 3 ने याची को यह कारण बताने का निर्देश दिया कि उसकी सेवाएं क्यों न समाप्त कर दी जाए।

याची ने कारण-पृच्छा नोटिस की प्राप्ति के तिथि से एक सप्ताह के भीतर अपने कारण-पृच्छा के जवाब दाखिल कर दिया।

याची द्वारा सौंपे गए कारण-पृच्छा के उत्तरों के बावजूद प्रत्यर्थी संख्या 3 ने दिनांक 17.2.2005 के आक्षेपित पत्र (परिशिष्ट-11) द्वारा याची को सूचित किया कि उसके जवाब संतोषजनक नहीं पाए जाने से उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थी।

5. आक्षेपित आदेश की आलोचना करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश पूर्णतः अवैधानिक, मनमाना और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतो के विरुद्ध है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्टीकरण देते हैं कि याची को सुने जाने का पर्याप्त अवसर दिए बगैर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है और उन सुसंगत दस्तावेजों का याची को आपूर्त्ति किए बगैर ही जिनके आधार पर सेवाओं को समाप्त करने का निर्णय लिया गया था।

6. प्रत्यर्थी एन॰ आई॰ टी॰ की ओर से दाखिल प्रति शपथपत्र में लिया गया पक्ष यह है कि याची की सेवाएं समाप्त करने का निर्णय किसी मिथिलेश कुमार द्वारा दाखिल एक रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 680 वर्ष 2002 में दिनांक 24.1.2002 के आदेश द्वारा इस न्यायालय के सम्परीक्षणों के आधार पर याची की सेवाएं समाप्त करने का निर्णय लिया गया था और जिसके अधीन, निम्नांकित निबंधनों में कतिपय निर्देश दिए गए थेः–

> *"......अगर किसी व्यक्ति को हाल के दिनों में जैसे कि एक वर्ष के भीतर काफी विलम्ब अर्थात् मृत्यु के लगभग 12 वर्ष उपरांत नियुक्ति प्रदान की गई है या किसी व्यक्ति को गलत सूचना देकर अवैधानिक रूप से नियुक्त किया गया है, याची इसे प्राचार्य, आर० आई० टी०, जमशेदपुर को ध्यान में लाएगा, जो इसपर कार्रवाई करेगा। ऐसी स्थिति में, अगर नियुक्ति के मामले में कोई अवैधानिकता पाई जाती है, प्राधिकारी सम्बद्ध पक्ष को नोटिस देने के उपरांत एक यथोचित आदेश पारित करेगा।"*

प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पूर्वोक्त रिट याची मिथिलेश कुमार ने संस्थान के प्रचार्य को एक अभ्यावेदन संबोधित किया था यह दावा करते हुए कि वर्तमान मामले में, याची समेत कई कर्मचारीगण को अनुकंपा के आधार पर अवैधानिक रूप से नियुक्त किया गया है।

परिवाद की प्राप्ति पर, प्रत्यर्थी संस्थान के सम्बद्ध प्राधिकारीयों ने अति विलम्ब के उपरांत अनुकंपा के आधार पर उम्मीदवारों कि की गई नियुक्ति की वैधानिकता और औचित्य के प्रश्न का अवलोकन करने के लिए एक समिति का गठन किया था, और समिति द्वारा सौंपी गई यह इंगित करने वाली रिपोर्ट के आधार पर कि याची को प्रदान की गई नियुक्ति एक लम्बे विलम्ब के उपरांत थी और इसलिए वैधानिक नहीं थी, संस्थान के बोर्ड ऑफ गर्वनर ने याची की सेवाएं समाप्त करने का निर्णय लिया था। तथापि, सेवाओं को समाप्त करने की कार्यवाही करने से पहले याची को एक कारण-पृच्छा नोटिस निर्गत की गई थी। विलम्ब के लिए याची द्वारा रखे गए स्पष्टीकरण संतोषजनक न पाए जाने के कारण सेवाओं को समाप्त करने का निर्णय तद्नुसार लिया गया।

7. प्रतिद्वंदी निवेदनों से, जो निर्विवाद तथ्य उद्भूत होते हैं वे निम्नांकित रूप से हैंः–

> *(a) याची का पिता प्रत्यर्थी आर० आई० टी० के अधीन एक कर्मचारी था और वह सेवारत ही अक्टूबर, 1988 में मृत्यु को प्राप्त हो गया।*
>
> *(b) कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से एक वर्ष के भीतर ही उसकी विधवा, अर्थात् याची की माता ने उसके पुत्र अर्थात्, याची को अनुकंपा पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए अपना अभ्यावेदन सौंप दिया था।*
>
> *(c) अभ्यावेदन पर प्रत्यर्थी संस्थान द्वारा सम्यक् रूप से विचार किया गया था और चयन समिति को सामना करने एवं अपेक्षित परीक्षण और चयन समिति के समक्ष अन्तर्वीक्षा से होकर गुजरने के लिए याची को अध्यधीन करने के उपरांत,*

प्रत्यर्थीगण याची को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने पर सहमत हो गए थें और दिनांक 13.9.1993 के पत्र द्वारा याची की माता को ऐसा निर्णय संसूचित कर दिया था यद्यपि ऐसा प्रस्ताव एक शर्त के साथ रखा गया था कि उसे संस्थान के क्वार्टर को खाली कर देना है जो प्रारंभ से मृतक कर्मचारी को आबंटित किया गया था।

(d) यद्यपि याची एवं उसकी माता ने क्वार्टर खाली कर दिया था, फिर भी प्रत्यर्थीगण ने याची को नियुक्ति प्रदान करने से इन्कार कर दिया।

(e) बाध्य किए जाने पर, याची की माता ने एक रिट आवेदन दाखिल किया और जब एक अवमान कार्यवाही प्रारम्भ की गई तब प्रत्यर्थीगण ने 9.7.2001 को याची को नियुक्ति प्रदान कर दी थी और याची को इसके पश्चात सेवा में लगभग दो वर्षों तक बने रहने दिया गया था।

8. पूर्वोक्त तथ्यों से यह प्रकट है कि याची की ओर से उसकी माता द्वारा अपने पति की मृत्यु की तिथि से एक वर्ष से कम समय के भीतर ही अनुकम्पा आधृत नियुक्ति के लिए दावा किया गया था। यह प्रत्यर्थी संस्थान या जिसने अनुकंपा आधृत नियुक्ति के दावे पर एक यथोचित निर्णय लेने में विलम्ब किया था और मामला 1989 से 1993 तक रूका रहा जब प्रत्यर्थीगण ने याची को अन्तिम रूप से नियुक्ति प्रदान करने का निर्णय लिया। तथापि, मृतक कर्मचारी को आबंटित क्वार्टर को खाली करने की शर्त के अध्यधीन ऐसा प्रस्ताव रखा गया था, यद्यपि मृतक कर्मचारी के खाते से देय सेवानिवृत्ति लाभों को तत्काल निर्गत नहीं किया गया था और याची की माता को इसका भुगतान नहीं किया गया था और अनुकंपा पर नियुक्ति की योजना के अधीन भी ऐसी कोई शर्त अधिरोपित नहीं की जा सकती थी। जब क्वार्टर खाली करने के उपरांत भी याची को नियुक्ति प्रदान नहीं की गई, याची की माता ने एक रिट आवेदन दाखिल किया था और उसमें पारित आदेश के अनुपालन में ही और अवमान कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान प्रत्यर्थीगण ने जुलाई, 2001 में याची को अन्तिम रूप से नियुक्ति प्रदान की थी।

9. आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 680 वर्ष 2002 और अवमान (सिविल) केस सं॰ 866 वर्ष 2002 में पारित दिनांक 7.3.2003 के तत्सम आदेश पारित इस न्यायालय के दिनांक 24.1.2001 के आदेश से अन्तर्विष्ट निर्देश के अनुसरण में याची की नियुक्ति तात्पर्यित रूप से रद्द की गई थी।

10. उपरोक्त निर्दिष्ट अवमान केस में, इस न्यायालय ने विपक्षी पक्षकारों, अर्थात् इसमें प्रत्यर्थीगण को मिथिलेश कुमार द्वारा दाखिल रिट आवेदन में पारित न्यायालय के पूर्व के आदेश का अनुपालन करने हेतु समय अनुज्ञात करते हुए प्रत्यर्थीगण/विपक्षी पक्षकार को ऐसे 'अवैधानिक रूप से नियुक्त' व्यक्तियों को कारण-पृच्छा नोटिस निर्गत करने के निर्देश दिया था यह स्पष्टीकरण इप्सित करते हुए कि अनुकंपा के आधार पर अवैधानिक नियुक्ति के कारण उनकी सेवाएँ क्यों नहीं बर्खास्त कर दी जाए। ऐसे उत्तरों को प्राप्त करने पर, प्रत्यर्थीगण/विपक्षी पक्षकार के लिए यह पता लगाना आवश्यक बनाया गया कि क्या किसी को या अन्य को योजना के विरुद्ध और काफी विलम्ब के उपरांत नियुक्ति अवैधानिक किया गया है या नहीं। ऐसी संवीक्षा के लिए एक सप्ताह का समय अनुज्ञात किया गया था और तत्पश्चात, विधि के अनुसार यथोचित आदेश निर्गत करने के लिए मामले को बोर्ड ऑफ गवर्नर के समक्ष रखा जाना था।

11. पूर्वोक्त आदेश के एक कोरे पठन पर, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण को यह पता लगाने का निर्देश था कि क्या "किसी को भी योजना के विरुद्ध और अति विलम्ब के उपरांत अवैधानिक रूप से नियुक्त किया गया था या नहीं।"

12. जैसा कि ऊपर सम्परीक्षित किया गया है, याची की माता के पति की मृत्यु की तिथि से एक वर्ष के भीतर ही प्रत्यर्थी प्राधिकारों के समक्ष याची की अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन सौंप

दिया गया था। प्रारम्भ में, अभ्यावेदन बी० आई० टी०, सिन्दरी के सम्बद्ध प्राधिकारीयों के समक्ष सौंपा गया था इस विश्वास के साथ की चूँकि याची के पिता बी० आई० टी०, सिन्दरी में प्रतिनियुक्ति पर नियोजित था, और बाद में, निर्देश दिए जाने पर, इसी प्रकार का अभ्यावेदन प्रत्यर्थी आर० आई० टी०, जमशेदपुर के प्राधिकारीयों के समक्ष दाखिल किया गया था। जवाब में, प्रत्यर्थीगण ने दैनिक वेतनभोगी के तौर पर ही सही याची की सेवाओं में 22.9.1990 को और इस तिथि से नियोजित किया था, परन्तु इसके पश्चात 6.1.1991 को उसकी सेवाएं समाप्त कर दी थी। याची की माता द्वारा दाखिल रिट आवेदन में पारित इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में ही प्रत्यर्थीगण ने चयन समिति के समक्ष याची को परीक्षाओं के अध्यधीन करने के उपरांत, चयन समिति की अनुशंसा के अनुसरण में याची को नियुक्त करने का निर्णय लिया था और दिनांक 13.9.1993 के अपने पत्र द्वारा याची की माता को ऐसे निर्णय संसूचित कर दिया था, परन्तु इसके उपरांत भी नियुक्ति प्रदान नहीं की गई थी और, प्रदान नहीं की गई थी और अन्ततः याची द्वारा दाखिल रिट आवेदन और तत्सम अवमान आवेदन में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, प्रत्यर्थीगण ने 9.7.2001 को याची को नियुक्ति प्रदान की थी। इससे भी बढ़कर, अनुकंपा की नियुक्ति प्रदान करने के लिए विहित प्रत्यर्थी संस्थान के नियमों एवं उप-नियम का अनुपालन करने के उपरांत और चयन समिति/अनुकंपा नियुक्ति समिति के अनुशंसा पर ऐसी नियुक्ति की गई थी।

13. उपरोक्त तथ्यों से, यह प्रकट है कि यद्यपि नियुक्ति प्रदान करने में विलम्ब हुआ था, परन्तु न तो याची और नहीं उसकी माता को ऐसे विलम्ब के लिए दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि प्रत्यर्थी प्राधिकारीयों की ओर से कार्रवाई न करने के कारण ऐसा विलम्ब सामने आया था। अन्यथा भी चूँकि याची की माता द्वारा दाखिल पूर्व के रिट आवेदन में पारित इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में अन्ततः नियुक्ति प्रदान की गई थी, अतः, ऐसी नियुक्ति को एक अवैधानिक नियुक्ति माना या समझा नहीं जा सकता। एक अति पश्चातवर्ती तिथि, यानि 7.3.2003 को मिथिलेश कुमार के मामले में अवमान कार्यवाही में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश अवैधानिक नियुक्तियों के मामलों पर विचार करके एक निर्देश के साथ था, यह आदेश वैधानिक रुप से नियुक्त उम्मीदवारों के मामलों से सम्बन्धित नहीं है।

14. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों की दृष्टि में, मुझे समाधान है कि आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याची की सेवा समाप्त कर दी गई है, अनुचित, अवैधानिक और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के विरुद्ध है और इसे समर्थित नहीं किया जा सकता है। तदनुसार, यह आवेदन अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 17.2.2005 का आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट 11) एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थीगण के सम्बद्ध प्राधिकारीगण को, याची को उस पद पर पूनर्बहाल करने का निदेश दिया जाता है, जो उसने इस आदेश की तिथि से एक महीने के भीतर आक्षेपित आदेश के पारित होने की तिथि को धारण कर रखा था।

चूँकि उसके रिट आवेदन में याची का ऐसा कोई अभिवाक् नहीं उसकी सेवा समाप्ति के उपरांत वह कहीं और लाभप्रद स्थिति में नियोजित था अतः प्रत्यर्थीगण को याची के पिछले पारिश्रमिक के 50% भुगतान करना होगा, जो आक्षेपित आदेश के निर्गत होने की तिथि से पुनर्बहाली की तिथि तक परिकलनित किया जाएगा।

इन सम्परीक्षणों के साथ यह रिट आवेदन निस्तारित किया जाता है।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता को इस आदेश की एक प्रति प्रदान की जाए।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, और डी० के० सिन्हा, न्यायमूर्तिगण

दिनेश्वर गिरी उर्फ दिनेश गिरी एवं अन्य (245 में)

कृष्ण लाल यादव (246 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

L.P.A. Nos. 245, 246 of 2009. Decided on 29th October, 2009.

श्रम और औद्योगिक विधि–नियमितीकरण–अपीलार्थीगण ने उस स्कीम के लाभों के लिए दावा किया है जिसके अंतर्गत वे कर्मकार जिन्होंने कट-ऑफ तिथि (1.8.1985) के पूर्व 240 दिन पूरा कर लिया था, नियमित किए जाने के हकदार थें–विरोधी पक्षों का विवाद तथ्यात्मक पहलू पर है कि क्या याचीगणों-अपीलार्थीगणों ने कट-ऑफ तिथि से पूर्व 240 दिनों की निरन्तर अवधि पूरी कर ली है–यह अपील के प्रक्रम पर संवीक्षा का विषयवस्तु नहीं हो सकता है–अपीलार्थीगणों को यह अभ्यावेदन देने और स्थापित करने की स्वतंत्रता दी गयी कि उन्होंने कट-ऑफ-तिथि (1.8.1985) के पूर्व निरन्तर 240 दिनों की अवधि तक काम किया है और अगर ऐसा स्थापित कर दिया जाता है तब अपीलार्थीगण नियमितीकरण के अनुतोष के हकदार होंगे। (पैरा 2 से 4)

अधिवक्तागण.–M/s S.N.Pathak, N.K.Pandey, For the Appellants; M/s A.Allam, R. N. Roy, Suresh Kumar, For the Respondent.

आदेश

ये दोनों अपीलें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 339 वर्ष 2009 और डब्ल्यू० पी० (एस०) संख्या 340 वर्ष 2009 में दिनांक 30.1.2009 को पारित एक ही आदेश, जिसके द्वारा रिट याचिकाएँ खारिज कर दी गयी थी और परिणामस्वरूप याचीगण-अपीलार्थीगण द्वारा उनकी सेवायों के नियमितीकरण हेतु इप्सित अनुतोष नामंजूर कर दी गयी थी, के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. याचीगणों-अपीलार्थीगणों ने उपर्युक्त रिट याचिकाएं विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष इस अभिवाक् पर दाखिल किया था कि उनका मामला भी उन सबों के समरुप है जिनकी सेवाएँ प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा प्रारंभ की गयी विशेष स्कीम के अंतर्गत नियमित कर दी गयी थी। उक्त स्कीम के मुताबिक वे कर्मकार, जिन्होंने कट-ऑफ-तिथि अर्थात् 1.8.1985 के पूर्व 240 दिन पूरे कर लिए थे, नियमित किए जाने के हकदार थे। याचीगणों-अपीलार्थीगणों ने दावा किया है कि उन्होंने कट-ऑफ-तिथि अर्थात् 1.8.1985 के पूर्व 240 दिन पूरा कर लिया था लेकिन प्रत्यर्थियों ने इसे प्रतिवादित किया है और विवाद किया है कि अपीलार्थीगणों द्वारा विश्वास प्रकट किए गए दस्तावेजों का प्रत्यर्थी-राज्य ने विरोध किया है और यह निवेदन किया गया है कि याचीगणों-अपीलार्थीगणों ने कट-ऑफ-तिथि अर्थात् 1.8.1985 के पूर्व 240 दिनों की निरन्तर कार्यावधि पूरी नहीं की है और अभिलेखों से यह स्थापित नहीं होता है कि कट-ऑफ-तिथि के पूर्व 240 दिनों की अवधि एक निरन्तर अवधि थी।

3. चूँकि विरोधी पक्षों द्वारा तथ्यात्मक पहलूओं पर विवाद किया जा रहा है कि क्या याचीगणों-अपीलार्थीगणों ने कट-ऑफ-तिथि के पूर्व 240 दिनों की निरन्तर अवधि पूरी कर ली है, इसे अपील के चरण पर संवीक्षा का विषय-वस्तु नहीं बनाया जा सकता है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह संप्रेक्षित करते हुए कि यदि भविष्य में रिक्तियां होती है तब उनके दावों पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से पूर्वाग्रहित हुए बिना, विचार किया जाएगा, याचीगणों-अपीलार्थीगणों को पहले ही स्वतंत्रता दी है।

4. हम इसे पुन: दुहराते हैं और अपीलार्थीगणों को यह अभ्यावेदन देने और स्थापित करने कि छूट होगी कि उन्होंने कट-ऑफ-तिथि अर्थात् 1.8.1985 के पूर्व 240 दिनों की अवधि तक के लिए निरन्तर सेवा प्रदान की है, की स्वतंत्रता देते हैं और यदि इसे स्थापित कर दिया जाता है तब स्पष्टत: अपीलार्थीगण नियमितीकरण के अनुतोष के हकदार होंगे।

5. तद्नुसार, उपर्युक्त संप्रेक्षणों के प्रकाश में, इन अपीलों को निपटाया माना जाए।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

विजय लक्ष्मी श्रीवास्तव एवं एक अन्य

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

W.P. (L) No. 6248 of 2004. Decided on 19th November, 2009.

खनिज रियायत नियमावली, 1960–नियम 25A–याचियों के पिता को खनन पट्टा मंजूर किया गया–प्रत्यर्थी सं॰ 9 और 10 अपनी बहनों का अपवर्जन करके खनन पट्टे में शेयर का अपना अनन्य अधिकार का प्राख्यान करना चाहते थे–उप-कमिश्नर ने प्रत्यर्थी संख्या 9 और 10 के पक्ष में पट्टा मंजूर किया–जबकि मूल स्वर्गीय पट्टाधारी के विधिक उत्तराधिकारियों के बीच विभाजन मामला लंबित है–अभिनिर्धारित, आक्षेपित आदेश पारित करके उप-कमिश्नर ने संयुक्त पारिवारिक संपत्ति में अपने-अपने हिस्से के दावों से संबंधित पक्षों के विवाद के न्याय निर्णयन की शक्तियों को स्वयं को प्रदान कर ली है और वह भी इस तथ्य को नजरअंदाज करते हुए कि याचीगण मूल मृत पट्टाधारी की पुत्रियाँ होने के कारण हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन अपने-अपने हिस्से की हकदार हैं–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–पक्षों को सिविल न्यायालय द्वारा विवाद के न्यायनिर्णयन की प्रतीक्षा करने का सलाह दिया गया।
(पैरा 9, 11, 14 और 18)

अधिवक्तागण.–M/s Anil Kr. Sinha, Saurav Arun, For the Petitioners; J.C. to S.C. (Mines), For the Respondent-State; Mr. Rajiv Ranjan, For the Respondent No. 9; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondent No. 10.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. याचियों ने इस रिट याचिका में निम्नलिखित अनुतोषों की प्रार्थना की है:–

(i) पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा दिनांक 23.4.2004 को पारित आदेश (परिशिष्ट-7) जिसके द्वारा याची के हित के पूर्वाधिकारी, अर्थात्, स्वर्गीय सत्येन्द्र प्रसाद द्वारा खनिज रियायत नियमावली, 1960 के नियम 54 के प्रावधानों के अधीन दाखिल की गयी पुनरीक्षण याचिका को उपशमनीयता के कारण खारिज कर दिया गया था, को अभिखंडित करने के लिए।

(ii) उप-कमिश्नर द्वारा दिनांक 28.3.2006 को पारित आदेश (परिशिष्ट-8), जिसके द्वारा मूल पट्टाधारी की जगह प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 का नाम प्रतिस्थापित कर दिया गया था और उनके नाम में खनन पट्टा के नवीकरण का आदेश पारित किया गया है, को अभिखंडित करने के लिए।

3. याची सं॰ 2 और 3 और प्रत्यर्थी सं॰ 9 और 10 क्रमश: स्वर्गीय सत्येन्द्र प्रसाद की पुत्रियां और

पुत्र हैं। याची सं॰ 1 जिसका नाम उसकी मृत्यु के पश्चात इस रिट याचिका से हटा दिया गया है, शेष याचियों और प्रत्यर्थी सं॰ 9 और 10 की माता थी।

4. पक्षों के बीच चला आ रहा विवाद संपत्तियों के बंटवारे के संबंध में है जो पिता स्वर्गीय सत्येन्द्र प्रसाद की थी और वर्तमान रिट याचिका में, खनन पट्टे के उत्तराधिकार को लेकर विरोधी पक्षों के दावे से उत्पन्न विवाद है जिसे पिता स्वर्गीय सत्येन्द्र प्रसाद को दिया गया था।

5. इस रिट याचिका में उठाये गये विवाद के बेहतर मूल्यांकन हेतु, इसकी पृष्ठभूमि के तथ्यों को संक्षेप में बताना प्रासंगिक होगा:-

किसी मथुरा प्रसाद, याचियों और प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 के पितामह को वर्ष 1954 में सिंहभूम (पूर्वी) जिला में 154.25 एकड़ जमीन पर लौह अयस्क खनन करने का खनन पट्टा मंजूर किया गया था।

वर्ष 1970 में किसी समय मथुरा प्रसाद के अपने जीवनकाल के दौरान स्वयं और अपने भाई सत्येन्द्र प्रसाद द्वारा धारित संयुक्त परिवार के संपत्तियों में अपने हिस्से का दावा करते हुए सिविल न्यायालय में टी० एस० सं० 89 वर्ष 1970 नामक विभाजन मामला दाखिल किया था। विवाद को माध्यस्थम द्वारा सुलझाया गया और माध्यस्थ के अधिनिर्णय को टाइटल सूट सं० 89 वर्ष 1970 में न्यायालय का निर्णय बनाया गया था। अधिनिर्णय के निबंधनों के अधीन मथुरा प्रसाद का खनन पट्टा-अधिकार यह उद्घोषित करते हुए कि यह उसकी स्व-अर्जित संपत्ति है, सत्येन्द्र प्रसाद के हिस्से में दे दिया गया था।

माध्यस्थ के अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार, आइटम सं० 1 की संपत्ति के तौर पर निर्दिष्ट खनन पट्टा सहित सिंहभूम के खदानों को सत्येन्द्र प्रसाद (माध्यस्थम कार्यवाही का पक्षकार सं० 2) की स्व-अर्जित संपत्ति घोषित किया गया था। गजाधर खनन उद्योग के नाम और शैली के अधीन खनन व्यापार, अधिनिर्णय के मुताबिक, पक्षकार सं० 2 का हिन्दु संयुक्त परिवार व्यापार फर्म और उसके पुत्रों जिसका कर्ता पक्षकार सं० 2 था, फर्म के तौर पर बताया गया था और इसे शेष पक्षों के लिए समस्त उद्देश्य हेतु पृथक बताया गया था।

वर्ष 1971 में मथुरा प्रसाद के देहान्त के उपरांत, सत्येन्द्र प्रसाद ने पट्टे का नवीकरण अपने नाम कराने हेतु आवेदन दिया था। नवीकरण की प्रार्थना को संबंधित प्राधिकारियों द्वारा पहले दिनांक 4.4.1977 और फिर 1.8.2002 को इस आधार पर कि मूल पट्टे के कतिपय देय अभी भी बाकी है अस्वीकार कर दिया गया था। फिर भी, सत्येन्द्र प्रसाद द्वारा दाखिल पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करने के बाद पुनरीक्षण प्राधिकारी ने दिनांक 1.8.2002 के आदेश के कार्यान्वयन को स्थगित कर दिया था।

जब पुनरीक्षण आवेदन लंबित था, सत्येन्द्र प्रसाद की मृत्यु हो गयी और उसके पीछे उसकी विधवा (याची सं० 1), दो पुत्रियाँ (याची सं० 2 और 3) और उसके दो पुत्र (प्रत्यर्थी सं० 9 और 10) रह गए। सत्येन्द्र प्रसाद की मृत्यु के उपरांत, उसकी विधवा (याची सं० 1) ने अपने मृत पति की जगह लंबित पुनरीक्षण याचिका में अपना नाम प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन दाखिल किया। लेकिन दिनांक 24.3.2004 के आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पुनरीक्षण याचिका को इस आधार पर कि किसी भी दावेदार ने अपने-अपने दावे के समर्थन में प्रासंगिक दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है, उपशमनित बताते हुए खारिज कर दिया।

6. प्रत्यर्थी सं॰ 9 और 10 की ओर से किए गए निवेदनों से प्रकट है कि उन्होंने भी पुनरीक्षण

प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर पुनरीक्षण याचिका दाखिल की है। संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष अभी भी पुनरीक्षण याचिका लंबित है।

7. जैसा प्रतीत होता है, पुनरीक्षण याचिका के लम्बित रहने के दौरान ही, उप-कमिश्नर ने दिनांक 28.3.2006 के आक्षेपित आदेश पारित कर दिया जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 को खनन पट्टाधारी के तौर पर समझे जाने हेतु उनका नाम पिता स्व० सत्येन्द्र प्रसाद की जगह प्रतिस्थापित कर दिया।

8. दिलचस्प बात यह है कि इस अवधि के दौरान बल्कि अपने पिता सत्येन्द्र प्रसाद के जीवनकाल के दौरान ही, प्रत्यर्थी सं० 10 ने उन संपत्तियों जिन्हें पिता सत्येन्द्र प्रसाद को परिवार का कर्ता बताते हुए संयुक्त पारिवारिक संपत्ति घोषित किया गया था, के बँटवारे के लिए उप-न्यायाधीश 1 के न्यायालय में टाइटल सूट सं० 21 वर्ष 2002 दाखिल किया था और वर्तमान याचियों एवं प्रत्यर्थी सं० 9 को भी आवश्यक पक्षकार के तौर पर पक्षकार बनाया गया था। याची सं० 2 और 3 ने खनन पट्टा में हिस्सा हक् समेत संपत्तियों में अपने हिस्से का दावा करते हुए विभाजन मामले का प्रतिवाद करने का प्रस्ताव किया है।

9. उक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में, वर्तमान पक्षों द्वारा उठाया गया विवाद अपने पिता की संपत्तियों में, खनन पट्टा में उनके हिस्से सहित, अपने हिस्से के लिए किए गए याचियों के दावे के इर्द-गिर्द घूमता है।

जैसा कि प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों से प्रकट होता है, विभाजन वाद, जो उप-न्यायाधीश 1, चाईबासा के न्यायालय में अभी लंबित है, में भी विवाद्यक, याचियों द्वारा खनन पट्टा में हिस्से के दावे के विवाद को सम्मिलित करता है।

यद्यपि प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 अपनी बहनों अर्थात् वर्तमान याचियों को माध्यस्थम अधिनिर्णय के आधार पर अपवर्जित करते हुए खनन पट्टे में हिस्से के अपने अनन्य अधिकार का प्राख्यान करना चाहते हैं लेकिन याचियों द्वारा किए गए विरोध के प्रकाश में सिविल न्यायालय द्वारा मामला निर्णीत किया जाना समुचित होगा। अधिनिर्णय की व्याख्या से, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के संशोधित प्रावधानों को याचियों एवं अन्यों पर लागू करने से और साथ-साथ विधि के बिंदुओं के अंतर्ग्रस्त किए विवाद्यकों से संबंधित विवादित प्रश्नों को सिविल न्यायालय द्वारा निर्णीत करने हेतु छोड़ दिया जाना यथोचित होगा। बँटवारा मामला के लम्बित रहने की दृष्टि में, इस न्यायालय के लिए अंत:क्षेप करना और विरोधी दावेदारों द्वारा संपत्तियों में हिस्से की दावेदारी से संबंधित प्रतिरोधात्मक विवाद्यकों पर हुए विवाद का समाधान करना समुचित नहीं होगा।

10. उप-कमिश्नर द्वारा दिनांक 28.3.2006 के पारित आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-8) को भी याचियों द्वारा इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि याचियों को बिना पूर्व सूचना दिए उप-कमिश्नर इस विवाद्यक कि खनन पट्टा के नवीकरण के लिए मूल पट्टाधारी के स्थान पर किसका नाम प्रतिस्थापित किया जाए को निर्णीत करने के लिए अग्रसर नहीं हो सकता था। आक्षेपित आदेश को इस आधार पर भी चुनौती दी गयी है कि यह खनिज रियायत नियमावली, 1960 के नियम 25A के उल्लंघन में है। पुनरीक्षण प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-7) को भी इसी आधार पर चुनौती दी गयी है कि यह खनिज रियायत नियमावली, 1960 के नियम 25A के उल्लंघन में है।

11. याचियों के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए० के० सिन्हा स्पष्ट करेंगे कि खनिज रियायत नियमावली के नियम 25A के प्रावधानों के मुताबिक आवेदक, जो खनन पट्टे के नवीकरण के लिए आवेदन देता है, की मृत्यु पर उसके विधिक प्रतिनिधियों को उसके स्थान पर प्रतिस्थापित माना जाएगा।

विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि दिनांक 7.2.2003 को स्वर्गीय सत्येन्द्र प्रसाद की मृत्यु पर उसकी विधवा (याची सं० 1) ने अन्य विधिक उत्तराधिकारियों की सहमति से पुनरीक्षण याचिका में, जिसे स्व० सत्येन्द्र प्रसाद ने खनिज रियायत नियमावली के नियम 54 के अधीन पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष दाखिल किया था, अपने मृत पति की जगह अपना नाम प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन दिया था। विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि इन परिस्थितियों के अंतर्गत पुनरीक्षण प्राधिकारी यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते थें कि पुनरीक्षण याचिका उपशमित हो गयी है और इस प्रकार, पुनरीक्षण प्राधिकारी के द्वारा दिनांक 23.4.2004 को पारित आक्षेपित आदेश गैर-कानूनी है और पोषणीय नहीं है।

विद्वान अधिवक्ता आगे तर्क करते हैं कि वर्तमान रिट याचिका के लम्बित रहने के दौरान और सिविल न्यायालय के समक्ष बँटवारा मामले के लम्बित रहने के दौरान उप-कमिश्नर केवल प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 के पक्ष में खनन पट्टे का नवीकरण करने के लिए निर्णय लेने को अग्रसर नहीं हो सकते थें। ऐसा निर्णय जैसा उप-कमिश्नर द्वारा लिया गया है, वह भी याचियों को अपना पक्ष रखने का अवसर दिए बिना, गैर-कानूनी है, जो याचियों को अपने पिता की संपत्तियों में हिस्से के उनके विधिसम्मत अधिकार से वंचित करता है और इस तथ्य को नजर अन्दाज करता है कि याचीगण भी सत्येन्द्र प्रसाद की पुत्रियाँ होने के नाते हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन खनन पट्टे में अपने हिस्से के हकदार है।

12. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा लिया गया आधार यह है कि चूँकि पक्षों के बीच का विवाद प्रश्नगत खनन पट्टे में हिस्सा और हित जो संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों का अंश गठित करता है, से संबंधित है, इसे बँटवारा मामले में सिविल न्यायालय द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।

13. खनिज रियायत नियमावली, 1960 के प्रावधानों का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि किसी आवेदक के पक्ष में खनन पट्टा जारी करने की शक्तियाँ राज्य सरकार के पास सुरक्षित है। अत: किसी आवेदक के पक्ष में खनन पट्टे के नवीकरण का निर्णय है इसलिए, आवश्यकतत: राज्य सरकार द्वारा लिया जाना होगा। नियमावली स्पष्ट तौर पर यह उपदर्शित नहीं करती कि राज्य सरकार उप-कमिश्नरों को ये शक्तियाँ प्रत्यायोजित कर सकता है।

प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता यहाँ यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि राज्य सरकार ने निर्णय लेने हेतु उप-कमिश्नरों को ये शक्तियाँ प्रदान की है। यह संदेहास्पद है कि क्या राज्य सरकार उप-कमिश्नरों को विधिवत् ऐसी शक्तियाँ प्रत्यायोजित कर सकती है अधिक से अधिक, राज्य सरकार इस सीमा तक जा सकती थी कि वह उप-कमिश्नरों से खनन पट्टा के नवीकरण हेतु की गयी आवेदकों की प्रार्थना पर उनका विचार किया जाय और इसके बाद इन विचारों के आधार पर कार्रवाई करें।

14. चाहे जो भी हो, तथ्य की इस दृष्टि में कि **स्व० सत्येन्द्र प्रसाद** के विधिक उत्तराधिकारियों के बीच बँटवारा मामला सिविल न्यायालय के समक्ष न्याय निर्णयन हेतु लंबित है और खनन पट्टे सहित संपत्तियों में अपने-अपने हिस्से का परस्पर विरोधी दावों जैसा याचियों द्वारा किया गया है, को देखते हुए उप-कमिश्नर ने संयुक्त परिवार संपत्ति में अपने-अपने हिस्से के दावों से संबंधित पक्षों के विवाद के न्यायनिर्णयन की शक्तियाँ स्वयं को प्रदान कर ली है। यह गैर-कानूनी है और यह अवैधता याचियों के इस प्राख्यान पर उपशमनित हो जाती है कि आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले याचियों को कोई नोटिस जारी नहीं की गयी थी और न ही उन्हें अपना पक्ष रखने का अवसर दिया गया था।

15. उपर्युक्त कारणों से उप-कमिश्नर द्वारा दिनांक 28.3.2006 को पारित आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-8) पोषणीय नहीं हो सकता है और इसलिए इसे अभिखंडित किया जाता है।

16. जहाँ तक पुनरीक्षण प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश का प्रश्न है, जिसके द्वारा पुनरीक्षण याचिका को उपशमनित घोषित किया गया है, वह भी बिल्कुल गैर कानूनी है। स्वीकृत तौर पर, प्रत्यर्थी सं० 10 और मृतक सत्येन्द्र प्रसाद की विधवा दोनों द्वारा पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष लंबित पुनरीक्षण याचिका में मूल आवेदक के स्थान पर अपना-अपना नाम प्रतिस्थापित करने हेतु पृथक आवेदन दाखिल किए गए थे। इस तथ्य की दृष्टि में कि प्रतिस्थापना हेतु आवेदन मृतक **सत्येन्द्र प्रसाद** के पुत्र और विधवा दोनों द्वारा दाखिल किए गए थे, पुनरीक्षण प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक था कि वह उनके दावों पर विचार करें और खनिज रियायत नियमावली, 1960 के नियम 25A के प्रावधानों के निबंधनों के अनुसार आदेश पारित करें। खनिज रियायत नियमावली, 1960 के नियम 25A के प्रावधान घोषित करते हैं कि खनन पट्टे के अनुदान अथवा नवीकरण हेतु दिया गया आवेदन उसके वैध प्रतिनिधियों द्वारा दिया गया माना जाएगा।

17. यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी का आक्षेपित आदेश खनिज रियायत नियमावली के नियम 25A के प्रावधानों के अनुकूल नहीं है बल्कि उसका उल्लंघन में है और इस तथ्य के बावजूद कि पुनरीक्षण याचिका अभी भी लंबित है, आक्षेपित आदेश को गैर-कानूनी और अपोषणीय घोषित किया जाना है। तद्नुसार, दिनांक 23.4.2004 (परिशिष्ट-7) का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है।

18. जैसा कि प्रकट है, मुख्य विवाद याचियों और प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 के बीच है जो प्रश्नगत खनन पट्टे सहित अपने पिता की संपत्तियों में उनके हिस्से/हित के परस्पर विरोधी दावों को अंतर्ग्रस्त करता है। दोनों पक्ष संपत्तियों के ऊपर अपने-अपने अधिकारों की घोषणा चाहते हैं और सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित बँटवारा मामले द्वारा विधिक उपचार का सहारा भी लिया गया है। अत: याचीगणों और प्रत्यर्थी सं० 9 और 10 को सिविल न्यायालय द्वारा अपने विवाद का न्याय निर्णयण किए जाने की प्रतीक्षा करनी चाहिए और सिविल न्यायालय के अंतिम निर्णय की प्रतीक्षा करते हुए इसी कारण, राज्य प्राधिकारियों को भी खनन पट्टे के नवीकरण हेतु की गयी प्रार्थना पर विचार किया जाना स्थगित कर देना चाहिए।

19. इन संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

20. इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को प्रदान की जाए।

माननीय आर० आर० प्रसाद, न्यायमूर्ति

सूर्य नारायण हंसदा उर्फ सूर्य हंसदा उर्फ मुखिया

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 241 of 2009. Decided on 2nd, December, 2009.

बिहार (झारखंड) अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002—धारा 12(1)—जिलाधिकारी द्वारा इस तथ्य पर विचार किए बिना निरोध का आदेश पारित किया गया कि बन्दी पहले से ही अभिरक्षा में था—राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 21(1) के अन्तर्गत निरोध आदेश संपुष्ट किया—अभिनिर्धारित, दोनों आक्षेपित आदेश यह इंगित नहीं करते हैं कि इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए निरोध प्राधिकारी के समक्ष सामग्री मौजूद थी कि बन्दी के जमानत पर छोड़े

जाने की संभावना है एवं उस दशा में वह सभी अधिसम्भाव्यताओं में लोक व्यवस्था को प्रतिकूल प्रभावित करने वाली गतिविधियों में संलिप्त होगा—निरोध आदेश अभिखंडित।
(पैरा 3 से 5)

निर्णयज विधि.–2007(12) SCALE 345.

अधिवक्तागण.–Mr. S. P. Roy, For the Petitioner; Mr. Jalisur Rahman, For the State.

आदेश

इस रिट आवेदन के माध्यम से दिनांक 26.3.2002 के ज्ञापन सं० 106 (उपाबंध 1) में यथा अंतर्विष्ट बिहार (झारखण्ड) अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002 (इसमें इसके पश्चात "अधिनियम" के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 12(1) के अन्तर्गत प्रत्यर्थी सं० 6 जिला मजिस्ट्रेट, गोड्डा द्वारा पारित निरोध के आदेश को अभिखंडित करने की ईप्सा की गयी है। साथ ही साथ, दिनांक 21.5.2009 के ज्ञापन सं० 2042 (उपाबंध 5) में यथाअंतर्विष्ट आदेश को भी अभिखंडित करना ईप्सित किया गया है जिसके द्वारा राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 21(1) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए निरोध के आदेश को 25.3.2010 तक प्रभावी रहने की सम्पुष्टि की है।

2. उपरोक्त आदेशों को विभिन्न आधारों पर अभिखंडित करने की ईप्सा की गयी है। लेकिन, सुनवाई के दौरान निवेदन किया गया एकमात्र बिन्दु यह है कि जब निरोध का आदेश पारित किया गया था, तो याची हिरासत में था एवं, इसलिए, निरोध का आदेश पारित करने की कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन, जब ऐसा आदेश पारित किया गया था तो निरोध प्राधिकारी से इस बात की संतुष्टि को अभिलिखित करने की अपेक्षा की गयी थी कि बन्दी के निर्मुक्ति के तुरन्त उपरांत आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त हो जाने की संभावना है एवं यह संभावना याची को अभिरक्षा से निर्मुक्त किए जाने में है परन्तु निरोध प्राधिकारी ने उपरोक्त बिन्दुओं पर संतुष्टि अभिलिखित किए बिना निरोध का आदेश पारित किया जो कि पूर्णतया अवैधानिक है।

3. मैं याची की ओर से पेश निवेदनों में बल पाता हूँ। उपाबंध 1 में यथा अंतर्विष्ट आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि निरोध प्राधिकारी ने निरोध का आदेश पारित करते समय प्रारंभिक रूप से पूर्व के आचरण पर विचार किया है अर्थात् यह कहें कि लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव कारित करने वाले आपराधिक कार्यवाहियों में याची की संलिप्तता पर परन्तु यह अपने आप में निरोध का आदेश पारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है जब कैदी अभिरक्षा में है, बल्कि निरोध प्राधिकारी को **सैयद अबुल आला बनाम भारत संघ एवं अन्य [2007 (12) Scale 345]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में निम्नलिखित बिन्दुओं पर अपनी संतुष्टि अभिलिखित करने की जरूरत थी:—

> *(iv) यदि आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी इस तथ्य से अवगत हैं कि वह वास्तव में अभिरक्षा में है;*
>
> *(v) यदि उनके समक्ष रखे गए विश्वसनीय सामग्रियों के आधार पर उन्हें ऐसा विश्वास करने का कारण हो;*
>
> *(a) यह कि उसे जमानत पर छोड़े जाने की वास्तविक संभावना है एवं*
>
> *(b) यह कि निर्मुक्त किए जाने पर, उसके प्रतिकूल प्रभाव कारित करने वाली गतिविधियों में संलिप्त हो जाने की पूरी संभावना है; एवं*
>
> *(vi) उसे ऐसा करने से रोकने के लिए उसे निरोधित करना आवश्यक महसूस किया गया है।*

4. वर्तमान मामले में जैसा कि मैंने पहले ही नोट किया है, निरोध प्राधिकारी ने उपर इंगित शब्दों में कोई संतुष्टि अभिलिखित नहीं की है यद्यपि उपाबंध 1 एवं उपाबंध 5 में यथा अंतर्विष्ट आदेश यह इंगित करते हैं कि निरोध प्राधिकारी इस तथ्य से पूर्णत: अवगत थे कि बन्दी अभिरक्षा में था। फिर भी, उन्होंने ऐसी सन्तुष्टि अभिलिखित नहीं की है, जो इंगित करता है कि निरोध प्राधिकारी उन शर्तों के

प्रति पूर्णतः विस्मरणशील थे जिसे किसी ऐसे मामले में निरोध का आदेश पारित करते समय ध्यान में लेना चाहिए था जहाँ बन्दी अभिरक्षा में हो। यहाँ पर इस बात की पुनरावृत्ति की जा सकती है कि न तो उपाबंध 1 में यथा अंतर्विष्ट निरोध आदेश और न ही उपाबंध 5 में यथा अंतर्विष्ट आदेश यह इंगित करता है कि इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए निरोध प्राधिकारी के समक्ष सामग्री मौजूद थी कि बन्दी के जमानत पर निर्मुक्त किए जाने की सम्भावना है एवं यह कि निर्मुक्त किए जाने पर, वह संभवतः लोक व्यवस्था को प्रतिकूल प्रभाव कारित करने वाली गतिविधि में शामिल हो जाएगा।

5. मामले की उस दृष्टि में, उपाबंध 1 एवं उपाबंध 5 में यथा अंतर्विष्ट आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है। तद्नुसार, इसे अपास्त किया जाता है। परिणामतः, याची को तत्क्षण निर्मुक्त करने का आदेश दिया जाता है जब तक कि वह किसी अन्य मामले में निरोधित रखा जाना अपेक्षित नहीं हो।

6. परिणामस्वरूप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

7. इस आदेश की एक प्रति याची के व्यय पर फैक्स के माध्यम से सम्बन्धित न्यायालय को दी जाए।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

रास बिहारी पाल

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cr. Appeal No. 580 of 2002. Decided on 11th November, 2009.

सत्र केस सं॰ 178/2000/सत्र केस सं॰ 258/2001 में श्री सुरेन्द्र नाथ पांडके प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जामतारा द्वारा पारित दिनांक 7.9.2002 के निर्णय और दिनांक 9.9.2002 को दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304B–सह-पठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 113B–इसके अंतर्गत दोषसिद्धि और सजा–शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर के विचार में पीड़ित बालिका की मृत्यु अत्यधिक जलने से हुए उपहति के कारण हुई–अभिनिर्धारित, मामले से यह स्पष्ट है कि पीड़िता अपने विवाह के तीन वर्षों के भीतर अपने ससुराल में मृत पायी गयी और यह आश्चर्यजनक है जब उसका मृत शरीर उसके ससुराल के फर्श पर पड़ा हुआ था, उसके पति-अपीलार्थी सहित उसके ससुराल के सभी सदस्य घर से भाग गए थे–यह कानून का सर्वविदित सिद्धान्त है कि यदि कोई महिला अपने विवाह के सात वर्षों के भीतर अपने ससुराल में मर जाती है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113B के अधीन, इसे दहेज मृत्यु उपधारित किया जाएगा विशेषतः तब जब दहेज की मांग और मृत्यु के तुरन्त पहले यातना का साक्ष्य है–दोषसिद्धि और सजा को मान्य ठहराया गया। (पैरा 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.–M/s Kaushal Agarwal, Ananda Sen, For the Appellant; Mr. T. N. Verma, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र केस सं॰ 178/2000/सत्र केस सं॰ 258/2001 में श्री सुरेन्द्र नाथ पांडके, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जामतारा द्वारा दिनांक 7.9.2002 के निर्णय और दिनांक 9.9.2002 के दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थी रास बिहारी पाल, मृतका रीता पाल का पति, को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन दोषी पाया है और उसे 8 वर्षों के सश्रम कारावास की सजा दी है जबकि उक्त आदेश के द्वारा उन्होंने अन्य अभियुक्तों अर्थात् त्रिवेणी पाल, पारूलि दासी, दासू पाल और साधन पाल को दोषमुक्त कर दिया है।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं है कि वह पीड़ित बालिका को यातना दिया करता था और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है और उसे अन्य अभियुक्तों, जिनका मामला उसकी तरह का ही है, के साथ संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए था और आरोपों से मुक्त कर देना चाहिए था।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है कि पीड़ित बालिका को दहेज की मांग पूरी नहीं करने के लिए यातना दी जाती थी और पीड़िता को जलाने के बाद पति और उसके परिवारिक सदस्य घर से भाग गए थे और विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी जो मुख्य अभियुक्त है क्योंकि उसने दहेज मांगा था, को दोषसिद्धि करके सही किया है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद मैं पाता हूँ कि अभियोजन अ० सा० 6 अनिल कुमार चन्द्रा पीड़ित युवती का पिता, द्वारा दिए गए फर्दबयान के आधार पर प्रारंभ किया गया था जिसमें कथन किया गया है कि उसकी पुत्री, रीता पाल, बीस वर्षीय, का विवाह अपीलार्थी रास बिहारी पाल, त्रिवेणी पाल का पुत्र, के साथ तीन वर्ष पहले हुआ था और उसने विवाह में स्वर्णाभूषण और बर्तनों के साथ 45,000/- रुपया दिया था। विवाह के पश्चात् उसकी पुत्री ससुराल में रह रही थी। शुरु में, उन्होंने उसे अच्छे से रखा लेकिन कुछ समय बाद लड़के ने पैसा और टी० वी० मांगना शुरू कर दिया। उसने जवाब दिया था कि उसने अपनी हैसियत के मुताबिक दहेज दिया है लेकिन इसके बावजूद वे यातना देते रहे और उससे ज्यादा पैसा और टी० वी० देने के लिए मांग करते रहे। सूचक उसके ससुराल गया और उनसे अपनी पुत्री को यातना नहीं देने की प्रार्थना की। आगे यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 10.9.99 को लगभग 12 बजे दोपहर में निमाईपाल और उत्तम उसके घर आये और उसे सूचना दी कि उसकी पुत्री गंभीर रूप से बीमार है। तब उसने एक टैक्सी किराए पर ली और अन्य लोगों के साथ अपनी पुत्र के ससुराल गया और उसके शरीर को अकेले घर में जली हुई स्थिति में पाया और सारे अंत:वासी भाग चुके थे। तब उसने पूछताछ की और जाना कि अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्य दहेज नहीं दिए जाने के लिए उसकी पुत्री को जलाने के बाद भाग गए है।

5. फर्दबयान के आधार पर पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी० के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के पश्चात् पुलिस ने मामले में आरोप-पत्र दाखिल किया। चूँकि मामला सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यत: विचारण योग्य था, विद्वान मजिस्ट्रेट ने मामले का संज्ञान लेने के बाद मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया। अंत में, मामले को सुना गया था, और जैसा ऊपर बताया गया है, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा निपटाया गया था।

6. यह प्रकट है कि विचारण के दौरान अभियोजन ने 9 गवाहों का परीक्षण किया है। अ० सा० 1 रामपद भंडारी, अ० सा० 2 शब्बीर शेख, अ० सा० 3 ऋषि कुमार, अ० सा० 4 स्वाधीन चंद्र पाल, अ० सा० 5 युधिष्ठिर कुमार, अ० सा० 6 अनिल कुमार चन्द्रा, अ० सा० 7 सूर्य नारायण पाल, अ० सा० 8 मदन चन्द्र पाल और अ० सा० 9 डॉ० रंजन सिन्हा जिसने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रमाणित किया था।

7. यहाँ यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि अ० सा० 1 रामपद भंडारी, अ० सा० 7 सूर्य नारायण पाल और अ० सा० 8 मदन चन्द्र पाल पक्षद्रोही हो गए है और अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया है। अ० सा० 2 शब्बीर शेख सिर्फ एक ड्राइवर है जिसने कथन किया है कि घटना की तिथि पर सूचक द्वारा उसकी टैक्सी किराए पर ली गयी थी और वह भी उनके साथ मृतक के ससुराल गया था और उसका मृत शरीर देखा था।

8. सूचक (अ० सा० 6) के साथ-साथ अ० सा० 3, 4, और 5 के साक्ष्य द्वारा अभियोजन के मामले का समर्थन किया गया है।

सूचक (अ० सा० 6) ने न्यायालय में कथन किया है कि उसकी पुत्री के विवाह के लगभग अढ़ाई साल बाद उसने उसे बताया कि उसका पति और ससुराल वाले दहेज के तौर पर पैसा और टी० वी० मांग रहे है और उसे इसके लिए यातना दी जा रही है। इसके बाद वह उसके ससुराल गया और उनसे कहा कि उसने घर बेच कर विवाह में दहेज दिया था और वह उनकी मांग पूरी करने के लिए कुछ नहीं कर सकता है और उनसे अपनी पुत्री को यातना न देने को कहा था। उसने आगे कथन किया है कि दिनांक 10.9.99 को निमाई और उत्तम ने उसे सूचित किया कि उसकी पुत्री गंभीर रूप से बीमार है। तब वह तुरत वहाँ गया और देखा कि उसका मृत शरीर जमीन पर पड़ा हुआ था और घर में कोई उपस्थित नहीं था और उसने मामला दर्ज किया। पैरा 6 में उसने कथन किया है कि लड़की रीता पाल ने अपनी मृत्यु के सिर्फ डेढ़ महीना पूर्व बताया था कि उसे दहेज के लिए यातना दी जा रही है। पैरा 8 में उसने यह भी कहा है कि उसके दामाद रास बिहारी पाल ने उसे बताया था कि वह धन चाहता है।

अन्य साक्षी अर्थात् अ० सा० 3 ऋषि कुमार ने यह भी कहा है कि रीता पाल विवाह के उपरान्त अपने ससुराल चली गयी और छह महीनों के उपरान्त उसके ससुरालवालों एवं पति ने T.V. एवं धन मांगना एवं उसे यातना देना प्रारम्भ कर दिया। जब उसने यह सूचना पायी कि रीता बीमार है। तब वह भी उसके ससुराल गया था जहाँ उसने रीता पाल का जला हुआ शव पाया था। अपने प्रति परीक्षा के पैरा 6 में उसने कहा है कि उसकी मृत्यु के दो महीने पहले वह मृतका से मिला था। पैरा 13 में उसने दारोगा के सामने कथन किया है कि रीता पाल को दहेज के लिए उसके ससुराल वालों द्वारा यातना दी जाती थी।

अ० सा० 5, युधिष्ठिर कुमार ने भी अभियोजन के मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि वह यह सूचना कि वह गंभीर रूप से बीमार है मिलने के बाद रीता पाल के घर गया और पाया कि वह जली हुई स्थिति में अपने ससुराल में अकेले मृत पड़ी हुई है और कोई भी मौजूद नहीं था।

अ० सा० 9 डॉ० रंजन सिन्हा, जिन्होंने मृतका का परीक्षण किया था और प्रदर्श-1 के तौर पर शव परीक्षण रिपोर्ट प्रमाणित किया था, ने कथन किया है कि मृतक का शरीर 90% जला हुआ था और त्वचा छिली हुई थी और छाले पड़े हुए थे। सिर की खाल पर बाल अंशत: जले और झुलसे हुए थे। किरासन तेल का गंध मौजूद था।

डॉक्टर के विचार में वह अत्यधिक जलने से हुई उपहतियों के कारण शव परीक्षण के 58 घंटे के भीतर मर गयी थी।

9. साक्ष्यों से मैं पाता हूँ कि यह एक स्पष्ट मामला है जहाँ पीड़िता रीता पाल अपने विवाह के तीन वर्षों के भीतर अपने ससुराल में मृत पायी गयी और यह आश्चर्यजनक है कि उसका मृत शरीर उसके ससुराल के फर्श पर पड़ा हुआ था और पति-अपीलार्थी सहित सारे ससुराल वाले घर से भाग चुके थे। यह कानून का सर्वविदित सिद्धांत है कि यदि एक स्त्री विवाह के बाद अपने ससुराल में अपने विवाह के सात वर्षों के भीतर मर जाती है, तब साक्ष्य अधिनियम की धारा 113B के अधीन यह उपधारित किया जाएगा कि चूँकि उसकी मृत्यु के ठीक पहले दहेज की मांग और यातना का साक्ष्य है इसलिए उसका पति मुख्य अभियुक्त है, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी-पति को दोषसिद्ध करना सही है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वह दहेज मांग रहा था और पीड़िता युवती को निरन्तर यातना दी जा रही थी।

10. मैं विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दोषसिद्धि और सजा के निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाता हूँ। मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसका, तद्नुसार खारिज किया जाता है।

11. अपीलार्थी जमानत पर है, उसका जमानत पत्र रद्द किया जाता है। विद्वान विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह सजा पूरी करने के लिए गिरफ्तारी का वारंट जारी करें।

माननीय डी० जी० आर० पटनायक, न्यायमूर्ति

बैजनाथ महतो

बनाम

सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड अपने अध्यक्ष-सह-प्रबन्ध निदेशक, राँची के माध्यम से एवं अन्य।

W.P.(S) No. 412 of 2007. Decided on 11th November, 2009.

सेवा विधि–सेवा से बर्खास्तगी–न तो अपचारी कर्मचारी को कारण बताओ नोटिस तामील किया गया जो उसे यह स्पष्टीकरण देने हेतु सक्षम करता कि क्यों सजा का प्रस्तावित आदेश पारित नहीं किया जाए और न ही जाँच रिपोर्ट की आपूर्त्ति की गयी–अभिनिर्धारित, बर्खास्तगी का आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के उल्लंघन में है। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.–M/s Kalyan Roy, Nand Kishore Pd. Sinha, For the Petitioner; Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट याचिका में याची की मुख्य शिकायत यह है कि उसे अपने मामले को प्रस्तुत करने हेतु युक्तियुक्त अवसर दिए बिना और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को अनुषक्त किए बिना सेवा से उसकी बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया है।

3. श्री कल्याण रॉय, याची के विद्वान अधिवक्ता तर्क करते है कि गवाहों के उसी संवर्ग पर आधारित आरोपों के उसी समूह पर दो पृथक कार्यवाहियाँ, एक दांडिक कार्यवाही और दूसरी विभागीय कार्यवाही, याची के विरुद्ध प्रारंभ की गयी। दांडिक कार्यवाही अभी भी लंबित है जबकि विभागीय कार्यवाही जारी रही और जाँच अधिकारी द्वारा पूरी की गयी और उसमें यह निष्कर्ष दर्ज किया गया कि याची के विरुद्ध आरोप सिद्ध होता है। जाँच रिपोर्ट के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी याची के विरुद्ध सजा का आदेश दर्ज करने हेतु अग्रसर हुए लेकिन ऐसा करने से पहले अनुशासनिक प्राधिकारी ने न तो कारण बताओ नोटिस जारी किया और न ही जाँच रिपोर्ट की आपूर्त्ति की ताकि याची सेवा से बर्खास्तगी की प्रस्तावित सजा के विरुद्ध अपना प्रभावी कारण बताओ का प्रत्युत्तर प्रस्तुत करने में सक्षम हो सके। इसके अतिरिक्त, उस अपील, जिसे याची ने अपनी बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दाखिल किया था, को तत्परता से निपटाया नहीं गया। बल्कि इसे अपील दाखिल करने की तिथि से सोलह से अधिक वर्षों के बाद निपटाया गया था।

विद्वान अधिवक्ता सूचित करते है कि एक पूर्व अवसर पर याची ने अपने बर्खास्तगी के आदेश को इस आधार पर चुनौती देते हुए कि उसके द्वारा दाखिल अपील अभी भी लंबित है, एक रिट याचिका डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 5958 वर्ष 2005 दाखिल करके इस न्यायालय का शरण लिया था। रिट याचिका यह संप्रेक्षण करते हुए कि 15 वर्ष बाद दाखिल रिट याचिका पुरानी हो चुकी है निपटा दी गयी थी।

फिर भी, चूँकि अपील बाद में निपटा दी गयी थी उस तिथि पर जब उसकी अपील अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा खारिज कर दी गयी थी याची को प्रोद्भूत वाद हेतुक के कारण याची ने वर्तमान रिट

याचिका दाखिल किया है। विद्वान अधिवक्ता आगे कहते है कि दांडिक कार्यवाही में याची ने आरोपों से अपनी दोषमुक्ति प्राप्त कर लिया था और चूँकि विभागीय कार्यवाही में आरोप उन्हीं और समरुप तथ्यों पर विरचित किए गए थे, अनुशासनिक प्राधिकारी को इस तथ्य के संदर्भ में कि याची को दांडिक न्यायालय द्वारा आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया था, अनुशासनिक प्राधिकारी को इस तथ्य के संदर्भ में कि याची को दांडिक न्यायालय द्वारा आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया है, पुन: विवाद्यक पर पुनर्विचार करना होगा।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यह प्रतिपादना कि याची को द्वितीय कारण बताओ नोटिस के साथ जाँच रिपोर्ट की प्रति दी जानी होगी, वर्ष 1990 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आधार पर स्थापित विधि बन चुकी है। वर्तमान मामले में बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश वर्ष 1990 के पूर्व की अवधि से संबंधित है और इस कारण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित मार्गदर्शक सिद्धान्तों को भूतलक्षी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है।

5. विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क विवेक की कसौटी पर खरा नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने सिर्फ नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों और विस्तार को स्पष्ट किया है जिनका अनुपालन विशेषत: सेवा विधि शास्त्र के संदर्भ में किए जाने की आवश्यकता है और किसी कर्मचारी की सेवा समाप्ति का अंतिम कदम उठाने से पहले नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों और साम्या के प्रति पूर्ण अनुषक्ति सुनिश्चित करने की आवश्यकता को दुहराया है। विद्वान अधिवक्ता पुन: निवेदन करते है कि याची का दावा कि दांडिक कार्यवाही में दोषमुक्ति के लाभ को स्वयंमेव ही विभागीय कार्यवाही में अपचारी कर्मचारी को दिया जाना चाहिए, को अंतिम नियम नहीं माना जा सकता है। ऐसा नियम, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, तभी लागू होगा जब दांडिक कार्यवाही में कर्मचारी सम्मानजनक दोषमुक्ति प्राप्त कर चुका हो और फिर दांडिक और विभागीय कार्यवाहियों में लगाए गए आरोप समरूप हो और साक्ष्यों एवं तथ्यों के समान संवर्ग पर आधारित हो। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार याची ऐसी स्थितियों को अभिलेख पर ला चुका प्रतीत नहीं होता है।

6. चाहे जो भी हो, यह स्वीकृत तथ्य प्रतीत होता है कि उसकी बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले याची को न तो कोई कारण बताओं नोटिस दिया गया था जो उसे यह स्पष्ट करने का कि क्यों उसके विरुद्ध सजा का प्रस्तावित आदेश नहीं पारित किया जाए, अवसर प्रदान करे और न ही उसे जाँच रिपोर्ट की प्रति दी गयी थी। ये परिस्थितियाँ बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश के औचित्य पर प्रश्न खड़ा करने के लिए पर्याप्त है क्योंकि यह 'दूसरे पक्षों को भी सुना जाए' के आधार पर टिके नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन है।

7. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में, मैं इस याचिका में गुणावगुण पाता हूँ। तद्नुसार इसे अनुज्ञात किया जाता है। परिशिष्ट–7 और 15 में अंतर्विष्ट आक्षेपित आदेश को अभिखंडित किया जाता है। याची को प्रस्तावित सजा के विरुद्ध अपना आधार/स्पष्टीकरण यदि कोई हो, देने का युक्तियुक्त अवसर देने के बाद जाँच रिपोर्ट के आधार पर नया आदेश पारित करने के लिए मामला अनुशासनिक प्राधिकारी के पास वापस भेजा जाता है। इस आदेश की प्रति मिलने की तिथि से तीन महीने के भीतर इस कार्रवाई को प्रारम्भ और पूरा कर दिया जाना चाहिए।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को दी जाय।

माननीय आर० आर० प्रसाद, न्यायमूर्ति

महेश साव

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

W.P.(Cr.) No.99 of 2009. Decided on 18th November, 2009.

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धारा 3—ट्रक की जब्ती–अभिनिर्धारित, जब्ती की तिथि अर्थात् 17.11.2006 पर चावल के क्रय, विक्रय, स्टॉक, आदि को विनियमित करता अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी कोई आदेश प्रभाव में नहीं था–अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किसी आदेश का कोई उल्लंघन नहीं–वाहन की जब्ती गैर-कानूनी–जब्त वाहन निर्मुक्त करने का आदेश दिया गया। (पैरा 7 से 9)

निर्णयज विधि.–2007(3) Est. Cri. Cases 107 (SC).

अधिवक्तागण.–Mr. Nilesh Kumar, For the Petitioner; J.C. to G.P.III, For the Respondents.

आदेश

याची एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस याची ने पहले ही पंजीकरण सं० जे० एच०–02 एफ० 1906 धारित किए ट्रक, जिसे सिमरिया केस सं० 106 वर्ष 2006 के संबंध में जब्त किया गया था, की निर्मुक्ति हेतु दांडिक विविध याचिका सं० 710 वर्ष 2007 के जरिए न्यायालय की शरण लिया था क्योंकि ट्रक की निर्मुक्ति के लिए की गयी प्रार्थना को विद्वान मजिस्ट्रेट, यहाँ तक कि पुनरीक्षण न्यायालय ने भी, अस्वीकार कर दिया था।

3. जबकि, उक्त मामला इस न्यायालय के समक्ष लंबित था, अधिहरण प्राधिकारी ने उक्त ट्रक को अधिहृत करने के लिए एक अधिहरण कार्यवाही प्रारंभ किया था और जब इस तथ्य को न्यायालय के ध्यान में लाया गया, उक्त दांडिक विविध याचिका सं० 710 वर्ष 2007 को इस निर्देश के साथ निपटा दिया गया था कि अधिहरण प्राधिकारी कार्यवाही की पोषणीयता से संबंधित मामले पर **कैलाश प्रसाद यादव एवं एक अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य** मामले, **2007 (3) इस्टर्न क्रिमिनल केसेज 107 (एस० सी०)** में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में निर्णय करें।

4. उस आदेश के अनुसरण में, याची के अधिहरण प्राधिकारी के समक्ष याचिका दाखिल किया और अभिवाक् किया कि ट्रक की जब्ती गैर कानूनी है क्योंकि आवश्यक वस्तु अधिनियम, की धारा 3 के अधीन जारी किसी आदेश का कोई उल्लंघन नहीं किया गया था और अपने निवेदन के समर्थन में **कैलाश प्रसाद यादव मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी दाखिल किया था फिर भी, जब कोई आदेश पारित नहीं किया गया तो याची ने ट्रक की निर्मुक्ति के लिए वर्तमान याचिका दाखिल किया। जब यह मामला इस न्यायालय में लंबित था, अधिहरण प्राधिकारी–विरोधी पक्षकार सं० 2 ने इन कारणों के चलते कि याची उसके समक्ष उक्त निर्णय की प्रति प्रस्तुत करने में विफल रहा है, याची की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी और इस तरह ट्रक की निर्मुक्ति के लिए भी उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी गयी और इसी आदेश को अंतवर्ती आवेदन दाखिल करके इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि जब प्रश्नगत ट्रक चावल ढो रहा था, इसे पुलिस द्वारा बीच में रोक लिया गया जिसने न सिर्फ चावल ही जब्त कर लिया बल्कि ट्रक भी जब्त कर लिया और भारतीय दंड संहिता की अन्य धाराओं के साथ आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन मामला दर्ज किया यद्यपि उस दिन तक चावल, आदि के क्रय, विक्रय, स्टॉक से संबंधित E.C. अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी कोई आदेश प्रभावी नहीं था। इस प्रकार जब्ती

स्वयं गैर कानूनी था, याची द्वारा वाहन की निर्मुक्ति के लिए प्रार्थना की गयी पर इसे न्यायालय यहाँ तक अधिहरण प्राधिकारी, द्वारा भी, अस्वीकार कर दिया गया यद्यपि अधिहरण प्राधिकारी को जब्ती की कार्यवाही प्रारंभ करने की अधिकारिता नहीं थी क्योंकि E.C. अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किसी आदेश का उल्लंघन नहीं किया गया था और इस प्रकार वाहन की निर्मुक्ति को अस्वीकार करता अधिहरण प्राधिकारी द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश पूरी तरह गैर कानूनी है।

6. याची की ओर से प्रस्तुत निवेदन E.C. अधिनियम की धारा 6A में अंतर्विष्ट प्रावधान की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, जो निम्नलिखित हैं:

*[6A. **खाद्यान्नों, खाद्य तिलहनों और खाद्य तेलों का अधिहरण**.-(1) जहां कोई आवश्यक वस्तु उसके सम्बन्ध में धारा 3 के अधीन किए गए आदेश के अनुसरण में अभिगृहीत की जाती है वहां ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट, अयुक्तियुक्त विलंब के बिना, उस जिले या प्रेसिडेंसी नगर के जिसमें ऐसी आवश्यक वस्तु का अभिग्रहण किया जाता है कलक्टर को की जाएगी और चाहे ऐसे आदेश के उल्लंघन के लिए अभियोजन संस्थित किया जाता है या नहीं, यदि कलक्टर ऐसा करना समीचीन समझता है तो वह इस प्रकार अभिगृहीत आवश्यक वस्तु को अपने समक्ष निरीक्षण के लिए पेश किए जाने का निर्देश दे सकेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि तो वह□*

(a) ऐसे अभिगृहीत की गई आवश्यक वस्तु के;

(b) जिस पैकेज, आवेष्टक या पात्र में ऐसी आवश्यक वस्तु पाई जाए उसके; और

(c) ऐसी आवश्यक वस्तु को ले जाने में प्रयुक्त किसी पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य प्रवहण के, अधिहरण का आदेश कर सकेगाः

परन्तु इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अधीन की जा सकने वाली किसी कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कोई खाद्यान्न, खाद्य तिलहन जो उनके सम्बन्ध में धारा 3 के अधीन किए गए आदेश के अनुसरण में किसी उत्पादक से अभिगृहीत किए गए हों, यदि अभिगृहीत खाद्यान्न□या खाद्य तिलहन उसके द्वारा उत्पादित किए गए हों इस धारा के अधीन अधिहृत नहीं किए जाएंगेः

परन्तु यह और कि भाड़े पर माल या यात्रियों को ले जाने के लिए प्रयुक्त किसी पशु, गाड़ी यान या अन्य प्रवहण की दशा में ऐसे पशु, गाड़ी, यान या अन्य प्रवहण के स्वामी को, उसका अधिहरण किए जाने के बदले में ऐसा जुर्माना जो ऐसे पशु, गाड़ी, यान या अन्य प्रवहण द्वारा ले जाने जाने वाली आवश्यक वस्तु के अभिग्रहण की तारीख को उसकी बाजार कीमत से अधिक न हो, संदाय करने का विकल्प दिया जाएगा।

(2) जहां उप-धारा (1) के अधीन किसी आवश्यक वस्तु के अभिग्रहण की रिपोर्ट प्राप्त करने पर या उसके निरीक्षण पर कलक्टर की यह राय है कि आवश्यक वस्तु शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है या लोकहित में ऐसा करना अन्यथा समीचीन है वहां वह□

(i) उसका विक्रय उस नियंत्रित कीमत पर, यदि कोई हो, किए जाने का आदेश दे सकेगा जो ऐसी आवश्यक वस्तु के लिए इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन नियत की गई हो; या

(ii) जहां कोई ऐसी कीमत नियत नहीं की गई है वहां लोक नीलाम द्वारा उसका विक्रय किए जाने का आदेश दे सकेगाः

(3) जहां किसी आवश्यक वस्तु का विक्रय पूर्वोक्त रीति से किया जाता है वहां उसके विक्रय आगम, किसी ऐसे विक्रय या नीलाम के व्यय या उससे संबंधित अन्य आनुषंगिक व्यय की कटौती करने के पश्चात्□

(a) जहां अधिहरण का कोई आदेश कलक्टर द्वारा अन्तिम रूप से पारित नहीं किया जाता है,

(b) जहां धारा 6C की उप-धारा (1) के अधीन अपील में पारित किसी आदेश में ऐसी अपेक्षा की गई है, या

(c) जहां ऐसे आदेश के उल्लंघन के लिए, जिसके संबंध में इस धारा के अधीन अधिहरण का आदेश किया गया है संस्थित किसी अभियोजन में संबंधित व्यक्ति दोषमुक्त कर दिया जाता है, वहाँ उसके स्वामी या उस व्यक्ति को, जिससे उसका अभिग्रहण किया गया है, संदत्त किए जाएंगे।]

7. इसके पठन से यह स्पष्टत: प्रकट होता है कि यदि कलक्टर उन अभिकथनों जिन पर वाहन जब्त किया गया था, से संतुष्ट है कि E.C. अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किसी आदेश के प्रावधान का उल्लंघन किया गया है, तब वह ट्रक या सामान अधिहरण के लिए अधिहरण कार्यवाही प्रारंभ कर सकता है लेकिन जैसा कि याची की ओर से कथन किया गया है और जिसे राज्य की ओर से इन्कार नहीं किया गया है कि जब्ती की तिथि अर्थात् 17.11.2006 चावल के क्रय, विक्रय, स्टॉक आदि विनियमित करते हुये E.C. अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी कोई आदेश प्रभावी नहीं था, ट्रक की जब्ती स्वयं में गैर कानूनी है और यह कि जब E.C. अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किसी आदेश का उल्लंघन नहीं हुआ है, तब कलक्टर को ट्रक जब्त करने के लिए कार्यवाही प्रारंभ करने की अधिकारिता नहीं है। इसी दृष्टिकोण का माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **कैलाश प्रसाद यादव (ऊपर)** के मामले में अभिव्यक्त किया गया है।

8. तद्नुसार प्रत्यर्थी सं॰ 2 उप-कमिश्नर/मजिस्ट्रेट चतरा द्वारा दिनांक 3.7.2009 को पारित आदेश जिसके अंतर्गत ट्रक की निर्मुक्त के लिए याची की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी, पूरी तरह गैर कानूनी होने के कारण अपास्त किया जाता है।

9. अत: प्रत्यर्थी सं॰ 2 उप-कमिश्नर, चतरा को इस आदेश की प्रति प्रस्तुत करने पर पंजीकरण सं॰ जे॰ एच॰-02 एफ॰ 1906 धारित किए ट्रक को तुरंत निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है।

10. तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात की जाती है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

मेसर्स टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड (दोनों में)

बनाम

जनार्दन प्रसाद शर्मा एवं अन्य (26 में)

फगवाली साव एवं अन्य (27 में)

C. Review Nos. 26 and 27 of 2008. Decided on 2nd September, 2009.

भारत का संविधान-अनुच्छेद 226—उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986—धारा 2(1)(d)-विद्युत की आपूर्त्ति एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका अनुज्ञात की और प्रत्यर्थी को विद्युत आपूर्त्ति का निर्देश दिया-उपभोक्ता को उपलब्ध विशेष फोरम को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है-उपभोक्ता द्वारा दाखिल रिट याचिका को प्रारम्भ में ही उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के अधीन स्वीकार नहीं करना चाहिए-लेकिन प्रत्यर्थी एक विकलांग व्यक्ति है-न्याय के हित में और कार्यवाहियों की बहुलता से बचने के लिए, एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश, जिसे खंडपीठ ने मान्य ठहराया है, को अन्य उपभोक्ताओं द्वारा पूर्वोदाहरण नहीं माना जाएगा। (पारा 3 से 6)

अधिवक्तागण.-M/s G.M.Mishra & B.P.Verma, For the petitioner(s); xxx, For the respondents/ opposite parties.

आदेश

आई॰ ए॰ सं॰ 1729 एवं 1730 वर्ष 2009:

पुनरीक्षण हेतु दाखिल ये याचिकाएँ खंडपीठ द्वारा दिनांक 21.2.2008 को पारित उस आदेश के विरुद्ध है जिसके द्वारा दो एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 496 वर्ष 1999 आर॰ और एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 102 वर्ष 2000, जो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2381 वर्ष 1998 आर॰ और सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2408 वर्ष 1999 आर॰ में क्रमशः दिनांक 12.10.1999 और 14.2.2000 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध थी, को खारिज कर दिया गया था। चूँकि पुनरीक्षण याचिकाएँ 160 दिनों की समय सीमा द्वारा वर्जित हैं, जिसके लिए यद्यपि स्पष्टीकरण दिया गया है, हम विलम्ब को माफ करने के लिए इन स्पष्टीकरणों को पर्याप्त कारण नहीं मानते है। लेकिन विलम्ब के बावजूद हम इन पुनरीक्षण याचिकाओं पर गुणागुणों के आधार पर विचार करना सिर्फ इसलिए उचित मानते है ताकि न्यायहानि, यदि ऐसा हुआ है, न होने पाए और इस कारण हमने पुनरीक्षण याचिकाओं के गुणागुणों पर अधिवक्ताओं को हमारे समक्ष अपनी बात रखने की स्वीकृति दी है।

2. पुनरीक्षण याचिकाओं को दाखिल करने में हुए विलम्ब को माफ करने के लिए दिए गए आवेदनों को अनुज्ञात माना जाए।

सिविल पुनरीक्षण सं॰ 26 एवं 27 वर्ष 2008:

3. जहाँ तक पुनरीक्षण याचिकाओं के गुणागुणों का संबंध है, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यद्यपि याची विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित उस आदेश से व्यथित नहीं है जिसके द्वारा याची को प्रत्यर्थी को विद्युत आपूर्ति करने का निर्देश दिया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी एक विकलांग व्यक्ति है जो अपनी दोनों आँखों खो चुका है और उसका अंगभंग भी हुआ है, इन पुनरीक्षण याचिकाओं का उद्देश्य सिर्फ यह सुनिश्चित करना है कि याची कम्पनी को किसी अन्य उपभोक्ताओं को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के आधार पर विद्युत आपूर्त्ति करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है क्योंकि विद्युत आपूर्त्ति हेतु दिया गया कारण अनुतोष की प्रकृति का है जो उपभोक्ता फोरम द्वारा ग्रहित और न्यायनिर्णीत किया जा सकता था। चूँकि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अधीन एक विशेष उपचार उपलब्ध है, प्रत्यर्थियों को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुतोष नहीं दी जानी चाहिए थी जिसे खंडपीठ द्वारा भी मान्य ठहराया गया है।

4. याची ने विद्युत आपूर्त्ति चाहते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश की शरण इस आधार पर लिया था कि वह एक उपभोक्ता है और इसलिए उसे याची कम्पनी द्वारा आपूर्त्ति का लाभ प्रदान किया जाना चाहिए जिसे अनुज्ञात किया गया था।

5. जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है कि उपभोक्ता को उपलब्ध विशेष फोरम को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और प्रारम्भ में ही उपभोक्ता द्वारा दाखिल रिट याचिका को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए, हम याची के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद में सार पाते है लेकिन विवाद को संक्षिप्त करने और कार्यवाहियों की बहुलता से बचने के लिए हमारा दृष्टिकोण और संप्रेक्षण यह है कि न्याय के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश, जिसे खंडपीठ ने भी मान्य ठहराया है और जिसके विरुद्ध ये पुनरीक्षण याचिकाएँ दाखिल की गयी है, को अन्य उपभोक्ताओं द्वारा पूर्वोदाहरण नहीं माना जाएगा क्योंकि प्रत्यर्थी को राहत विशेष परिस्थितियों में दी गयी है क्योंकि वह एक विकलांग और अंधा व्यक्ति है।

6. उपर्युक्त स्थिति की दृष्टि में, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अन्य उपभोक्ताओं द्वारा पूर्वोदाहरण नहीं माना जाएगा। तद्नुसार, दोनों पुनरीक्षण याचिकाएँ निपटायी समझी जाएँ।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

मनोज राय एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P.No.1372 of 2008. Decided on 9th November, 2009.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 202(2) एवं 482—भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन परिवाद–यह अभिवाक्, कि आदेशिका जारी करने के पहले परिवाद में उल्लिखित सारे गवाहों का परिवादी द्वारा परीक्षण नहीं किया गया है, अतः मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण न्यायालय दोनों का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है–अभिनिर्धारित, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित निर्णयाधार स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति परिवाद में उल्लिखित सारे गवाहों का परीक्षण नहीं किए जाने के कारण आदेश को दोषपूर्ण मानते हुए आक्षेप करता है, तो उक्त आदेश स्वतः दूषित नहीं होता है, व्यक्ति द्वारा, जो उस आदेश को चुनौती देता है, धारा 202(2) के प्रावधान के अननुपालन से पड़े प्रतिकूल प्रभाव या संभवतः पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को स्थापित करना जरुरी है–वर्तमान मामले में अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं दर्शाया गया है–आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 14 से 16)

निर्णयज विधि.–1980 BBCJ 265; AIR 1987 Ker. 184(F.B.); AIR 2000 SC 637.

अधिवक्तागण.–Mr.P.P.N.Roy, For the Petitioners; Mr.M.K.Sinha, For the State; Mr. P.C.Sinha, For the Opposite Party No.2.

आदेश

यह याचिका दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 110 वर्ष 2006 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, गिरीडीह द्वारा दिनांक 29.7.2008 को पारित उस आदेश के विरुद्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 23.6.2008 के उस आदेश को मान्य ठहराया है जिसके द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच करने के बाद याचियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला पाया था और अभियुक्तों को विचारण हेतु बुलाया था।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि किसी सुनैना देवी की हत्या के लिए दो मामले दर्ज किए गए थे, एक तुलसी राय, मृतक सुनैना देवी के पति द्वारा याचियों, जो गाँव वाले हैं, के विरुद्ध हत्या का अभिकथन करते हुए, जबकि सुदामा सिंह, मृत सुनैना देवी का पिता, ने दूसरा मामला दर्ज किया जिसमें उसने अभिकथन किया है कि पति अर्थात् तुलसी राय ने सुनैना देवी की हत्या की है। तत्पश्चात्, तुलसी राय द्वारा दर्ज मामले के अन्वेषण के दौरान, पुलिस ने अभिकथन को सत्य नहीं पाया और अंतिम फार्म (Form) दाखिल किया। इसके बाद तुलसी राय द्वारा एक अभ्यापत्ति याचिका दाखिल की गयी जिसे परिवाद माना गया और अवर न्यायालय ने सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर तुलसी राय का परीक्षण करके मामला को जाँच के लिए सुपुर्द कर दिया और सिर्फ चार गवाहों का बयान दर्ज किया जबकि परिवाद याचिका में चार से अधिक गवाह उल्लिखित किए गए थे और परिवादी एवं गवाहों द्वारा दिए गए बयानों के आधार पर संज्ञान लिया गया यद्यपि विद्वान मजिस्ट्रेट से संज्ञान लेने से पहले परिवाद याचिका में उल्लिखित सारे गवाहों का परीक्षण करने की अपेक्षा की जाती है और चूँकि ऐसा नहीं किया गया है, आक्षेपित आदेश गैर-कानूनी है।

3. अपने निवेदन के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **श्री जयराम आर॰ रंजन गुड बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (1980 बी॰ बी॰ सी॰ जे॰ 265)** एवं **मोइदीनकुट्टी हाजी एवं अन्य बनाम कुन्हीकोया एवं अन्य, (ए॰ आई॰ आर॰ 1987 केरल 184 (पूर्ण पीठ)** के मामलों में दिए गये निर्णयों को निर्दिष्ट किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि अपराध प्रकट करते हुए परिवाद, जो सिर्फ सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यत: विचारण योग्य है, में उल्लिखित सारे गवाहों का परीक्षण किया जाना आदेशिका जारी करने की पूर्वशर्त है।

4. उक्त रेशियों के संदर्भ में, याचियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश, जिसके अधीन याचियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के अधीन सम्मन किया गया है, बिल्कुल दोषपूर्ण है क्योंकि आदेशिका जारी करने से पहले परिवाद में उल्लिखित सारे गवाहों का परिवादी द्वारा परीक्षण नहीं किया गया है और इस प्रकार, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश और साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश भी, जिसके अंतर्गत उक्त आदेश को अभिपुष्ट किया गया है, अपास्त करने योग्य है।

5. यहाँ बताना जरुरी है कि केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने केरल उच्च न्यायालय एवं अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों को विचार में लेने के बाद और अधिनियम की धारा 202 के नए प्रावधान के लिए विधि आयोग द्वारा अनुशंसित लक्ष्यों और उद्देश्यों और विधायिका के आशय को भी विचार में लेने के बाद अभिनिर्धारित किया था कि विधायिका का आशय दो विभिन्न प्रकार के जाँचों से संबंधित है, सामान्य परिवाद मामलों में स्वविवेकीय जाँच और धारा 202 के अधीन परिवाद मामलों में आज्ञापक जाँच। स्वविवेकीय जाँच में मजिस्ट्रेट या तो मामले की जाँच स्वयं कर सकता है अथवा स्वयं को निर्देशित कर सकता है अथवा किसी पुलिस अधिकारी अथवा किसी ऐसे व्यक्ति जिसे वह योग्य समझता है के द्वारा किए गए अन्वेषण को निर्देशित कर सकता है। लेकिन परिवाद मामले में जो कि आज्ञापक जाँच में धारा 202 (1) के प्रावधान (a) द्वारा स्वविवेक का प्रयोग नहीं किया जा सकता है और मजिस्ट्रेट को स्वयं ही जाँच संचालित करनी होगी और वह अन्वेषण का आदेश नहीं दे सकता है।

6. आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सामान्य परिवाद मामलों में की जा रही स्वविवेकीय जाँच में धारा 202 (2) मजिस्ट्रेट को विकल्प प्रदान करता है कि वह जैसा उचित समझे, गवाहों का बयान शपथ पर ले भी सकता है और न भी ले सकता है जिसका अर्थ है कि वह गवाहों का संक्षिप्त बयान दर्ज कर सकता है लेकिन किसी परिवाद मामले में आज्ञापक जाँच में उसे यह स्वविवेक नहीं है और उप-धारा (2) का परन्तुक कहता है कि उसे परिवादी को सारे गवाहों को प्रस्तुत करने के लिए कहना होगा और उनका शपथ पर परीक्षण करना होगा। इस प्रकार, धारा 202(2) का परन्तुक सभी साक्षियों को पेश करने एवं शपथ पर, उनलोगों का परीक्षण करने के लिए परिवादी को बुलाना आवश्यक बनाता है। लेकिन केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा अधिकथित उक्त प्रतिपादना कि यह मजिस्ट्रेट के लिए आज्ञापक है कि वह परिवादी को सारे गवाहों को प्रस्तुत करने को कहे और सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य मामले में उनका शपथ पर परीक्षण करे, को **रोजी एवं एक अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (ए॰ आई॰ आर॰ 2000 एस॰ सी॰ 637)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था जहाँ एक समरुप मामला इस तथ्य पर विचारण हेतु आया था कि जब मजिस्ट्रेट के सामने सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य अपराध से संबंधित परिवाद लाया गया था, तब विद्वान मजिस्ट्रेट ने गवाहों का परीक्षण किए बिना यद्यपि परिवाद में दस गवाह उल्लिखित किए गए थे, मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया था। मामला सुपुर्द किए जाने पर सत्र न्यायाधीश ने विचारण प्रारंभ किया। विचारण के लगभग आखिरी चरण पर, अर्थात् बचाव पक्ष द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने के चरण पर, विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष आपत्ति की गयी थी कि परिवाद में उल्लिखित सारे गवाहों का परीक्षण किए बिना सत्र न्यायालय को मामला सुपुर्द कर देने से समस्त

विचारण दूषित हो गया था और अपने निवेदन के समर्थन में, केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय को निर्दिष्ट किया गया था। फिर भी, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने विवाद्यक पर निर्णय किए बिना मामले को संहिता की धारा 395(2) के अधीन उच्च न्यायालय को निर्दिष्ट किया था।

7. उक्त सन्दर्भ से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया है।

8. दोनों मामलों को उच्च न्यायालय द्वारा निस्तारित किया गया था और अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 202 (2) का परन्तुक आज्ञापक है और इस प्रकार, इस चरण पर गवाहों का परीक्षण नहीं किये जाने का परिणाम न्याय की सारभूत विफलता में होगा और इस प्रकार सुपुर्द किए जाने का आदेश दूषित होता है। फलस्वरूप, मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया गया कि वह धारा 202(2) के परन्तुक के मुताबिक सारे गवाहों का परीक्षण करते हुए नयी जाँच संचालित करें। उस आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित रेशियों को दर्शाने से पहले, यहाँ आवश्यक होगा कि उन प्रावधानों को देखा जाए जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 के अधीन अंतर्विष्ट है और जिसकी धारा 200 की आज्ञापकता के अनुसार एक मजिस्ट्रेट से अपेक्षा की जाती है कि वह परिवादी और उपस्थित गवाहों, यदि कोई हो, का शपथ पर परीक्षण करें। उक्त धारा का परन्तुक उन मामलो में एक अपवाद बनाता है जहाँ परिवाद किसी जनसेवक द्वारा अपने अधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु कार्रवाई अथवा तात्पर्यित तौर पर कार्रवाई करने के लिए दाखिल किया गया है अथवा ऐसे मामले में जहाँ न्यायालय द्वारा परिवाद किया गया है, ऐसे मामलों में परिवादी और गवाहों का परीक्षण आवश्यक नहीं है और यदि वह संतुष्ट है कि कार्यवाही का पर्याप्त आधार है वह सीधे-सीधे आदेशिका जारी कर सकता है अथवा परिवाद खारिज कर सकता है अथवा स्वयं जाँच कर सकता है अथवा पुलिस या किसी अन्य व्यक्ति को अन्वेषण करने का निर्देश दे सकता है।

9. मैं आगे यह पाता हूँ कि केवल यदि मजिस्ट्रेट जाँच करने का निर्णय लेता है तब धारा 202 की उप-धारा (2) का परन्तुक संक्रिया में आती है। अगर अपराध सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यत: विचारण योग्य है, मजिस्ट्रेट को स्वयं जाँच करनी होगी और पुलिस को अन्वेषण करने का निर्देश नहीं दिया जाएगा। शपथ पर साक्ष्य दर्ज करके जाँच की जा सकती है यदि वह इसे समुचित समझता है। धारा 202 की उप-धारा (2) मजिस्ट्रेट को गवाह का साक्ष्य शपथ पर दर्ज करने को स्वविवेकी शक्तियाँ देता है। इस स्वविवेकी शक्तियों के लिए परन्तुक एक अपवाद बनाता है। यह प्रावधान करता है कि सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यत: विचारण योग्य अपराध के लिए मजिस्ट्रेट को परिवादी को अपने सारे गवाहों को प्रस्तुत करने के लिए कहना होगा और उनका शपथ पर परीक्षण करना होगा। जाँच के बाद दूसरा चरण या तो बर्खास्तगी का समुचित आदेश पारित करना है अथवा आदेशिका जारी करना है।

10. चूँकि धारा 202 की उप-धारा (2) के परन्तुक के अधीन खंड में 'करेगा' (shall) शब्द प्रयुक्त है, पूरे जोर-शोर से यह तर्क किया गया है कि मजिस्ट्रेट द्वारा आदेशिका जारी करना तब तक न्यायोचित नहीं होगा जब तक परिवादी जाँच के दौरान परिवाद में उल्लिखित अपने सारे गवाहों का परीक्षण नहीं कर लेता है।

11. इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धाराएँ 200 एवं 202 के अधीन उद्धृत विधायी आशय को विचार में लेते हुए निम्नलिखित संप्रेक्षण किया है:–

> *''निःसंदेह शब्द ''shall'' के प्रयोग से यह प्रकट होता है कि परन्तुक में प्रयुक्त भाषा आज्ञापक प्रकृति की है। इसी समय, यह एक प्रक्रियात्मक विधि है और इसे धारा 200 के संदर्भ में पढ़ना होगा जो मजिस्ट्रेट को जाँच किए बिना प्रक्रिया जारी करने हेतु सक्षम बनाता है और धारा 202 के अधीन ये जाँच स्वयं में स्वविवेकी है*

जो गवाहों का शपथ पर परीक्षण किए जाने अथवा न किए जाने का विकल्प प्रदान करती है। इस प्रकार, उक्त उप-धारा के परन्तुक को तद्नुसार पठित किए जाने की अपेक्षा है यद्यपि इसे "shall" शब्द प्रयुक्त कर आज्ञापक बना दिया गया है। साधारणतः वहाँ उसने विहित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए लेकिन उक्त प्रक्रिया का अनुपालन न किया जाना सारे मामलों में आगे की कार्यवाही को दूषित नहीं कर सकता है। ऐसे मामले में जहाँ परिवाद किसी जनसेवक द्वारा दाखिल नहीं किया गया है और जहाँ अपराध सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यतः विचारण योग्य है, मजिस्ट्रेट को धारा 202 की उप-धारा (ii) के परन्तुक का अनुसरण करना चाहिए और परिवादी को अपने सारे गवाहों को प्रस्तुत करने के लिए कहना चाहिए और शपथ पर उनका परीक्षण करना चाहिए। यह धारा 208 के प्रावधान के अनुकूल होगा जो अन्य बातों के साथ अभियुक्त को बयानों और दस्तावेजों की प्रतियाँ आपूर्त्ति करने का प्रावधान करता है। यह सत्र न्यायालय को आरोप निर्मित करने अथवा अभियुक्त को उन्मोचित करने हेतु सुकर बनाएगा। सत्र विचारण योग्य मामले में धारा 226 के अधीन अभियोजन को अभियुक्त के विरुद्ध लाए गए आरोपों का वर्णन करते हुए अपना मामला शुरू करना होगा और कथन करना होगा कि किन साक्ष्यों के आधार पर यह अभियुक्त का दोष प्रमाणित करने की प्रस्थापना करता है। ऐसा निवेदन किए जाने पर सत्र न्यायालय द्वारा मामले के अभिलेख और उसके अंतर्गत प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने की अपेक्षा की जाती है और अभियुक्त एवं अभियोजन के निवेदनों को सुनने के बाद निर्णय करना होगा कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार है या नहीं। ऐसा विचार करने पर, अगर न्यायालय पाता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार नहीं है उसे धारा 227 के अधीन उन्मोचित किया जाना होगा। यदि पर्याप्त आधार है, तब धारा 228 के अधीन न्यायालय द्वारा आरोप विरचित करने की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार, आरोप विरचित करने के लिए ऐसे साक्ष्य का दर्ज करना आवश्यक है। यह अभियुक्त को सुकर बनाता है कि वह अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों और इनके समर्थन में दिए गए साक्ष्य को जाने। लेकिन ऐसे मामले में, जहाँ जाँच करने और बयानों को दर्ज करने के बाद किसी जनसेवक द्वारा परिवाद दाखिल किया गया है, ऐसे साक्ष्य को दर्ज किए जाने का प्रश्न उठ नहीं सकता है। इस प्रकार, मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र विचारण योग्य सारे मामलों में परन्तुक का अनुपालन बाध्यता नहीं है और यह आगे किए जाने वाले विचारण को दूषित नहीं करेगा जबतक कि अभियुक्त पर कारित प्रतिकूल प्रभाव को स्थापित नहीं किया जाता है।"

12. आगे, धाराएँ 460, 461 एवं 465 में अंतर्विष्ट प्रावधान के संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 202 की उप-धारा (2) के परन्तुक के अननुपालन के परिणामस्वरूप कानून साफ तौर पर आदेश का अकृतकरण का प्रावधान नहीं करता है लेकिन यह कहता है कि जबतक कि प्रतिकूल प्रभाव कारित नहीं होता, आदेश को अपास्त नहीं किया जाएगा। इसका अर्थ होगा कि धारा 202 के अधीन जाँच के दौरान, जब मजिस्ट्रेट गवाहों का शपथ पर परीक्षण करता है, जहाँ तक संभव हो परन्तुक का अनुपालन करना होगा लेकिन यह आज्ञापकता आत्यन्तिक नहीं है।

13. इन परिस्थितियों में, केरल उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था। अंततः विधि के निम्नलिखित प्रतिपादनाओं को अभिनिर्धारित किया गया था:–

I. (a) धारा 200 के अधीन मजिस्ट्रेट को परिवादी और उपस्थित गवाहों का परीक्षण किए जाने के बाद परिवाद में अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता है;

(b) जब किसी जनसेवक द्वारा, जो अपने अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन हेतु कार्यरत है अथवा तात्यपर्यित रूप से कार्यरत है, लिखित रूप से शिकायत किया जाता है, मजिस्ट्रेट को परिवादी और गवाहों का परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है;

(c) ऐसे मामलों में न्यायालय प्रक्रिया जारी कर सकता है अथवा परिवाद खारिज कर सकता है।

II. (a) मजिस्ट्रेट उक्त उल्लिखित प्रक्रिया का अनुसरण करने के स्थान पर, यदि वह उचित समझता है, आदेशिका जारी करना मुल्तवी कर सकता है और यह निर्णय करने के उद्देश्य से कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार है या नहीं जाँच कर सकता है। ऐसी जाँच उसके द्वारा अथवा पुलिस अधिकारी द्वारा अथवा उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति द्वारा की जा सकती है।

(b) लेकिन, जहाँ मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि परिवादित अपराध सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यतः विचारण योग्य है, पुलिस अधिकारी को अन्वेषण करने का निर्देश देना अनुमान्य नहीं है और उससे स्वयं जाँच करने की अपेक्षा की जाती है। इस जाँच के दौरान वह गवाहों को शपथ पर परीक्षण करने का निर्णय ले सकता है। इस चरण पर, परन्तुक आज्ञापक निर्देश देता है कि वह परिवादी को अपने सारे गवाहों को प्रस्तुत करने के लिए कहे और शपथ पर उनका परीक्षण करें। प्रकट कारण यह है कि निजी परिवाद में, जिसे विचारण हेतु सत्र न्यायालय को सुपुर्द किए जाने की अपेक्षा की जाती है, यह अभियुक्त के हित की रक्षा करेगा और यह उन गवाहों के बयान को प्रकट करेगा जिनकी सूची को परिवादी द्वारा प्रक्रिया जारी करने के पहले धारा 204(2) के अधीन दाखिल किए जाने की अपेक्षा की जाती है।

(c) तब अनियमितता अथवा अननुपालन सारे मामलों में आगे की कार्यवाही को दूषित नहीं करेगा। किसी व्यक्ति, जो ऐसी अनियमितता की शिकायत करता है, को ऐसी आपत्ति, प्रारंभिक चरण पर उठानी चाहिए और उसे बताना चाहिए कि परन्तुक का अनुसरण नहीं करने पर किस तरह प्रतिकूल प्रभाव कारित होता है अथवा कारित हो सकता है, यदि वह प्रारंभिक चरण पर ऐसी आपत्ति उठाने में विफल रहता है, तब बाद में उसे ऐसी आपत्ति उठाने से रोका जाएगा।''

14. इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित रेशियों बिल्कुल पक्के तौर का है कि यदि कोई व्यक्ति परिवाद में उल्लिखित सारे गवाहों का परीक्षण नहीं किए जाने के कारण आदेश को दोषपूर्ण होने की वजह से आपत्ति करता है, तब उक्त आदेश स्वतः दूषित नहीं होता है बल्कि उस व्यक्ति द्वारा जो आदेश को चुनौती देता है, यह स्थापित करने की आवश्यकता है कि धारा 202 की उप-धारा (2) के परन्तुक में अंतर्विष्ट प्रावधान के अननुपालन के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है अथवा पड़ सकता है।

15. यहाँ वर्तमान मामले में, मुझे ऐसा कुछ भी नहीं दर्शाया गया है कि उपर्युक्त प्रावधान के अननुपालन के कारण अभियुक्त पर किस तरह प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है अथवा पड़ सकता है।

16. इस प्रकार, मैं पुनरीक्षण न्यायालय अथवा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, मैं इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। अतः इसे खारिज किया जाता है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी एवं प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्तिगण

सुकट भुईया उर्फ रामेश्वर भुईया

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cri. App. (DB) No. 435 of 2003. Decided on 14th May, 2009.

सत्र विचारण सं॰ 485 वर्ष 1998 में श्री अवधेश नन्दन, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ 1, पलामू, डालटेनगंज द्वारा क्रमशः दिनांक 4.2.2003 और 7.2.2003 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–सूचक के पति की अभिकथित तौर पर 'काला जादू' करने के लिए निर्मम हत्या–अभियोजन का मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा संपुष्ट–सिर्फ इसलिए कि अ॰ सा॰ 2 को चश्मदीद गवाह के तौर पर प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया था, उसके साक्ष्य को दरकिनार नहीं किया जा सकता–मृतक की पत्नी के साक्ष्य द्वारा अभियोजन के मामले का दृढ़तापूर्वक समर्थन–वर्तमान मामले में किसी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया जाना कोई कमजोरी नहीं है–मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी भेजने में हुआ विलम्ब ऐसी परिस्थिति नहीं है जिसके चलते अभियोजन के मामले को समस्त रूप से ठुकरा दिया जाए–अपील खारिज। (पैरा 9 से 15)

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 154—प्राथमिकी–प्राथमिकी समस्त अभियोजन मामले का विश्वकोष नहीं है– भले ही कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को प्राथमिकी में उल्लेख नहीं किया गया हो, इसे विचारार्थ बहिष्कृत करने का आधार नहीं बनाया जा सकता–सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उक्त तथ्य पर अन्य साक्ष्यों के साथ विचार किया जा सकता है। (पैरा 11)

(ग) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 134—सारे गवाहों का परीक्षण किया जाना आवश्यक नहीं है–साक्ष्य की गुणवत्ता, न कि मात्रा का महत्व है। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–AIR 1976 SC 2304–Relied upon; (2002)1 SCC 487–Dinstinguished.

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Kashyap, Lina Shakti, For the Appellant; Mr. V.S. Jha, For the State.

न्यायालय द्वारा.–एकमात्र अपीलार्थी सुकट भुईया उर्फ रामेश्वर भुईया ने एस॰ टी॰ सं॰ 485 वर्ष 1998 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰–1 पलामू, डालटेनगंज द्वारा क्रमशः दिनांक 4.2.2003 और 7.2.2003 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन उसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गयी थी, को चुनौती देते हुए इस अपील को दाखिल किया गया है।

2. संक्षेप में, अ॰ सा॰ 1 के फर्दबयान के मुताबिक, अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 3.8.1997 की शाम को लगभग 5 बजे वह अपने पति के साथ अपने दरवाजे पर बैठी हुई थी। अपीलार्थी सुकट भुईया उर्फ रामेश्वर भुईया 'राजू पांडे और सुरेश भुईया के साथ टांगी (ऐक्स) लिए हुआ आया। उन्होंने उसके पति को पकड़ लिया और उसे गाली देते और यह अभिकथन करते कि वह 'काला जादू' (ओझाई) करता है, ले गए। आगे यह भी अभिकथन किया गया था कि उनलोगों ने उसके पति पर टांगी के लकड़ी वाले भाग से प्रहार किया और जानेशर एवं भागेशर के घर के पीछे उसे जमीन पर पटक दिया और उसकी गर्दन पर टांगी से प्रहार करके उसके सर को अलग कर दिया। सूचक अभियुक्तों के पीछे गयी थी जब वे उसके पति को ले जा रहे थे और घटना को देखा था। उसके पति को मारने के बाद अभियुक्त भाग गए। उसने शोर मचाया पर उसे सुनने वाला वहाँ कोई नहीं था क्योंकि वह आशेहर बाजार का दिन था और गाँववाले खरीददारी करने गए हुए थे।

3. पूर्वोक्त फर्दबयान के आधार पर, पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन दिनांक 4.8.1997 को पनकी पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 24 वर्ष 1997 दर्ज किया और अन्वेषण शुरु किया। अन्वेषण पूरा करने के पश्चात्, पुलिस ने सह–अभियुक्त राजू पाण्डे और सुरेश भुईया को भगोड़ा दर्शाते हुए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया। अपराध का संज्ञान लिया गया और मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया। क्योंकि मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था।

4. भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप विरचित किया गया और इसे उसे पढ़कर सुनाया गया और उसे समझाया गया जिसके विरुद्ध उसने अपने दोषी नहीं होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया।

5. अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कुल चार गवाहों का परीक्षण किया। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया जिसमें उसने अपने बचाव में मामले से पूरी तरह इन्कार किया।

6. अवर न्यायालय ने विचारण के अंत में अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया और सजा दी जैसा ऊपर कहा गया है।

7. अपीलार्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ कश्यप ने निवेदन किया है कि वर्तमान मामले में सी॰ जे॰ एम॰ के न्यायालय को प्राथमिकी भेजने में हुआ तीन दिन का अस्पष्टीकृत विलम्ब, प्राथमिकी, विशेषत: इसके दर्ज किए जाने की तिथि और समय की शुद्धता पर गंभीर संदेह पैदा करता है। यह दर्शाता है कि इस मामले में अपीलार्थी का नाम बाद में जानबूझकर डाला गया है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि यद्यपि स्वतंत्र गवाह उपस्थित थे लेकिन उनका परीक्षण नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 2 को प्राथमिकी में घटना के चश्मदीद गवाह के तौर पर नामित नहीं किया गया है और इसलिए अ॰ सा॰ 2 के दावे कि उसने घटना को देखा है पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। आगे यह निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 1 का साक्ष्य पूर्णत: विश्वास योग्य और स्वीकार्य नहीं है और इस प्रकार उसका एकमात्र परिसाक्ष्य अपीलार्थी की दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकता है। विद्वान अवर न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपीलार्थी को गलत दोषसिद्ध किया है और सजा दी है। उसे विधि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता है।

8. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर पी॰ पी॰ निवेदन करते हैं कि अ॰ सा॰ 1 और 2, जो घटना का चश्मदीद गवाह है, का साक्ष्य पूर्णत: विश्वसनीय है और किसी भी दुर्बलता सें मुक्त है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक तथ्य को प्राथमिकी में सम्मिलित किया जाए। सिर्फ इसलिए कि अ॰ सा॰ 2 का नाम प्राथमिकी में दर्ज नहीं है, उसके साक्ष्य को विचार क्षेत्र से दरकिनार और/अथवा बहिष्कृत नहीं किया जा सकता है। वह आगे निवेदन करते हैं कि यह सत्य है कि प्राथमिकी को मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी के न्यायालय में दिनांक 7.8.1997 को अर्थात् प्राथमिकी दर्ज होने के तीन दिन बाद प्राप्त किया गया था लेकिन यह स्वयं में झूठा फंसाया जाना इंगित नहीं करता है। वह निवेदन करते हैं कि मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट दिनांक 4.8.1997 को तैयार की गयी थी और उक्त मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट में पी॰ एस॰ केस संख्या उल्लिखित की गयी थी। बचाव पक्ष ने अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं लाया है जो दर्शाए कि अ॰ सा॰ 1 और 2 को अपीलार्थी के विरुद्ध कोई निजी दुश्मनी थी जिसके चलते उन्होंने उसे झूठा फंसाया। इन गवाहों को ऐसा कुछ भी नहीं सुझाया गया था कि अपीलार्थी को झूठा फँसाने के लिए बाद में प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी भेजने में हुआ विलम्ब कोई सारवान कारक नहीं है और इसे नजरअन्दाज किया जा सकता है। वह निवेदन करते हैं कि स्वयं प्राथमिकी में यह उल्लिखित है कि यद्यपि सूचक ने शोर मचाया था लेकिन कोई नहीं आया क्योंकि घटना का दिन बाजार का दिन था और गाँववाले बाजार गए हुए थे। घटना को देखने वाला कोई अन्य व्यक्ति उपलब्ध नहीं था। उक्त परिस्थितियों के अंतर्गत कोई स्वतंत्र गवाह नहीं था जिसे अभियोजन द्वारा परीक्षित किया जा सकता था। अवर न्यायालय के निर्णय में कोई अवैधता और/अथवा दुर्बलता नहीं है जो इस न्यायालय की हस्तक्षेप की अपेक्षा करता हो।

9. निवेदनों को सुनने के बाद, हमने मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया है। अ॰ सा॰ 3 डॉक्टर है जिसने मृतक कैलाश भुईया के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया और पाया कि मृतक की गर्दन कटी हुई थी और मस्तक शेष शरीर से पूर्णत: अलग था। डॉक्टर का विचार है कि उपहति मृत्युपूर्व प्रकृति की है और किसी तेज धार वाले हथियार जैसे टांगी के द्वारा कारित हुई है।

डॉक्टर ने यह भी राय दिया कि मृत्यु उपर्युक्त उपहति के कारण सदमा एवं रक्तस्राव के कारण कारित हुई है। इस गवाह के प्रति-परीक्षण में ऐसा कुछ भी नहीं है जिस कारण उसके साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जाए। इस प्रकार उक्त चिकित्सीय साक्ष्य के द्वारा अभियोजन ने सिद्ध किया है कि किसी भारी तेज धार वाले हथियार से उसका सर कटने और धड़ से अलग कर दिए जाने के कारण कैलाश भुईया की मृत्यु हुई।

10. अब विनिश्चित करने के लिए सिर्फ यही प्रश्न रहता है कि क्या अपीलार्थी उक्त अपराध का रचयिता है? अ॰ सा॰ 1 (सूचक) और अ॰ सा॰ 2 (सूचक की पुत्री) ने स्वयं को घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है। उपर्युक्त दोनों गवाहों ने कथन किया है कि घटना की तिथि को शाम के पाँच बजे वे मृतक के साथ अपने दरवाजे पर बैठे हुए थे। उस समय अपीलार्थी सुरेश भुईया और राजू पांडे के साथ हाथ में टांगी लिए आया और मृतक को पकड़ लिया और उसे गाँव की सड़क पर घसीटकर ले गए। गवाहों ने आगे कथन किया है कि उन्होंने उनका पीछा किया और अभियुक्तों को उसे मारते-पीटते और जमीन पर पटकते और मृतक की गर्दन पर टांगी का भारी प्रहार करते और धड़ से सर अलग करते देखा। इन गवाहों के प्रति-परीक्षण के परिशीलन से हम पाते हैं कि उनका साक्ष्य अविकल है और बचाव पक्ष ऐसा कुछ भी प्रकाश में नहीं लाया है जिस आधार पर उनके साक्ष्यों को ठुकराया जा सके।

11. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन यह है कि अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य को विचार क्षेत्र से अपवर्जित किया जाए क्योंकि उसे प्राथमिकी में चश्मदीद गवाह के तौर पर नामित नहीं किए जाने के चलते यह स्वीकार्य नहीं है। यह सर्वविदित है कि प्राथमिकी समस्त अभियोजन मामले का विश्वकोष नहीं है। भले ही कुछ मुख्य तथ्य प्राथमिकी में उल्लिखित नहीं किए गए हों, यह इसे विचार किए जाने से अपवर्जित किए जाने का आधार नहीं हो सकता है। सही निष्कर्ष पर आने के लिए उक्त तथ्य पर अन्य साक्ष्यों के साथ विचार किया जा सकता है। सिर्फ इसलिए कि अ॰ सा॰ 2 को प्राथमिकी में चश्मदीद गवाह के तौर पर नामित नहीं किया गया है, हमारी दृष्टि में, उसके साक्ष्य को त्यक्त नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 2 के प्रति-परीक्षण के परिशीलन से हम पाते है कि बचाव पक्ष ने घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति को चुनौती नहीं दी है। यहाँ तक कि इस गवाह को ऐसा नहीं सुझाया गया है कि वह घटना स्थल पर उपस्थित नहीं थी अथवा उसने घटना को नहीं देखा था। उपर्युक्त परिस्थितियों के अंतर्गत हम पाते हैं कि अ॰ सा॰ 2 का साक्ष्य निर्विरोध बना हुआ है और इस प्रकार, उसके साक्ष्य को विचार क्षेत्र से अपवर्जित करने का कोई आधार नहीं है।

12. अब, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अगले निवेदन पर आते हुए कि अभियोजन के द्वारा किसी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि अ॰ सा॰ 1 ने स्पष्ट तौर पर कथन किया है कि यद्यपि उसने शोर मचाया, फिर भी कोई नहीं आया क्योंकि टोले में रहने वाले व्यक्ति उपस्थित नहीं थे। अ॰ सा॰ 2 ने यह भी कथन किया था कि उनके अलावा उनके द्वारा शोर मचाने पर भी कोई अन्य व्यक्ति घटना स्थल पर नहीं आया। उपर्युक्त परिस्थितियों में, हमारी दृष्टि में, वर्तमान मामले में किसी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया जाना कोई दुर्बलता नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि उन गवाहों का भी जिसकी उपस्थिति में फर्दबयान दर्ज किया गया था, परीक्षण नहीं किया गया है। हमारी दृष्टि में, चूँकि उपर्युक्त दोनों गवाहों ने घटना नहीं देखा था, अत: उन गवाहों का परीक्षण नहीं किया जाने का कोई घातक परिणाम नहीं है। यह सर्वविदित है कि सारे गवाहों का परीक्षण करना आवश्यक नहीं है। साक्ष्य की गुणवता, न कि मात्रा का महत्व है। इस संबंध में **सरवन सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, ए॰ आई॰ आर॰ 1976 एस॰ सी॰ 2304** में प्रकाशित, मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का अगला परिवाद कि मजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्राथमिकी भेजने में अत्यधिक विलम्ब हुआ है और जानबूझकर अपीलार्थी को झूठा फँसाये जाने का युक्तियुक्त संदेह है, सम्यक् विचारोपरांत स्वीकारयोग्य नहीं है। अभिलेखों के परिशीलन से हम पाते हैं कि बचाव पक्ष ने अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं लाया है जो दर्शाए कि अ० सा० 1 और 2 ने दुर्भावनाग्रस्त होकर अपीलार्थी को झूठा फँसाया है। यहाँ तक कि अ० सा० 1 (सूचक) को ऐसा कुछ नहीं सुझाया गया है कि अपीलार्थी को झूठा फँसाने के लिए बाद में प्राथमिकी दर्ज की गयी। हम आगे पाते हैं कि फर्दबयान दर्ज किए जाने के तुरन्त बाद अन्वेषण अधिकारी द्वारा दिनांक 4.8.1997 को मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार की गयी और उक्त मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट में मामले का पी० एस० संख्या उल्लिखित किया गया था। मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट में मृत्यु का कारण भी उल्लिखित किया गया था। इस मामले के तथ्यों पर **थानेदार सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2002)1 एस० सी० 487** में प्रकाशित, मामले में दिया गया सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय लागू नहीं होता है। उपर्युक्त निर्णय में, प्राथमिकी का क्रमांक और अपराध संख्या मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट में उल्लिखित नहीं किया गया था जबकि इस मामले में मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट में पी० एस० संख्या दी गयी थी। उस मामले में गवाहों को यह विशेषत: यह सुझाव दिया गया था कि प्राथमिकी घटना के 2-3 दिन बाद तैयार की गयी थी। लेकिन वर्तमान मामले में गवाहों को ऐसा कुछ भी सुझाया नहीं गया है। उक्त परिस्थितियों कें अंतर्गत, उपर्युक्त मामले में अधिकथित विधि इस मामले पर लागू नहीं होती है। **सरवन सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2304** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी भेजने में हुआ विलम्ब ऐसी परिस्थिति नहीं है जो समस्त अभियोजन मामले को ठुकरा दे।

14. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, हम पाते हैं कि अ० सा० 1 और 2 का साक्ष्य विश्वसनीय और स्वीकार्य है। उनके साक्ष्य में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उनकी विश्वसनीयता पर संदेह पैदा करे। घटना स्थल पर इन गवाहों की उपस्थिति को बचाव पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गयी है। उनका साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा भी पूर्णत: संपुष्ट होता है। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो दर्शाए कि उपर्युक्त दोनों गवाहों को कोई निजी शिकायत एवं/अथवा दुश्मनी थी जिसके चलते उन्होंने अपीलार्थी को झूठा फँसाया। इस दृष्टि में, मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी भेजे जाने में हुए विलम्ब का अभियोजन के मामले पर कोई प्रभाव नहीं है।

15. तद्नुसार, हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोप को समस्त युक्तियुक्त संदेह के छाया के परे स्थापित करने में सफल रहा है और उसे विद्वान अवर न्यायालय द्वारा सही दोषसिद्ध किया गया है। आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता और/अथवा दुर्बलता नहीं है जो इस न्यायालय के हस्तक्षेप की अपेक्षा करता हो।

16. परिणामस्वरूप, यह अपील विफल होता है और इसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीय आर० आर० प्रसाद, न्यायमूर्ति

लालटू सरदार एवं अन्य (1275 में)

सुशेन कैबर्त एवं एक अन्य (1374 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal (S.J) No.1275, 1374 of 2006. Decided on 5th November, 2009.

एस० टी० सं० 75 वर्ष 2004 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ० टी० सी०–II, सरायकेला द्वारा क्रमश: दिनांक 30.8.2006 और 31.8.2006 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 395 एवं 397 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27—मृत्यु कारित करने के प्रयास सहित डाका–अधिरोपित जुर्माना सहित दोषसिद्धि एवं दण्ड–पीड़ितों को रास्ते में अपराधियों द्वारा रोका गया और उनपर गोली दागी गयी जब वह भागने का प्रयास कर रहे थे–अभियुक्तों की पहचान परीक्षा परेड नहीं कराया गया–सूचक अभियुक्तों को नहीं पहचान पाया जब उन्हें पुलिस द्वारा छापेमारी के दौरान पकड़ा गया–ऐसी परिस्थिति में, इस दावे पर कि उन अभियुक्तों ने अभिकथित घटना में हिस्सा लिया था विश्वास नहीं किया जा सकता–फिर भी दो अपीलार्थी की सह-अपराधिता सिद्ध हुई–दोषसिद्धि और दण्ड को अंशतः अपास्त किया गया। (पैरा 12 से 20)

(ख) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 9—पहचान परीक्षा परेड (टी॰ आई॰ पी॰)–विचारण के दौरान गवाहों द्वारा की गयी पहचान मामले में प्राथमिक और सारभूत साक्ष्य है–अन्वेषण के दौरान एकत्रित किसी अन्य साक्ष्य की तरह टी॰ आई॰ पी॰ और उसके परिणाम को संपुष्टि अथवा खंडन हेतु प्रयोग किया जा सकता है। (पैरा 13)

निर्णयज विधि.–AIR 1960 SC 1340–Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Ananda Sen, For the Appellants; M/sJagarnath Mahato and Tapas Roy, For the State.

आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति.–समान आक्षेपित आदेश से उद्भूत इन दोनों अपीलों को साथ-साथ सुना गया था और एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. ये अपीलें सत्र विचारण सं॰ 75 वर्ष 2004 में अपर सत्र न्यायाधीश-सह-एफ॰ टी॰ सी॰, सरायकेला द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दण्डादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी हैं जिनके द्वारा और जिनके अंतर्गत अपीलार्थीगण सुशेन कैबर्त और सुमन्तों तांती को भारतीय दंड संहिता की धारा 395 और 397 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन भी किए गए अपराध के लिए दोषी पाया गया था और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 395 एवं 397 के अधीन क्रमशः दस वर्षों और सात वर्षों के सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी। उनलोगों को 1000/- रु॰ के जुर्माने का भुगतान करने से भी दण्डित किया गया था। इसके अतिरिक्त उन्हें आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन किए गए अपराध के लिए तीन वर्षों के सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी और 1000/- रुपये का जुर्माना किया गया था और व्यतिक्रम किए जाने पर पाँच महीनों का साधारण कारावास भुगतने की सजा दी गयी थी। दोनों सजाओं को साथ-साथ चलने का आदेश दिया गया था जबकि अन्य अपीलार्थीगण, अर्थात लालटू सरदार, गांधी मोदी और मानो सरदार को भारतीय दंड संहिता की धारा 395 के अधीन किए गए अपराध का दोषी पाए जाने पर दस वर्षों के सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी और 1000/- रुपया जुर्माना किया गया था।

3. अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 27.2.2004 को जब सूचक झारीलाल सोनी (अ॰ सा॰ 2) अपने भाई रविन्द्र नाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3) के साथ अपने भाई द्वारा चलाए जा रहे मोटरसाइकिल पर सिनी बाजार से अपने घर लौट रहा था और जब वे रात्रि लगभग 9.15 बजे कृष्णापुर नाला पहुँचे, उनको पाँच व्यक्तियों द्वारा रास्ते में रोका गया। उनमें से दो आग्नेयास्त्र धारण किए हुए थे जिन्होंने उन्हें रुकने को कहा लेकिन रविन्द्र नाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3) रुकने के बजाय मोटरसाइकिल की गति बढ़ा दी लेकिन इसी बीच उनमें से एक ने गोली दागी जो रविन्द्र नाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3) के बायें हाथ की कलाई पर लगी जिसके परिणामस्वरूप वे मोटरसाइकिल से गिर गए और उन्होंने फिर भागने की कोशिश की लेकिन इसी समय दूसरे बदमाश ने गोली दागी जो रविन्द्रनाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3)

के बायें हाथ पर लगी। इसके बावजूद वे हल्ला करते गाँव की ओर भाग गए। हल्ला सुनने पर जब तक गाँव वाले वहाँ पर आते, बदमाश मोटरसाइकिल ले कर भाग गए। जब गाँव वाले वहाँ पर आए, बदमाश लोग मोटरसाइकिल लेकर भाग गए। जब गाँव वाले जमा हुए, वे उसी दिशा में दौड़े जिधर अभियुक्त भागे थे और कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने मोटरसाइकिल को झाड़ी के पीछे पाया जिसे प्राप्त कर लिया गया। तत्पश्चात्, घायल रविन्द्र नाथ सोनी (अ० सा० 3) को सरायकेला अनुमंडल अस्पताल ले जाया गया जहाँ सरायकेला पुलिस थाना का प्रभारी अधिकारी रात्रि लगभग 1 बजे आया और झरीलाल सोनी (अ० सा० 2) का फर्दबयान (प्रदर्श-1) दर्ज किया जिसमें उसने कथन किया कि वह दो बदमाशों अर्थात् सुमन्तो तांती और मानो सरदार को पहचान सकता है। इस आधार पर मामला दर्ज किया गया और नारायण दास (अ० सा० 8) द्वारा अन्वेषण शुरू किया गया जिसे रात्रि लगभग 2.45 बजे घटनास्थल की ओर आते हुए सूचना मिली कि बदमाश मानो सरदार के घर में एकत्रित हुए हैं। तद्नुसार उसने अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ मानो सरदार के घर पर छापा मारा जहाँ उन्हें चार व्यक्ति मिले जिन्हें सूचक झरी लाल सोनी (अ० सा० 2), जो उनके साथ गया था, ने उन बदमाशों के तौर पर पहचाना जिन्होंने अपराध किया था और बदमाशों ने अपना नाम मानो सरदार, सुशेन कैबर्त, लालटू सरदार और गांधी मोदी बताया। उनकी व्यक्तिगत जाँच करने पर सुशेन कैबर्त को भरी हुई पिस्तौल के साथ पाया गया जिसे अधिग्रहण सूची के अधीन जब्त कर लिया गया। तत्पश्चात् पकड़े गए सारे व्यक्तियों ने अपना अपराध कबूला जिसे लिख लिया गया।

4. अन्वेषण के दौरान, सरायकेला अनुमंडल अस्पताल में भर्ती किए जाने पर घायल रविन्द्र नाथ सोनी (अ० सा० 3) को डॉ० विभा सोरेन (अ० सा० 7) द्वारा परीक्षण किया गया जिन्होंने बायीं बाँह और हथेली पर बंदूक की गोली से हुई उपहति पाई। उक्त उपहति रिपोर्ट प्रदर्श-4 के तौर पर प्रमाणित किया गया है।

5. यह प्रकट है कि आगे उपचार हेतु टी० एम० एच० भेजे जाने पर घायल का परीक्षण डॉ० नित्यानन्द झा (अ० सा० 6) द्वारा किया गया जिन्होंने भी बायीं बाँह और बांयी ऊपरी बाँह पर बंदूक की गोली से हुई उपहति पाया और तद्नुसार, उपहति रिपोर्ट (प्रदर्श-3) जारी किया।

6. अन्वेषण पूरा होने के बाद, पुलिस ने अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया जिसके आधार पर अपराध का संज्ञान लिया गया और सम्यक् अनुक्रम में, जब मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया, आरोप विरचित किए गए जिसके विरुद्ध अपीलार्थीगण अपने दोषी न होने की अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया।

7. अभियोजन ने मामला सिद्ध करने के लिए आठ गवाहों का परीक्षण किया। उनमें से अ० सा० 2 झरी लाल सोनी सूचक है और अ० सा० 3 रविन्द्र नाथ सोनी घायल व्यक्ति है जिन्होंने मामले का समर्थन किया कि जब वे सिनी बाजार से घर लौट रहे थे तो पाँचों बदमाशों ने उन्हें रास्ते में रोका था। उनमें से दो ने रविन्द्र नाथ सोनी (अ० सा० 3) को उपहति कारित की थी और मोटरसाइकिल छीन लिया था। दोनों गवाहों ने पाँचों अभियुक्तों के बदमाशों के तौर पर पहचाना जिन्होंने घटना में भाग लिया था। अ० सा० 1 हरिलाल सोनी सूचक झरी लाल सोनी (अ० सा० 2) जो सूचक द्वारा सूचना दिए जाने पर घटना स्थल पर आया और अन्यों के साथ घायल व्यक्ति को अस्पताल ले गया। उसके भाई ने उसे कहा कि उसने दो अर्थात् सुमन्त तांती और मानो सरदार को पहचाना है। अन्य गवाह अ० सा० 4 रमेश महतो और अ० सा० 5 ललका महतों को पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

8. विचारण न्यायालय ने गवाहों के परिसाक्ष्यों को विश्वसनीय पाते हुए सारे अपीलार्थीगण को दोषी पाया और तद्नुसार, दोषसिद्धि का निर्णय और सजा का आदेश दर्ज किया।

9. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि सूचक के फर्दबयान के मुताबिक वह सिर्फ सुमन्ता टांटी और मानो सरदार को पहचान सका था और इस कारण उनके और अन्य अनजान व्यक्तियों के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था लेकिन विचारण न्यायालय ने उनके अलावा तीन अन्य अपीलार्थीगण को भी दोषसिद्ध किया है जिनका कभी परीक्षा पहचान परेड नहीं कराया गया है यद्यपि साक्ष्य देने के दौरान गवाहों अ॰ सा॰ 2 और 3 ने उन्हें न्यायालय में पहचाना लेकिन अन्वेषण अधिकारी द्वारा कोई परीक्षा पहचान परेड संचालित न किए जाने के कारण ऐसे पहचान का कोई मूल्य नहीं है यद्यपि यह कहा गया है कि जब अन्वेषण अधिकारी ने चार व्यक्तियों को पकड़ा, तब सूचक अ॰ सा॰ 2 जो अभिकथित तौर पर छापा मारने वाले दल के साथ था, ने उन्हें पहचाना लेकिन उस पहचान का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि अभियुक्तों, जिन पर अपराध करने का संदेह है, का परीक्षा पहचान परेड करवाया जाना चाहिए था जो कि कतिपय तामझाम संप्रेक्षित करने के बाद संचालित किया जा रहा है लेकिन अन्वेषण अधिकारी ने उनकी परीक्षा पहचान परेड नहीं कराया। संभवत: इस कारण कि सूचक ने उनकी गिरफ्तारी के समय अभियुक्तों को पहचाना था और मामले की इस दृष्टि में विचारण न्यायालय को उन व्यक्तियों को दोषसिद्ध नहीं करना चाहिए था जिन्हें न तो प्राथमिकी में नामित किया गया था और न ही जिनकी परीक्षा पहचान परेड करायी गयी थी।

10. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते है कि ऐसा कोई निश्चित साक्ष्य नहीं है कि किसने अभिकथित डकैती करने के दौरान घायल व्यक्ति (अ॰ सा॰ 3) पर आग्नेयास्त्र से हुई उपहति कारित की थी और इसके बावजूद भारतीय दंड संहिता की धारा 397 और 395 एवं आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपीलार्थीगण सुमन्त टांटी और सेशेन कैबर्त को दोषसिद्ध किया गया है जो बिल्कुल गैर कानूनी है क्योंकि यदि इन दो अपीलार्थीगण के विरुद्ध डकैती करने के दौरान उपहति कारित करने का साक्ष्य होता तो उन्हें धारा 397 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था लेकिन दोनों अपराधों के लिए नहीं अर्थात् भारतीय दंड संहिता की धारा 397 और 395 के अधीन, और मामले की इस दृष्टि में आक्षेपित आदेश गैर कानूनी है और अभिखंडित किए जाने योग्य है।

11. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि जब सूचक झरी लाल सोनी (अ॰ सा॰ 2) अपने भाई रविन्द्रनाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3) के साथ मोटरसाइकिल पर सिनी बाजार से घर लौट रहा था, उनको रास्ते में पाँच बदमाशों द्वारा रोका गया जिनमें से दो अर्थात् सुमन्त टांटी और मानो सरदार को सूचक झरीलाल सोनी (अ॰ सा॰ 2) और रविन्द्रनाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3) द्वारा पहचान लिया गया। जब उन्हें रुकने को कहा गया, उन्होंने वहाँ से मोटरसाइकिल की गति बढ़ा कर वहाँ से भागने की कोशिश की, कुछ बदमाशों ने गोली दागी जो रविन्द्रनाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3) को लगी जिसके परिणामस्वरूप वे गिर गए और उन्होंने फिर वहाँ से भागने की कोशिश की और फिर किसी ने गोली दागी जिससे दूसरी उपहति कारित हुई और तब उन्होंने मोटरसाइकिल छीन ली।

12. यहाँ यह नोट करना महत्वपूर्ण होगा कि न तो झरीलाल सोनी (अ॰ सा॰ 2) ने अपने फर्दबयान में और ना ही रविन्द्रनाथ सोनी (अ॰ सा॰ 3) ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन दिए गए बयान में कथन किया है कि उन दोनों व्यक्तियों ने गोली चलायी थी। आगे मैं यह भी पाता हूँ कि सुमन्त टांटी और मानो सरदार के अलावा तीनों अपीलार्थीगण में से कोई भी फर्दबयान में नामित नहीं किया गया है। हाँलाकि, उन्हें न्यायालय में पहचाना गया है यद्यपि उनकी परीक्षा पहचान परेड नहीं करायी गयी थी लेकिन अभियोजन के मामले के मुताबिक उनको सूचक द्वारा पहचाना गया था जब उन्हें मानो सरदार के घर से गिरफ्तार किया गया था। इस प्रकार विचारण के लिए प्रश्न यह होगा कि क्या ऐसी परिस्थिति में विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण विशेषत: उन व्यक्तियों को जिन्हें प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है, को दोषी निर्धारित करना न्यायोचित है।

13. इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है कि यह एक सर्वविदित सिद्धांत है कि विचारण के दौरान गवाहों द्वारा की गयी पहचान मामले का प्राथमिक और सारभूत साक्ष्य है। एक पहचान परेड पुलिस द्वारा किए जा रहे अन्वेषण का एक चरण है। अन्वेषण के दौरान उपाप्त किसी अन्य साक्ष्य की तरह, परीक्षा पहचान परेड और इसके परिणाम का उपयोग संपुष्टि अथवा खंडन के लिए किया जा सकता है। अन्वेषण के दौरान उपाप्त साक्ष्य होने के चलते, निश्चय ही यह विचारण के दौरान प्राथमिक अथवा सारभूत साक्ष्य नहीं होगा। ऐसे मामले हो सकते है जहाँ घटना दिन में घटित होने के कारण अथवा अपराधियों को पहचानने हेतु पर्याप्त रोशनी होने के कारण अथवा अपराधियों के साथ पीड़ित के नजदीक होने के कारण अथवा पूरी घटना घटित होने में लगे समय के अधिक होने के कारण अपराधियों की शिनाख्त होना ज्यादा संभाव्य है। इसके अलावा, ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती है जहाँ यह धारित किया जा सकता है कि अपराधी आसानी से पहचाने जा सकते है। ऐसे मामलों में, शायद परीक्षा पहचान परेड आवश्यक नहीं है। फिर भी, ऐसा मामला हो सकता है जहाँ परिस्थितियाँ ऐसी हो कि यह धारित करना असंभव हो कि गवाहों द्वारा अपराधियों की रूपरेखा नोट की जा सकती है और ऐसे मामले में न सिर्फ विचारण के दौरान की गयी पहचान पर अविश्वास किया जाएगा बल्कि इसको समर्थन देने वाले पहचान परेड पर भी विश्वास नहीं किया जाएगा। इन दोनों छोरों के बीच अनगिनत मामले है जहाँ ऐसी परिस्थितियाँ है कि यह निश्चयपूर्वक धारित नहीं किया जा सकता है कि गवाह अपराधियों को देख सकते है या नहीं। किसी व्यक्ति की पहचान करने के रोशनी अथवा समय की कमी के कारण ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती है। ऐसे मामले में जहाँ कोई निष्कर्ष निश्चयपूर्वक नहीं निकाला जा सकता है, विचारण के दौरान गवाह द्वारा किये गये पहचान को पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। न्यायालय इस पहचान की संपुष्टि पहले की गयी परीक्षा पहचान परेड द्वारा किए जाने की अपेक्षा करता है।

14. इस चरण पर मैं **बैकुण्ठ बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (ए॰ आई॰ आर॰ 1960 एस॰ सी॰ 1340)** में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करना चाहूँगा जहाँ निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:-

> *''यह सत्य है कि न्यायालय में दिया गया बयान सारभूत साक्ष्य है, लेकिन पहचान परीक्षा का उद्देश्य उस साक्ष्य की परीक्षा करना है और सुरक्षित नियम यह है कि अभियुक्तों, जिनसे गवाह अपरिचित है, की पहचान हेतु गवाहों द्वारा शपथ पर दिये गए परिसाक्ष्य की संपुष्टि की अपेक्षा है जो पूर्व में की गयी पहचान कार्यवाही के रूप में होनी चाहिए। इस नियम के अपवाद हो सकते है जहाँ न्यायालय संतुष्ट है कि किसी विशेष गवाह का साक्ष्य ऐसा है जिस पर पूर्व पहचान कार्यवाही पर पूर्वविधान किए बिना सुरक्षापूर्वक विश्वास किया जा सकता है।''*

15. उक्त सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में यदि वर्तमान मामले पर विचार किया जाए तो मैं पाता हूँ कि सिर्फ दो व्यक्तियों सुमन्ता टांटी और मानो सरदार को प्राथमिकी में नामित किया गया और उनके नामों को घटना के तुरंत बाद झरीलाल सोनी (अ॰ सा॰ 2) द्वारा अ॰ सा॰ 1 को प्रकट किया गया था जब अ॰ सा॰ 2 ने अ॰ सा॰ 1 को घटना के बारे में बताया और अ॰ सा॰ 2 और 3 के अनुसार वे उन दोनों व्यक्तियों को पहले से जानते थे जिन्हें उन्होंने मोटरसाइकिल की रोशनी में पहचाना था जबकि तीन अपीलार्थीगण, अर्थात् सुशेन कैबर्त, गांधी मोदी और लालटू सरदार, दोनों गवाहों के साक्ष्यों के अनुसार वे कभी नहीं जानते थे और फिर भी दोनों गवाहों ने साक्ष्य के दौरान उन्हें पहचानने का दावा किया यद्यपि घटना रात में हुई थी और स्वयं अभियोजन के मामले के अनुसार, किसी भी गवाह के पास पर्याप्त समय नहीं था कि वह अन्य अभियुक्तों की रूपरेखा नोट कर पाए। मामले के इस दृष्टि में, यह

अन्वेषण अधिकारी पर बाध्यता थी कि वह उन व्यक्तियों की परीक्षा पहचान परेड करवाए लेकिन उनका परीक्षा पहचान परेड नहीं करवाया गया संभवतः इस कारण पुलिस द्वारा छापामारी के दौरान उन्हें गिरफ्तार करने पर सूचक ने उन्हें पहचाना लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार वह प्रक्रिया दंड संहिता प्रक्रिया की योजना से बिल्कुल हट कर है और ऐसी स्थिति में ये दावा कि उन तीनों व्यक्तियों ने अभिकथित घटना में भाग लिया था पर शायद ही विश्वास किया जा सकता है। अतः ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन तीनों व्यक्तियों अर्थात् सुशेन कैबर्त, गांधी मोदी और लालटू सरदार को विचारण न्यायालय द्वारा गलत रूप से दोषसिद्ध किया गया है।

16. लेकिन सम्पूर्ण तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, जो ऊपर विवेचित किया गया है, जहाँ तक कि अपीलार्थीगण सुमन्तो तांती एवं मानो सरदार की सदोषता का सम्बन्ध है, अ० सा० 1 एवं 2 के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है एवं इसलिए, उनलोगों को उचित रूप से ही दोषी पाया गया है।

17. लेकिन प्रश्न यह होगा कि सुमन्तो टांटी को भारतीय दंड संहिता की धारा 397 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया जाना न्यायोचित है। मैंने पहले ही नोट किया है कि सूचक ने अपने फर्दबयान में कभी नहीं कहा है कि सुमन्तो टांटी के पास आग्नेयास्त्र था और न ही उसके द्वारा गोली दागने का अभिकथन किया गया है। लेकिन, अ० सा० 3 रविन्द्र नाथ सोनी ने परिसाक्ष्य दिया है कि पहली गोली सुशेन कैबर्त द्वारा दागी गयी थी और दूसरी गोली सुमन्तो टांटी ने दागी थी लेकिन यह साक्ष्य अ० सा० 2 के साक्ष्य द्वारा संपुष्ट नहीं होता है क्योंकि उसने कहा है कि दोनों अर्थात् सुमन्तो टांटी और सुशेन कैबॅत में से किसी एक ने गोली चलायी थी। उसने कभी यह प्रकट नहीं किया कि किसने गोली चलायी थी। ऐसी स्थिति में यह धारित करना सुरक्षित नहीं होगा कि सुशेन कैबर्त अथवा सुमन्तो टांटी ने गोली चलायी थी जिसके परिणाम स्वरूप अ० सा० 3 को उपहति हुई।

18. इन परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय सुमन्तो तांती और सुशेन कैबर्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 397 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन दोषी करार देने में न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है और इस प्रकार दोषसिद्धि के निर्णय और सजा के आदेश के उस अंश को अपास्त किया जाता है।

19. परिणामस्वरुप, अपीलार्थीगण अर्थात् सुशेन कैबर्त, गांधी मोदी और लालटू सरदार को उनके विरुद्ध लगाए गए सारे आरोपों से मुक्त किया जाता है और उनको तुरत निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी जरूरत न हो जबकि सुमन्तों टांटी और मानो सरदार को भारतीय दंड संहिता की धारा 395 के अधीन किए गए अपराध के लिए सही दोषसिद्ध किया गया है जिसे मान्य ठहराया जाता है।

20. सजा के बिन्दु पर आते हुए निर्णय से यह प्रकट है कि दोनों, जो नवयुवक है, की कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है और जैसा कि पहले पाया गया है, उन्होंने अ० सा० 3 को उपहति कारित नहीं की थी और वह वर्ष 2004 से विचारण की कठोरता झेल रहे है और मानसिक दुःख और पीड़ा से गुजरे है, अतः उनके ऊपर आरोपित सजा को सात वर्ष के सश्रम कारावास में बदला जाता है जो इस मामले की परिस्थितियों में न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करता है। जहाँ तक जुर्माने की सजा है वह बरकरार रहेगी।

21. परिणामस्वरूप, दोनों अपीलों को अंशतः अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

बिहार राज्य

बनाम

पीटर शान्ति कुजूर

Government Appeal No. 1 of 1998 (R). Decided on 12th November, 2009.

दांडिक अपील सं॰ 63 वर्ष 1996(L)/8 वर्ष 1996 में श्री बिश्वनाथ प्रसाद सिंह अपर सत्र न्यायिक आयुक्त, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 31 जुलाई, 1997 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 409—खाद्यान्न और अन्य सामानों की अभिकथित कमी–उस धारा के अधीन विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि की–अपीलीय न्यायालय द्वारा बरी किया गया–सरकारी अपील–अभिनिर्धारित, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन किसी मामले में अभियोजन को अनिवार्यतः सिद्ध करना है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी को सौंपे गए खाद्यान्न एवं तेल की मात्रा क्या थी, तभी अभियोजन कमी और गबन को सिद्ध कर सकता है–वर्तमान मामले में दोनों गवाहों ने कहा है कि वे सौंपे जाने का कोई विवरण नहीं दे सकते–एफ॰ सी॰ आई॰ के किसी भी व्यक्ति को परीक्षित नहीं किया गया जहाँ से खाद्यान्न प्रत्यक्षतः आए थे–अभियोजन अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा–दोषमुक्ति के आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं। (पैरा 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Ravi Prakash, For the Appellant; Mr. Neeraj Kumar; For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–दाण्डिक अपील सं॰ 63 वर्ष 1996(L)/8 वर्ष 1996 में श्री बिश्वनाथ प्रसाद सिंह, अपर न्यायिक आयुक्त, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 31 जुलाई, 1997 के दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध यह सरकारी अपील निर्दिष्ट है जिस निर्णय के द्वारा विद्वान ए॰ सी॰ जे॰, लोहरदग्गा, ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध दोषमुक्ति का निर्णय पारित किया है।

2. विद्वान अ॰ लो॰ अभि॰ द्वारा यह निवेदन किया गया है कि सहायक वन्य परिरक्षक की रिपोर्ट, जिसके आधार पर मामला उपयुक्त रूप से दाखिल किया गया था, सिद्ध हो चुकी है और यह अ॰ सा॰ 2, बैकुण्ठ नाथ द्विवेदी के साक्ष्य से समर्थित भी है। विद्वान विचारण न्यायालय ने स्वयं अभियुक्त को दिनांक 17.10.2002 की रिपोर्ट, जो केस डायरी के पृष्ठ 14 पर उपलब्ध थी के साथ-साथ अ॰ सा॰ 2 एवं 3 के साक्ष्य पर भरोसा करते हुए उचित रूप से प्रत्यर्थी की दोषसिद्धि की और अपर न्यायिक आयुक्त द्वारा पारित दोषमुक्ति का आक्षेपित निर्णय विधि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है और अपील को फिर से सुनवाई के लिए प्रतिप्रेषित करना चाहिए।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अपर न्यायिक आयुक्त का निर्णय पूर्णतः आधृत है क्योंकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 के अधीन सम्पत्ति का अनिवार्यतः सौंपा जाना होता है और दोनों गवाह अ॰ सा॰ 2 एवं 3 साक्ष्य या किसी दस्तावेज द्वारा यह सिद्ध करने में विफल रहे हैं कि प्रत्यर्थी को सौंपे गए खाद्यान्न एवं तेल की मात्रा क्या थी। वे उस पंजी को भी सिद्ध करने से विफल रहे जो श्रमिको के बीच वितरित की गई खाद्यान्न एवं तेल की मात्रा को दर्शा सकता था। चूँकि खाद्यान्न को वन में श्रमिको के बीच वितरित किया जाना था और इस प्रकार विद्वान अपीलीय न्यायालय ने उचित ही प्रत्यर्थी की दोषसिद्धि की। उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि अभियुक्त द्वारा दी गई रिपोर्ट कार्बन-कॉपी में दिनांक 17.10.1992 के केस डायरी में उपलब्ध थी, जिसे विचारण में सिद्ध नहीं किया गया था और इस प्रकार विद्वान अपर न्यायिक आयुक्त ने उचित ही पाया कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध दोषसिद्धि के निर्णय को पारित करने के लिए इसपर भरोसा नहीं किया जा सकता।

4. दोनो पक्षों की सुनवाई करके और रिपोर्ट का अवलोकन करके, मैं पाता हूँ कि सूचनादाता (अ॰ सा॰ 2) द्वारा दर्ज एक प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर अभियोजन मामला प्रारम्भ किया गया था उसमें यह कथन करते हुए कि विश्व खाद्य कार्यक्रम के अधीन, प्रत्यर्थी-अभियुक्त, पीटर शान्ति कुजूर लोहरदग्गा के लकड़ी काटने के क्षेत्र के श्रमिकों के बीच खाद्यान्न के वितरण का प्रभारी था। 25.11.1992 को जाँच के दौरान उसने पाया कि गेहूँ के 12385 कि॰ ग्रा॰, मटर के 823.05 कि॰ ग्रा॰ एवं सोयाबीन तेल के 783.7720 कि॰ ग्रा॰ की कमी थी।

5. उक्त रिपोर्ट के आधार पर पुलिस ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 के अधीन एक मामला दर्ज किया और अन्वेषण के उपरांत पुलिस ने अभियुक्त-प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया और अभियुक्त प्रत्यर्थी की विचारण विद्वान दण्डाधिकारी, श्री शंभु नाथ मिश्रा, अनुमंडलीय न्यायिक दण्डाधिकारी, लोहरदग्गा द्वारा किया गया था, जिन्होंने इसे जी॰ आर॰ केस सं॰ 3/93 में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 के अधीन दोषी पाया। दिनांक 24.6.96 के अपने आदेश द्वारा उन्होंने उसे 3 वर्ष के सश्रम कारावास का दण्ड सुनाया।

6. अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने न्यायिक आयुक्त के समक्ष एक अपील दाखिल की, जिसे दां॰ अपील सं॰ 63 वर्ष 1996 (एल॰) में अपर न्यायिक आयुक्त द्वारा अंतिम रूप से सुना गया था।

7. दोनों पक्षों की सुनवाई करके और अभिलेख का अवलोकन करने के उपरांत, मैं पाता हूँ कि अभियोजन आरोपों को युक्तिसंगत संदेहों से परे सिद्ध करने में विफल रहा है और आक्षेपित निर्णय से अभियुक्त-प्रत्यर्थी को बरी कर दिया गया है।

8. यह प्रतीत होता है कि विचारण के अनुक्रम में अभियोजन ने 4 गवाहों को परीक्षित किया है। केवल अ॰ सा॰ 1 सोनकिया झा ने थाना प्रभारी, लोहरदग्गा पुलिस थाना की लिखावट में औपचारिक प्रथम सूचना रिपोर्ट को सिद्ध किया है जो प्रदर्श-1 के तौर पर है।

अ॰ सा॰ 2, बैकुण्ठ नाथ द्विवेदी है, जो डी॰ एफ॰ ओ॰ हैं और इस मामले में सूचनादाता भी है।

अ॰ सा॰ 3, राम भरत सहायक वन परिरक्षक है, जिसने रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

अ॰ सा॰ 4, सनातन कन्दायन भी एक औपचारिक गवाह है।

इस प्रकार, केवल दो ही गवाह हैं।

9. अ॰ सा॰ 2, बैकुण्ठ नाथ द्विवेदी ने अपने साक्ष्य में कहा है कि 10.12.92 को उसने ए॰ सी॰ एफ॰, लोहरदग्गा से रिपोर्ट प्राप्त किया। उसने भौतिक सत्यापन पर पाया कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी, पीटर शान्ति कुजूर के नियंत्रणाधीन गोदाम से गेहूँ 12385 कि॰ ग्रा॰, मटर 823.050 कि॰ ग्रा॰ और सोयाबिन का तेल 783.7720 कि॰ ग्रा॰ कम था। उक्त रिपोर्ट के आधार पर उसने अभियुक्त-प्रत्यर्थी को एक कारण-पृच्छा नोटिस निर्गत किया जो विभागीय जाँच के लिए उपस्थित नहीं हुआ तब उसने उसके विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज किया। उसने सत्यापन रिपोर्ट पर अभियुक्त-प्रत्यर्थी के आवेदन को भी सिद्ध कर दिया, जो हाईड्रोसिल का ऑपरेशन के लिए कार्यालय छोड़ गया था। अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने कथन किया कि वह इसको लेकर रिपोर्ट नहीं दे सकता कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी को गेहूँ, मटर और सोयाबीन तेल की कितनी मात्रा सौंपी गई थी। खाद्यान्न एफ॰ सी॰ आई॰ के गोदाम से प्रत्यक्षत: आता है और एफ॰ सी॰ आई॰ के प्राधिकारीगण इसे सिद्ध कर सकते हैं। उसने यह भी कहा कि उसने स्वयं कभी अभियुक्त-प्रत्यर्थी के गोदाम का सत्यापन नहीं किया। उसने यह भी कथन किया कि उसने वह पंजी पेश नहीं किया है जो श्रमिको के बीच अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा वितरित खाद्यान्न की मात्रा को दर्शाता है और वह उसे न ही न्यायालय लेकर आया है।

अ॰ सा॰ 3, राम भरत, सहायक वन परिरक्षक, जिसने रिपोर्ट का सत्यापन किया और कहा कि डी॰ एफ॰ ओ॰ के निर्देश के अनुसार उसने अभियुक्त-प्रत्यर्थी के गोदाम का सत्यापन किया। सत्यापन

पर उसने गेहूँ 12385/कि० ग्रा० मटर 823.050 कि० ग्रा० और सोयाबीन तेल 783.7720 कि० ग्रा० कम पाया। उसने यह भी कथन किया कि अभियुक्त की पूर्व के रिपोर्ट के आधार पर उसने उक्त कमी पाई। अपनी प्रति परीक्षा में उसने यह भी कहा कि वह अभियुक्त को सौंपी गई खाद्यान्न एवं तेल की मात्रा नहीं दे सकता। उसने यह भी कहा कि कितने श्रमिकों को खाद्यान्न एवं तेल दिए गए थे। वह नहीं कह सकता क्योंकि उसने उस खाद्य के बारे में ये नहीं कहा था।

10. दोनों गवाहों के साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 के अधीन एक मामले में अभियोजन को पहले यह सिद्ध करना आवश्यक है कि अभियुक्त प्रत्यर्थी को सौंपे गए खाद्यान्न एवं तेल की मात्रा क्या थी तभी अभियोजन, अभियुक्त द्वारा किए गए गबन एवं कमी को सिद्ध कर सकता था। वर्तमान मामले में दोनों गवाहों ने कहा है कि वे अभियुक्त-प्रत्यर्थी को सौंपे गए सामान का कोई विवरण नहीं दें सकतें। अ० सा० 2 ने कथन किया कि खाद्यान्न एफ० सी० आई० के गोदाम से प्रत्यक्षत: आता है परन्तु एफ० सी० आई० के किसी अधिकारी को जाँच नहीं की गई यह सिद्ध करने के लिए कि उनके द्वारा गोदाम को कितना मात्रा दी गयी थी। तथापि, अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल एक रिपोर्ट के आधार पर कमी पाई गई थी तब यह सिद्ध करना अभियोजन का कर्तव्य था कि न्यायालय में उक्त रिपोर्ट को सिद्ध करें, परन्तु इसे न तो न्यायालय में दाखिल दिया गया और न ही सिद्ध किया गया।

11. मामले की इस दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि अपर न्यायिक आयुक्त, लोहरदग्गा के निष्कर्ष के साथ असहमत होने का कोई कारण नहीं है, जिन्होंने दाण्डिक अपील सं० 63 वर्ष 1996 (L) में दिनांक 31.7.1997 के आक्षेपित आदेश द्वारा अभियोजन आरोपों को युक्तिसंगत संदेहों से परे करके सिद्ध करने में विफल रहा है, अत: मैं इस सरकारी अपील में कोई गुण नहीं पाता हूँ और यह तद्नुसार खारिज की जाती है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

प्रदीप कुमार झा

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Acq. Appeal (S.J.) No. 40 of 2008. Decided on 4th November, 2009.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138 सह-पठित धाराएँ 118 एवं 139—चेक का अनादरण–अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध परिवादी द्वारा अपील–पक्षों के बीच व्यावसायिक संबन्ध–प्रश्नाधीन चेक को दो बार अनादृत किया गया–न्यायालय को उपधारित करना है कि चेक ऋण या दायित्व के लिए निर्गत किया गया है–यह सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर कि यह ऋण या दायिता के लिए निर्गत नहीं किया गया था–परिवादी का मामला गवाहों के साक्ष्य द्वारा समर्थित–लापता होने का वृत्तांत विश्वास उत्पन्न करने वाला नहीं–आक्षेपित निर्णय अपास्त–दोषसिद्धि संपुष्ट–तथापि, कारावास के स्थान पर अभियुक्त को 1,50,000/- रुपए का भुगतान करने का निर्देश दिया गया एवं दं० प्र० सं० की धारा 357 (3) के प्रावधानो में उस राशि के एक अंश की भुगतान परिवादी/अपीलार्थी को करना है। (पैरो 7, 10, 11 से 13)

निर्णयज विधि.–2008(1) Crimes 227(SC)—Distinguished; (2001) 6 SCC 16; (2001) 8 SCC 458; (2002) 1 East Cr.C. 65 (SC)—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Ranjan, Kripa Shankar Nanda, For the Appellant; Mr. Sumir Prasad, For the Respondent No.1; M/s S.K. Murari & Rajan Raj, For the Respondent No. 2.

आदेश

यह एक दोषमुक्ति अपील है। इस मामले में दां॰ वि॰ या॰ (डी॰ बी॰) 170 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 3.9.2008 के आदेश से इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा एक अपील दाखिल करने की अनुमति प्रदान कर दी गयी थी।

2. प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विरुद्ध परिवादी/अपीलार्थी द्वारा दाखिल लिखित परिवाद से यथा प्रतीत होने वाला अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि परिवादी प्रत्यर्थी सं॰ 2 से भली-भाँति परिचित था और उनके बीच व्यवसायिक सम्बन्ध थे। वे साथ कार्य कर रहे थे परन्तु कुछ समय उपरांत उनके बीच संबंध खराब हो गए और घाटशिला न्यायालय में उनके बीच मुकदमा C1-28/96 प्रारम्भ हुआ। मित्रो एवं संबंधियों के बीच-बचाव पर दोनों पक्षों ने न्यायालय के बाहर मामले पर समझौता कर लिया और यह निर्णय किया गया कि प्रत्यर्थी संख्या 2 परिवादी को 3,50,000/- रुपए (तीन लाख पचास हजार) की एक राशि का भुगतान करेगा और परिवादी मामले में रूचि नहीं लेगा या कार्यवाही नहीं करेगा। समझौते के अनुसार, अभियुक्त बलदेव सिंह ने 2.5.2005 को 3,50,000/- रुपए (तीन लाख पचास हजार) का एक चेक निर्गत किया, जिसकी संख्या 112627 सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, जमशेदपुर का था। जब परिवादी ने अपने बैंकरो, अर्थात बैंक ऑफ बड़ौदा, गोलमुरी शाखा, जमशेदपुर के माध्यम से पूर्वोक्त चेक भुनाने के लिए पेश किया तो अभियुक्त के बैंकरो, अर्थात् सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, जमशेदपुर ने अभियुक्त की 'धन अपर्याप्तता दर्शाते हुए अभियुक्त द्वारा निर्गत चेक को चेक वापसी ज्ञापन, दिनांक 3.5.2005 द्वारा अनादृत कर दिया। बैंक से पूर्वोक्त सूचना की प्राप्ति पर, परिवादी ने इसकी सूचना अभियुक्त को दी, परन्तु अभियुक्त ने उसे 15.5.2005 को या इसके उपरांत उक्त चेक दोबारा प्रस्तुत करने को कहा। तद्नुसार, परिवादी ने 16.5.2005 को उक्त चेक प्रस्तुत किया परन्तु उस समय भी अभियुक्त का बैंकरो ने चेक वापसी ज्ञापन, दिनांक 20.5.2005 के माध्यम से अपर्याप्त कोष दर्शाते हुए उक्त चेक को अनादृत कर दिया। यह सूचना परिवादी को 30.5.2005 को पहुँचाई गई थी।

3. अन्तत:, परिवादी ने अभियुक्त को निर्बंधित डाक के माध्यम से दिनांक 11.6.2005 को एक विधिक नोटिस भेजी उक्त नोटिस की प्राप्ति से पन्द्रह दिनों के भीतर चेक की राशि अर्थात् 3,50,000/- रुपए के भुगतान की मांग करते हुए अभियुक्त ने उक्त विधिक नोटिस को 15.6.2005 को प्राप्त किया। चूँकि अभियुक्त ने परिवादी को किसी राशि का भुगतान नहीं किया, उसने सी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर के समक्ष वर्तमान परिवाद याचिका परिवाद केस सं॰ 885 वर्ष 2005 दाखिल किया।

4. विचारण के उपरांत, न्यायिक दण्डाधिकारी ने पक्षों के तर्क पर विचार करके और मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार करके परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अभियुक्त प्रत्यर्थी सं॰ 2 की दोषसिद्धि की और द॰ प्र॰ सं॰ की धारा 357(3) के अधीन अनुबद्ध प्रावधान के निबंधनों में अभियुक्त को छह महीनो का कारावास भुगतने के साथ-साथ उसे परिवादी को 80,000/- का प्रतिकर का भुगतान करने का भी दण्ड दिया। सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक अपील अर्थात् दाण्डिक अपील सं॰ 110 वर्ष 2007 दाखिल करके अभियुक्त प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने उक्त दोषसिद्धि और दण्डादेश को चुनौती दी। अपीलीय न्यायालय ने मामले पर विचार करके उक्त अपील को अनुज्ञात कर दिया और एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 138 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी को आरोप से बरी कर दिया।

5. परिवादी/अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले श्री राजीव रंजन ने निवेदन किया है कि अभियुक्त प्रत्यर्थी सं॰ 2 को इस आधार पर बरी करने में अपीलीय न्यायालय ने पूर्णतया त्रुटि की है कि प्रत्यर्थी सं॰ 1 (जो इस दोषमुक्ति अपील में परिवादी अपीलार्थी है।) इस तथ्य को सिद्ध करने में पूर्णत: विफल रहा है कि प्रश्नाधीन चेक विधिक ऋण या दायिता के उन्मोचन में निर्गत किया गया

था और यह अभिनिर्धारित करने में भी त्रुटि किया कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के प्रावधान का मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में कोई प्रयोज्यता नहीं है।

6. श्री राजीव रंजन ने निवेदन किया है कि अपीलीय न्यायालय का आक्षेपित निर्णय समर्थित किया ही नहीं जा सकता क्योंकि निर्णय में त्रुटिपूर्ण रूप से इस आधार पर कार्यवाही की कि यह तथ्य सिद्ध करने का भार परिवादी पर था कि प्रश्नाधीन चेक विधिक ऋण या दायित्व के उन्मोचन में निर्गत किया गया था। यह भी निवेदन किया गया है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने एन० आई० अधिनियम की धारा 118 एवं 139 पर विचार नहीं किया है। इस संबंध में उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित तीन निर्णयों को निर्दिष्ट किया है:–

(i) (2001)8 एस० सी० सी० पृष्ठ-458

(ii) (2002)1 ईस्ट० क्रि० केसेज पृष्ठ 65 (एस० सी०)

(iii) (2001)6 एस० सी० सी० पृष्ठ–16.

7. सभी तीनों मामलों में, मैं पाती हूँ कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि एन० आई० अधिनियम की धारा 138 के अधीन परिवादों में न्यायालय को यह उपधारित करना होता है कि चेक ऋण या दायिता के लिए निर्गत किया गया है और यह सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर होता है कि यह ऋण या दायित्व के लिए निर्गत नहीं किया गया था।

8. प्रत्यर्थी सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता, श्री एस० के० मुरारी ने **2008 (1) क्राईम पृष्ठ–227 (एस० सी०) कृष्ण जनार्दन भट्ट बनाम दत्तात्रेय जी० हेग** में रिपोर्ट किया गया सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अत्यधिक भरोसा किया है, मेरे विचार में रिपोर्ट किए गए इस मामले का तथ्य और वर्तमान मामले के तथ्य अपने आधार पर एक दूसरे से पूर्णत: भिन्न है इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय का पूर्वोक्त निर्णय जो श्री मुरारी राय उद्धृत किया गया है वर्तमान मामले में प्रयोजन नहीं है।

9. यह उल्लिखित करना महत्वपूर्ण है कि आक्षेपित निर्णय के पैरा–6, पृष्ठ–5 पर एक दां० अ० सं० 110/2007 में पारित निर्णय में अपीलीय अधीनस्थ न्यायालय ने कथन किया है:–

> *"अभिलेख पर कोई समझौता उपलब्ध नहीं है जो परिवादी के तर्क को साबित कर सके"*

अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने यह करने से अपने को पूर्णत: गलत दिशा में ले गए हैं। इस तथ्य की दृष्टि से कि परिवादी ने 4.5.2006 को किए गए अपने शपथपत्र के पैरा–4 में कथन किया है:–

> *"यह कि मित्रों एवं संबंधियों के हस्तक्षेप पर दोनों पक्षों ने न्यायालय के बाहर मामले पर समझौता कर लिया और यह विनिश्चय किया गया कि परिवादी उस मामले में रूचि नहीं लेगा जो घाटशिला न्यायालय में लम्बित था।"*

10. घाटशिला मामले के C/1 केस सं० 28 वर्ष 1996 में दिनांक 27 नवम्बर, 2002 के अनुमंडल दण्डाधिकारी, घाटशिला द्वारा पारित निर्णय की सत्यापित प्रति प्रदर्श 'A' है। उक्त निर्णय (प्रदर्श A) से मैं पाती हूँ कि न तो परिवादी प्रदीप कुमार झा ने (जो वर्तमान मामले में परिवादी है) और न ही गवाहों यानि परिवादी सं० 1, 2, 3, 5 एवं 6 ने परिवादी की ओर से आरोप के उपरांत प्रति–परीक्षित नहीं किए गए हैं जो व्यवहारिक रूप से परिवादी के मामले का समर्थन करता है इस सीमा तक कि दोनों पक्षों ने न्यायालय के बाहर मामले का समझौता किया है और उनके बीच यह निर्णय किया गया है कि अभियुक्त कुछ राशि का भुगतान करेगा और परिवादी उक्त मामले में कार्यवाही नहीं करेगा। उक्त निर्णय के पैरा सं० 12 से मैं यह भी पाती हूँ कि इसी आधार पर ही उक्त मामले अपील

परिवाद सी०/आई० केस सं० 28 वर्ष 1996 टी० आर० सं० 420 वर्ष 2002 में अभियुक्त (वर्तमान प्रत्यर्थी सं० 2) को बरी किया गया था। उक्त निर्णय का पैरा 12 निम्नांकित रूप से है:–

> *"12. परिशीलन पर यह प्रतीत होता है कि C.W. 1, 2, 3, 5, 6 एवं 7 साक्ष्य के अनुसार अभिलेख पर सामग्री है परन्तु चूँकि उक्त C.W. को बचाव-पक्ष द्वारा प्रति-परीक्षित नहीं किया गया है और बचाव-पक्ष को उनके प्रति-परीक्षित करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिए, मेरा मत है कि इस मामले में ऐसे गवाहों का कोई साक्ष्यिक महत्व ही नहीं है जिसका कारण उनके प्रति-परीक्षा की अनुपस्थिति है। अभिलेख के परिशीलन से यह भी प्रतीत होता है कि इस मामले में परिवादी 14.8.2001 से आज तक पूर्णतः अनुपस्थित है और परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आदेश पत्रक के स्तम्भ में पृष्ठांकन किया है कि 5.8.02 को ''मुवक्किल के साथ कोई मुलाकात नहीं हुई'' और 18.11.02 को ''कोई अनुदेश नहीं'' जो दर्शाता है कि परिवादी को मामले में कार्यवाही करने में कोई रुचि नहीं थी और सामग्री के अनुसार यह भी प्रतीत होता है कि परिवादी ने अपने मामले को सभी युक्ति संगत संदेह से परे सिद्ध नहीं किया है।''*

इसलिए, निस्संदेह यह परिस्थिति स्पष्टत: सिद्ध करता है कि केवल इस तथ्य के कारण कि पक्षों के बीच न्यायालय के बाहर समझौता किया गया था परिवादी ने जानबूझकर उक्त मामले का अनुसरण नहीं किया और मामले का समापन बलदेव सिंह (वर्तमान प्रत्यर्थी सं० 2) की दोषमुक्ति से हुआ। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि ऋण या दायिता के उन्मोचन में प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा उक्त चेक निर्गत किया गया था और इस तथ्य की दृष्टि में इस मामले में प० लि० अधिनियम की धारा 138 भी आकर्षित होती है।

11. वर्तमान मामले में अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेखों से मैं पाती हूँ कि बचाव-पक्ष ने अपनी ओर से किसी गवाह की प्रति-परीक्षा नहीं की है। केवल अभियुक्त को दं० प्र० सं० की धारा 315 के निबंधनो में परीक्षित किया गया है। दं० प्र० सं० की धारा 315 के अपने बयान में अभियुक्त ने स्वीकार किया है कि चेक उसके खाते का है परन्तु उसने परिवादी को उक्त चेक नहीं दिया है और वह यह नहीं कह सकता कि परिवादी उक्त चेक को कहाँ से प्राप्त करने में सफल रहा। उन्होंने यह भी कहा है कि उसने उक्त चेक में राशि नहीं भरी है। मैं पाती हूँ कि अभियुक्त ने धारा 315 दं० प्र० सं० के अधीन अपने बयान में कहा है कि कारोबार संव्यवहार के अनुक्रम में उसके द्वारा हस्ताक्षरित दो चेक समेत कुछ कागजात उसके कार्यालय से गायब हो गए थे और पूर्वोक्त चेक उक्त दोनो लापता चेको में से एक है। नोटिस प्राप्त करने के उपरांत ही उसे इस तथ्य की जानकारी मिली और उसने अपने अधिवक्ता के माध्यम से परिवादी को अपना जवाब भेजा और डाक-प्राप्ति के साथ उस नोटिस की उत्तर की प्रति भी लापता है। उसने यह भी गवाह दी है कि उसके कार्यालय से पूर्वोक्त कागजात के और चेको के लापता होने का उसने कोई मामला या सन्हा दाखिल नहीं किया। एक विवेकपूर्ण व्यक्ति/कारोबारी आदमी का यह असामान्य आचरण है जिसका विश्वास नहीं किया जा सकता।

12. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर और इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि पर विचार करके मेरे विचार में अपीलीय न्यायालय का आक्षेपित निर्णय समर्थित किया ही नहीं जा सकता। तद्नुसार मैं दाण्डिक अपील सं० 110 वर्ष 2007 में अपर सत्र न्यायाधीश एफ० टी० सी० III, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 4.12.2007 के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करती हूँ और सी०/आई० 885 वर्ष 2005 में न्यायिक दण्डाधिकारी, प्रथम श्रेणी जमशेदपुर द्वारा पारित निर्णय में विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि को संपुष्ट करती हूँ।

13. दण्डादेश के संबंध में, मेरे विचार में इतने लम्बे समय के उपरांत अभियुक्त प्रत्यर्थी सं० 2 को दोबारा जेल भेजने के बजाय उस पर जुर्माने का अधिरोपण पर्याप्त होगा। इसलिए, मैं दण्डादेश को

उपान्तरित करती हूँ और कारावास के बदले उसे 1,50,000/- रुपए का भुगतान करने का निर्देश देती हूँ जो इस निर्णय की तिथि से तीन महीनो की एक अवधि के भीतर प्रत्यर्थी सं॰ 2 विचारण न्यायालय में जमा करेगा और जिससे अस्सी हजार रुपए (80,000/-) की एक राशि का भुगतान विचारण न्यायालय दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 357 (3) के अधीन प्रावधान के निबंधनो में परिवादी/अपीलार्थी को करेगा और व्यतिक्रम में विचारण न्यायालय द्वारा आरोपित दण्डादेश प्रभावी होगा।

तद्नुसार, पूर्वोक्त उपान्तरण के साथ अपील अनुज्ञात की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

सेन्ट्रल कोलफिल्ड्स लिमिटेड के प्रबंधन के संबंध में नियोजकगण

बनाम

पीठासीन अधिकारी एवं एक अन्य

LPA Nos. 614 & 615 of 2002. Decided on 6th November, 2009.

लेटर्स पेटेन्ट के खंड 10 के अधीन अपील के मामले में।

श्रम एवं औद्योगिक विधि–अनुकम्पा पर नियुक्ति–एन॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ का खंड 9.4.0— कर्मकारों को चिकित्सीय तौर पर अयोग्य पाया गया किन्तु वे रोजगार में बने रहे और अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुए–रोजगार की कोई क्षति नहीं हुई है–सेवा निवृत्ति के काफी अरसे बाद, कर्मकारों ने खंड 9.4.0 के आधार पर अपने आश्रितों के नियोजन हेतु औद्योगिक विवाद उठाया–खंड 9.4.0. का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैरा 6 से 10)

निर्णयज विधि.–W. P. (S) No. 3341/01; L.P.A. No. 161/02—Relied upon; CWJC Nos. 2862/94, 2863/94—Set aside.

अधिवक्तागण.–Mr. Ananda Sen, For the Appellant; Mr. M. K. Laik, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–चूँकि इन अपीलों में विधि और तथ्यों के सम्मिलित प्रश्न अंतर्ग्रस्त हैं, इन्हें साथ-साथ सुना गया है और एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जाता है।

2. ये अपीलें सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2862/94 और सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2863/94 में दिनांक 4 अक्टूबर, 2002 को पारित निर्णय, जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने इन रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया था और केन्द्रीय सरकार, औद्योगिक अधिकरण, धनबाद द्वारा पारित अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया था, के विरुद्ध की गयी है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:-

संबंधित कर्मकारगण श्री एम॰ प्रमाणिक और ए॰ बी॰ गोस्वामी प्रत्यर्थी-सेन्ट्रल कोलफिल्ड्स लि॰ के खान में वरीय ओवरमैन के तौर पर पहले से काम करते थे। कर्मकारगण की अधिवर्षिता की आयु 60 वर्ष थी और सेवा का पूर्ण कार्यकाल पूरा करने के बाद वे क्रमशः 5.11.1984 एवं 20.11.1984 को अधिवर्षित हुए। लेकिन, सेवानिवृत्ति के पूर्व, कर्मकारगण ने चिकित्सीय आधार पर सेवा से निवृत्ति हेतु आवेदन दिया और अपने आश्रितों को रोजगार दिए जाने की इच्छा प्रकट की। तद्नुसार, दिनांक 25.8.1984 को उनका चिकित्सीय परीक्षण किया गया और उनके मामलों को मुख्य कार्यालय को

विचार किए जाने हेतु प्रस्तुत कर दिया गया। इसके पहले कि कोई निर्णय लिया जाता, कर्मकारगण ने कम्पनी को निरन्तर सेवा प्रदान की और 5.11.1984 और 20.11.1984 को अधिवर्षित हुए। सेवानिवृत्ति के पश्चात कर्मकारगण ने औद्योगिक विवाद उठाया और समुचित सरकार ने इन विवादों कि ''क्या सेन्ट्रल कोलफिल्ड प्रबंधन द्वारा कर्मकारगण को चिकित्सा बोर्ड के माध्यम से दिनांक 25.8.84 को अयोग्य घोषित किए जाने पर तुरन्त निवृत्त नहीं करने और उन्हें सेवानिवृत्ति की तिथि तक सेवारत रखने और एन० सी० डब्ल्यू० ए०-III के पैरा 9.4.3 के अधीन उनके आश्रितों को रोजगार नहीं देने की कार्रवाई न्यायोचित है और यदि ऐसा नहीं है तो कर्मकारगण किन राहतों को पाने के हकदार है?'' इसके न्यायनिर्णयण हेतु अधिकरण को निर्दिष्ट कर दिया।

4. अधिकरण ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि कर्मकारगण को चिकित्सीय तौर पर अयोग्य पाये जाने के पश्चात् उनके आश्रितों को रोजगार दिए जाने की मांग बार-बार की गयी। कर्मकारगण ने अधिकरण के समक्ष प्रतिवाद किया कि उनके आश्रितों का साक्षात्कार किया गया था लेकिन प्रबंधन द्वारा इससे इन्कार किया गया था। अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि कर्मकारगण ने अपनी-अपनी चिकित्सीय परीक्षण के लिए वर्ष 1983 में प्रबंधन से प्रार्थना की थी लेकिन उनके मामले को वर्ष 1984 में निर्दिष्ट किया गया था और यह विलम्ब प्रबंधन द्वारा की गयी गलतियों के कारण हुआ था। अत: अधिकरण ने कर्मकारगण के पक्ष में निर्देश का निर्णय दिया और उनके आश्रितों को रोजगार देने का निर्देश दिया। अपीलार्थी-प्रबंधन ने उक्त अधिनिर्णय को सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 2862/94(R) और सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 2863/94(R) रिट याचिकाएँ दाखिल करके चुनौती दी और विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षों को सुनने के बाद दिनांक 4.10.2002 को निम्नलिखित आदेश पारित करके रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया:–

> *''पक्षों को सुना गया।*
>
> *पक्षों द्वारा स्वीकृत मामला यह है कि संबंधित कर्मकारगण ने चिकित्सीय परीक्षण के लिए वर्ष 1983 में आवेदन दिया था। प्रबंधन को उन्हें दिनांक 25.8.1984 को चिकित्सीय तौर पर अयोग्य घोषित करने में लगभग एक वर्ष लगा। प्रबंधन को इसके बाद तुरन्त कार्रवाई करनी चाहिए थी लेकिन ऐसा करने के बजाए उन्होंने कर्मकारगण को दिनांक 5.11.1984 और 20.11.1984 तक सेवा देते रहने की अनुमति दी और इस तरह नेशनल कोल वेज एग्रीमेन्ट-III (NCWA) के 9.4.3 के लाभ से उन्हें वंचित कर दिया। यदि प्रबंधन ने समय पर कार्रवाई की होती, तब दिनांक 25.8.1984 को ही संबंधित कर्मकारगण सेवामुक्त हो गए होते। इस प्रकार विलम्ब संबंधित कर्मकारगण द्वारा किया हुआ नहीं माना जा सकता था। इसके अतिरिक्त पक्षों द्वारा स्वीकृत मामला यह भी है कि संबंधित कर्मकारगण के पुत्रों को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था जैसा कि अधिनिर्णय के पैरा 12, 17 और 18 से प्रकट है।*
>
> *उपर्युक्त कारणों की दृष्टि में, यह न्यायालय अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती है। तद्नुसार रिट याचिकाओं को खारिज किया जाता है।*

5. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन और संबंधित कर्मकारगण के विद्वान अधिवक्ता श्री एम० के० लायक को सुना है।

6. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है प्रत्यर्थी-यूनियन के संबंधित कर्मकारगण अपीलार्थी-कम्पनी में सेवारत थे और उनकी अधिवर्षिता की तिथि 5.11.84 और 20.11.84 थी। इस तथ्य के कारण कि कर्मकारगण बीमारी से पीड़ित थे, उन्होंने अपने आश्रितों को रोजगार दिए जाने के आधार पर सेवानिवृत्त होने की अपनी इच्छा प्रकट की। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि दिनांक 25.8.84 को कर्मकारगण काम

के लिए चिकित्सीय तौर पर अयोग्य घोषित किए गए थे और उनके मामलों को उच्चतर प्राधिकारी को निर्णय हेतु निर्दिष्ट कर दिया गया था। लेकिन, कर्मकारगण को चिकित्सीय तौर पर अयोग्य घोषित किए जाने के बाद भी वे रोजगार में बने रहे और 60 वर्ष की आयु पूरी करने के पश्चात् क्रमश: 5.11.84 और 20.11.84 को सेवानिवृत्त हुए। सेवा से अधिवार्षिता के बहुत बाद उन्होंने अपने आश्रितों को रोजगार दिए जाने की मांग की और अंतत: नेशनल कोल वेज एग्रीमेन्ट के खंड 9.4.0 के प्रावधान के आधार पर रोजगार दिए जाने का दावा करते हुए औद्योगिक विवाद उठाने में सफल रहे। एन० सी० डब्ल्यू० ए० का खंड 9.4.0 निम्नलिखित है:–

"9.4.0: किसी मजदूर, जो स्थायी रूप से अयोग्य है, के एक आश्रित को उसके स्थान पर रोजगार।

(i) संबंधित मजदूर की निःशक्तता स्थायी प्रकृति की उपहति अथवा रोग से उत्पन्न होनी चाहिए जिसकी परिणति रोजगार की क्षति में हो और संबंधित कोल कम्पनी द्वारा इसे प्रमाणित किया जाना चाहिए।

(ii) सामान्य शारीरिक अशक्तता से उद्भूत निःशक्तता जिसे कोल कम्पनी द्वारा प्रमाणित किया गया है, की स्थिति में संबंधित कर्मचारी, यदि वह 58 वर्ष की आयु का हो, इस खंड के अधीन लाभ पाने का पात्र होगा। शब्द ''सामान्य शारीरिक अशक्तता' का अर्थ होगा किसी कर्मकार की किसी रोग अथवा अन्य स्वास्थ्य संबंधित कारण से हुई कमी जिसकी परिणति उसके द्वारा अपने कर्तव्यों का नियमित और/अथवा दक्षतापूर्वक निर्वहन करने में हुई निःशक्तता में होती है।

(iii) इस उद्देश्य के लिए आश्रित का अर्थ है पति/पत्नी जैसी भी स्थिति है, अविवाहित पुत्री, पुत्र और विधिपूर्वक लिया गया दत्तक पुत्र। यदि रोजगार हेतु ऐसा कोई निकट आश्रित उपलब्ध नहीं है तो भाई, विधवा पुत्री/विधवा बहु अथवा दामाद जो कर्मचारी के साथ रह रहा है और कर्मचारी की आमदनी पर पूरी तरह आश्रित है, पर भी विचार किया जा सकता है।

जहाँ तक महिला आश्रितों का संबंध है, उनका रोजगार खंड 9.5.0 के प्रावधानों से शासित होगा।

(iv) रोजगार हेतु विचाराधीन आश्रितों को रोजगार के लिए शारीरिक रूप से योग्य और उपयुक्त होना चाहिए और उनकी आयु 35 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए परन्तु पत्नी के रोजगार की आयु सीमा 45 वर्ष होगी जैसा खंड 9.5.0 में दिया गया है। जहाँ तक पति का संबंध है, रोजगार के लिए कोई आयुसीमा नहीं होगी।''

7. डब्ल्यू० पी० एस० सं० 3341/2001 मामले के समरूप तथ्यों में इस न्यायालय की पीठ द्वारा एन० सी० डब्ल्यू० ए० के उपर्युक्त खंड पर विचार किया गया था और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

''5. उपर्युक्त प्रावधानों के परिशीलन से यह प्रकट है कि उपर्युक्त खंड का लाभ पाने के लिए शर्तों में से एक शर्त यह है कि कर्मचारी की आयु 58 वर्ष से कम होनी चाहिए और दुर्घटना की परिणति रोजगार की क्षति में होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि 58 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व किसी कर्मचारी के साथ दुर्घटना होती है और उपहतियाँ इस प्रकार की है कि वह रोजगार में बने रहने के लिए सर्वथा अयोग्य हो जाता है तब किसी एक आश्रित को रोजगार दिया जाना चाहिए ताकि घायल व्यक्ति को हुई रोजगार की क्षति की क्षतिपूर्ति की जा सके। इस खंड का लक्ष्य और उद्देश्य यह है कि कर्मचारी रोजगार की क्षति के पश्चात् निःशक्तता के कारण निराश्रित न हो जाए। सड़क पर न आ जाये और उसके आश्रितों को रोजगार देकर उसके जीवन को जीने योग्य बनाया जा सके।

6. यहाँ वर्तमान मामले में उक्त प्रावधान को लागू करने पर मैं पाता हूँ कि यद्यपि याची के साथ दिनांक 26.10.1996 को एक दुर्घटना हुई, उसे इस कारण रोजगार की क्षति नहीं हुई क्योंकि उसे सेवानिवृत्ति की आयु तक मुआवजे के अलावा पूरा पारिश्रमिक एवं अन्य लाभ का भुगतान किया जा रहा था। इसके अतिरिक्त, याची ने पहली बार दिनांक 7.7.2001 को अभ्यावेदन दिया था जब उसे दिनांक 24.5.2000 को यह सूचित करते हुए कि वह दिनांक 15.10.2001 को 60 वर्ष अर्थात् अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेगा, नोटिस दिया गया था। अपनी निःशक्तता के बावजूद वह अधिवर्षिता तक रोजगार के लाभों को प्राप्त करता रहा मानो उसे कोई उपहति नहीं हुई हो। अतः मेरे विचार में, उन कर्मचारियों, जो उपहति के बावजूद अपनी अधिवर्षिता की तिथि तक रोजगार का पारिश्रमिक एवं अन्य लाभ निरन्तर प्राप्त कर रहे थे, को खंड 9.4.0 का प्रावधान उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है। इसलिए यहाँ इसमें उपर उद्धृत नेशनल कोलवेज एग्रीमेन्ट के प्रावधानों द्वारा याची का मामला आच्छादित नहीं होता है।''

8. एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 161 वर्ष 2002 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा समरुप दृष्टिकोण अपनाया गया है। माननीय न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया:-

''अपीलार्थी का अपने पुत्र के रोजगार के लिए किया गया दावा NCWA के खंड 9.4.0 पर आधारित था। इस खंड का पठन निम्नलिखित है:-

''किसी मजदूर, जो स्थायी रूप से अशक्त है, के स्थान पर उसके एक आश्रित को रोजगार।

(1) संबंधित मजदूर की निःशक्तता स्थायी प्रकृति की उपहति अथवा रोग से उद्भूत होनी चाहिए जिसकी परिणति रोजगार की क्षति में हो और संबंधित कोल कम्पनी द्वारा इसे प्रमाणित किया जाना चाहिए.........''

यह प्रत्यर्थी का स्वीकृत मामला है कि यद्यपि नियोजन के दौरान उसके साथ दुर्घटना हुई और उसे स्थायी उपहतियाँ हुई लेकिन उसका मामला यह नहीं है कि इसकी परिणति रोजगार की क्षति में हुई। वस्तुतः स्वीकृत मामला यह है कि वह अधिवर्षिता की तिथि तक सेवा में बना रहा। निश्चय ही, अवधि के दौरान अधिवार्षिता की तिथि से पहले तक वह स्थायी रूप से निःशक्त बना रहा, वह शय्याग्रस्त था और अपनी उपहतियों से संबंधित विशेष अवकाश पर था। यह तथ्य बना रहता है कि रोजगार की क्षति नहीं हुई थी और इस कारण अपने पुत्र के रोजगार के लिए प्रत्यर्थी का कोई दावा नहीं था। इस प्रकार विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका अनुज्ञात कर गलती की थी।

यह अपील अनुज्ञात किया जाता है और विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय अपास्त किया जाता है। खर्चे से संबंधित कोई आदेश नहीं है।''

9. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है संबंधित कर्मकारगण अपनी अधिवर्षिता की तिथि तक सेवा में बने रहे और रोजगार की कोई क्षति नहीं हुई है। सेवानिवृत्ति के बहुत बाद कर्मकारगण ने खंड 9.4.0 के आधार पर अपने आश्रितों को रोजगार दिलाने के लिए औद्योगिक विवाद उठाया। हमारे दृढ़ विचार में, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खंड 9.4.0 का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता है। विद्वान एकल न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में विधि सम्मत नहीं है कि चूँकि उनको आवेदनों पर विचार करने में विलम्ब हुआ है आश्रित रोजगार पाने के हकदार हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को विधि में संपुष्ट नहीं किया जा सकता है।

10. उपर्युक्त कारणों से, ये अपीलें अनुज्ञात की जाती है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश और साथ-साथ अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय अपास्त किया जाता है।

जया रॉय, न्यायमूर्ति.—मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

भूपेन्द्र सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

Writ Petition (S) No. 6621 of 2005. Decided on 6th November, 2009.

(क) सेवा विधि—सजा—वेतनवृद्धियों का रोका जाना और अपने सेवा काल के दौरान याची द्वारा अभिकथित तौर पर खो दिए गए कारतूसों के मूल्य की वसूली के लिए आदेश—नियत दिन (15.11.2000) के पूर्व याची झारखण्ड राज्य में पदस्थापित था—तत्कालीन बिहार राज्य के विभाजन की तिथि से एक वर्ष पश्चात् बिहार राज्य में याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी—बिहार राज्य के प्राधिकारियों द्वारा विभागीय कार्यवाही की शुरूआत पूर्णतः अधिकारिता से परे और गैरकानूनी है—वाद हेतुक के प्रोदभवन का विचार किए बिना, उत्तराधिकारी राज्य के सिर्फ सक्षम प्राधिकारी को ही आदेश पारित करने की शक्ति और अधिकारिता है—आक्षेपित आदेश अपास्त—याचिका अनुज्ञात। (पैरा 9 से 11)

(ख) बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000—धारा 74—उन व्यक्तियों को, जो दिनांक 15.11.2000 को झारखण्ड राज्य में पद धारण किए हुए थे, झारखण्ड सरकार द्वारा नियुक्त माना जाएगा—अनुशासनिक कार्रवाई करने हेतु सक्षम प्राधिकार झारखण्ड राज्य, न कि बिहार राज्य, माना जाएगा। (पैरा 9)

निर्णयज विधि.—2002 (1) JLJR 697—Followed.

अधिवक्तागण.—Dr. S. N. Pathak, For the Petitioner; JC to AG, For the State of Jharkhand; Shri S.P. Roy, For the State of Bihar.

आदेश

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.—पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट याचिका में दिनांक 1.8.2005 (परिशिष्ट-9) को प्रत्यर्थी सं॰ 3 अर्थात् गृह सचिव, झारखण्ड राज्य द्वारा पारित आदेश को और दिनांक 29.8.2003 को प्रत्यर्थी सं॰ 4 अर्थात् पुलिस महानिदेशक, झारखण्ड द्वारा जारी आदेश को भी, जिसके द्वारा और जिसके अंतर्गत उसके वेतनमान में वेतनवृद्धि को रोककर और याची द्वारा अपने सेवाकाल के दौरान अभिकथित तौर पर खो दिए गए कारतूसों के कीमत की वसूली के लिए आदेश देकर याची को सजा दी गयी थी, चुनौती दी गयी है।

आक्षेपित आदेशों के अभिखंडन हेतु समुचित रिट जारी करने की प्रार्थना करते हुए याची ने परमादेश की प्रकृति का एक रिट जारी करने की भी प्रार्थना की है जो संबंधित प्रत्यर्थियों को उन आदेशों, जिन्हें प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा प्रारंभ की गयी अनुशासनिक कार्यवाही के आधार पर पारित किया गया है, को इस आधार पर प्रभावशील नहीं बनाने के लिए समादेशित करें क्योंकि ऐसे आदेश प्रत्यर्थी

सं॰ 3 द्वारा स्वतंत्र विवेक का प्रयोग किए बिना और याची को कारण बताओ नोटिस तामील किए बिना और सुनवाई का वैध अवसर दिए बिना पारित किया गया था।

3. याची बिहार राज्य के अधीन वर्ष 1994-95 के दौरान सर्जेन्ट-मेजर के पद पर पदस्थापित था। लेकिन वह दिनांक 31.8.2003 को झारखण्ड राज्य में सेवारत रहते हुए अधिवर्षित हो गया।

जबकि वह झारखण्ड राज्य के जिले में पदस्थापित था, तो उस समय कारतूसों की चोरी और दुर्विनियोग के आरोप के संबंध में, जब वह बिहार राज्य के नौगछिया जिले में वर्ष 1994-95 में पदस्थापित था, पुलिस उप-महानिरीक्षक, मुख्यालय, बिहार, पटना के आदेशों के अधीन दिनांक 29.8.2001 को उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी।

विभागीय कार्यवाही संबंधित प्राधिकारियों द्वारा भारत सरकार, कार्मिक, जनशिकायत एवं पेंशन मंत्रालय के, कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग द्वारा दिनांक 22 फरवरी, 2001 को जारी परिपत्र पत्र सं॰ 28/10/2000 एस॰ आर॰ (एस॰) में अंतर्निहित निर्देशों के आधार पर ये घोषणा करते हुए कि उन क्षेत्रों, जो नियत दिन के तुरन्त पहले विद्यमान बिहार राज्य का अंग थे, से संबंधित अवचार के मामलों में जाँच बिहार राज्य द्वारा संचालित की जा सकती है और कागजातों को झारखण्ड राज्य में अनुशासनिक प्राधिकारी को अंतिम निर्णय लेने के लिए अंतरित करना होगा'' प्रारंभ की गयी थी।

विभागीय कार्यवाही में दर्ज निष्कर्षों ने अभिपुष्ट किया कि याची के विरुद्ध आरोप सिद्ध कर दिए गए थे। चूँकि याची प्रासंगिक समय पर झारखण्ड राज्य में चाईबासा जिले में पदस्थापित था, विभागीय कार्यवाही से संबंधित समस्त प्रासंगिक दस्तावेजों को जाँच रिपोर्ट सहित याची के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई करने के लिए झारखण्ड राज्य में याची के संबंधित अनुशासनिक प्राधिकारी को अग्रसर कर दिया गया था।

जाँच रिपोर्ट के निष्कर्षों सहित दस्तावेजों पर विचार करने के बाद झारखण्ड राज्य के प्राधिकारियों द्वारा याची के विरुद्ध आक्षेपित आदेशों को पारित कर दिया गया था।

4. यहाँ यह उल्लिखित करना आवश्यक है कि इन्हीं आक्षेपित आदेशों के विरुद्ध याची ने प्रारंभ में डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 4939 वर्ष 2003 के माध्यम से रिट याचिका दाखिल की थी जिसे दिनांक 5.2.2004 के आदेश द्वारा निपटाया गया था और याची को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष दो महीने के भीतर अपील दाखिल करने की स्वतंत्रता के साथ अपनी रिट याचिका वापस लेने की इजाजत दी गयी थी और अपीलीय प्राधिकारी को जितना जल्दी संभव हो अपील को निपटाने का निर्देश दिया गया था। याची ने अपनी अपील दाखिल की थी जिसे अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 1.8.2005 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

5. आक्षेपित आदेशों का विरोध करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता डॉ॰ एस॰ एन॰ पाठक ने निम्नलिखित आधार पेश किया:–

I. कि, नियत दिन अर्थात् 15.11.2000 को जब झारखण्ड राज्य तत्कालीन बिहार राज्य से पृथक किया गया था, याची झारखण्ड राज्य के चाईबासा जिले में पदस्थापित था।

II. कि, याची पर दिनांक 31.10.2001 को अर्थात् उस समय जब वह झारखण्ड राज्य के चाईबासा जिले में पदस्थापित था, आरोप तामील किया गया था।

III. कि, यदि कोई विभागीय कार्यवाही की भी जानी थी, ऐसी कार्यवाही केन्द्रीय सरकार परिपत्र (प्रतिशपथ पत्र का परिशिष्ट-A) में अंतर्निहित निर्देश के मुताबिक सिर्फ उसके अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा झारखण्ड राज्य में प्रारंभ की जा सकती थी न कि बिहार राज्य के प्राधिकारियों द्वारा।

IV. कि, सजा का आक्षेपित आदेश पूर्णतः बिना अधिकारिता के है क्योंकि ऐसा सजा का आदेश बिहार राज्य के प्राधिकारियों जिन्हें राज्य के विभाजन के पश्चात्, जब याची झारखण्ड राज्य में पदस्थापित था, ऐसी कार्यवाही प्रारंभ करने की कोई अधिकारिता थी ही नहीं द्वारा संचालित और निष्कर्षित विभागीय कार्यवाही के आधार पर पारित की गयी है।

V. कि, यद्यपि विभागीय कार्यवाही दिनांक 29.12.2001 को पूरी कर दी गयी थी, लेकिन इस पर लगभग दो वर्षों तक कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था और याची की सेवा से अधिवर्षिता के सिर्फ दो दिन पहले आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

VI. कि, वेतनवृद्धियाँ रोकने की सजा बड़ी सजा की कोटि में आती है और ऐसी सजा देने से पहले संबंधित प्राधिकारी का कर्तव्य था कि वह कारण बताओ नोटिस जाँच रिपोर्ट की प्रति के साथ-साथ द्वितीय कारण बताओ नोटिस तामील करता ताकि याची को यह स्पष्टीकरण देने का अवसर मिले कि क्यों उसके विरुद्ध सजा अधिरोपित नहीं की जाए। याची को ऐसा अवसर नहीं दिया गया था और इस कारण आक्षेपित आदेश अनिवार्यतः गैरकानूनी है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में हैं।

VII. कि, याची के सेवानिवृत्ति लाभों से खो दिए गए कारतूसों की कीमत की वसूली के आक्षेपित आदेशों को पेंशन नियमावली के नियम 139(C) के प्रावधानों के अधीन अधिकथित प्रक्रिया का पालन किये बिना गैरकानूनी और मनमाने तरीके से पारित किया गया है।

VIII. कि, जाँच रिपोर्ट के निष्कर्ष अनुचित है क्योंकि जाँच अधिकारी इन स्वीकृत तथ्यों पर विचार करने में विफल रहा है कि याची आयुधागार का प्रभारी नहीं था। बल्कि, स्वीकृत तौर पर, प्रासंगिक समय पर हवलदार आयुधागार का प्रभारी था और सिर्फ इसलिए कि प्रासंगिक समय पर याची जिले में सार्जेन्ट-मेजर के तौर पर पदस्थापित था, उसके विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष आरोप नहीं होने पर भी उस पर अनेक जिम्मेदारियों का बोझ था।

IX. कि, प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट-A में अंतर्निहित तात्पर्यित निर्देशों को नियम का सिर्फ स्पष्टीकरण होने के कारण, याची के ऊपर बाध्यता नहीं होगी और न ही उसके विरुद्ध इनका अवलम्ब लिया जा सकता है और ऐसा कोई भी स्पष्टीकरण इस न्यायालय द्वारा बिहार पुनर्गठन अधिनियम की धारा 72 और 74 की व्याख्या के आधार पर, बिहार राज्य बनाम अरविन्द विजय ब्लीअंग एवं एक अन्य [2002 (1) जे० एल० जे० आर० 697] मामले में पारित निर्णय में की गयी नियम की व्याख्या से बढ़ कर नहीं हो सकता है।

6. प्रत्यर्थियों की ओर से प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है। आक्षेपित आदेशों को न्यायोचित ठहराते हुए प्रत्यर्थियों का दृष्टिकोण यह है कि बिहार राज्य के संबंधित प्राधिकारियों द्वारा याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही सही प्रारंभ की गयी थी भले ही याची प्रासंगिक समय पर झारखण्ड राज्य

के चाईबासा जिले में पदस्थापित था। केन्द्रीय सरकार परिपत्र (प्रति शपथपत्र का परिशिष्ट-A) में अंतर्निहित मार्गदर्शक सिद्धांतों/निर्देशों के मुताबिक कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी भले ही याची उस समय पर झारखण्ड राज्य के चाईबासा जिले में पदस्थापित था। यह स्पष्ट करना चाहा गया है कि कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए वाद हेतुक बिहार राज्य में याची की सेवाकाल के दौरान बिहार राज्य के नौगछिया जिले में प्रोद्भूत हुआ था और इस कारण विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए और विरचित आरोप पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए बिहार राज्य में संबंधित प्राधिकारियों की समर्थता के अंतर्गत था।

प्रत्यर्थी का अगला दृष्टिकोण यह है कि याची के विरुद्ध विभागीय जाँच के संचालन में अनौचित्यता नहीं होने के कारण और पुन: याची के विभागीय कार्यवाही में भाग लेने और सुनवाई का अवसर उपभोग करने के कारण वह जाँच रिपोर्ट में अंतर्निहित निष्कर्षों का सिर्फ इस आधार पर कि तत्कालीन बिहार राज्य के विभाजन के पश्चात उसकी सेवाओं को झारखण्ड राज्य को अंतरित कर दिया गया था, पर विरोध नहीं कर सकता है। झारखण्ड राज्य के संबंधित प्राधिकारियों को जाँच रिपोर्ट में दिए गए निष्कर्षों के आधार पर याची के विरुद्ध समुचित अनुशासनिक कार्रवाई करने की वैध समर्थता है।

7. परस्पर विरोधी निवेदनों से प्रकट स्वीकृत तथ्य निम्नलिखित है:-

(i) जब याची झारखण्ड राज्य के चाईबासा जिले में पदस्थापित था, बिहार राज्य में संबंधित प्राधिकारियों द्वारा उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी।

(ii) झारखण्ड राज्य में याची के अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा विभागीय जाँच में दर्ज निष्कर्षों के आधार पर आक्षेपित आदेशों को पारित किया गया था।

(iii) अधिरोपित सजा अर्थात वेतन में वृद्धि का रोका जाना और याची के सेवानिवृत्ति फायदे से पैसा वसूला जाना स्वीकृत तौर पर बड़ी सजा की कोटि में आता है।

8. बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 (केन्द्रीय अधिनियम सं० 30 वर्ष 2000) नवम्बर 15, 2000 जिस तिथि को 'नियत दिन'' के तौर पर निर्दिष्ट किया गया है, को अधिनियमित और प्रवर्तित किया गया था।

9. बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 72(2) के अधीन किसी उत्तराधिकारी राज्य, जिसकी सेवा के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अंतत: आबंटित किया जाएगा सहित प्रभावकारी तिथि जिससे ऐसे आबंटनों को प्रभावशील माना जाएगा, को विनिश्चित करने वाला प्राधिकार केन्द्रीय सरकार है। केन्द्रीय सरकार द्वारा झारखण्ड राज्य को सेवा देने हेतु किसी व्यक्ति का अनंतिम रूप से आबंटित करने के लिए धारा 72 की उपधारा (1) के परंतुक के अधीन एक वर्ष की अवधि विहित की गयी है।

पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 74 एक धारणा उपबंध है जो उस व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है जो नवम्बर 15, 2000 से पहले विद्यमान बिहार राज्य से सम्बन्धित किसी पद के कर्तव्यों को धारण किए था अथवा निर्वहन कर रहा था और घोषित करता है कि नवम्बर 15, 2000 को और से ऐसा व्यक्ति उस उत्तराधिकारी राज्य, जिसके अंतर्गत वह क्षेत्र आता है, में उसी पद को धारित करता रहेगा और नवम्बर 15, 2000 को और से उस उत्तराधिकारी राज्य, जिसके अंतर्गत वह पद आता है, में सरकार अथवा समुचित प्राधिकारी द्वारा उस पद या कार्यालय पर सम्यक रूप से नियुक्त समझा जाएगा। पुनर्गठन

अधिनियम की धारा 74 के प्रावधान इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि उस व्यक्ति, जो नवम्बर 15, 2000 को झारखण्ड राज्य में पद धारित कर रहा था, को झारखण्ड राज्य द्वारा अथवा झारखण्ड राज्य के समुचित प्राधिकारी द्वारा नियुक्त माना जाएगा।

नियत दिन अर्थात् नवम्बर, 15, 2000 के पश्चात, यदि किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध कोई अनुशासनिक कार्यवाही की जानी है, तब, चूँकि ऐसा व्यक्ति उत्तराधिकारी राज्य के अधीन पद अथवा कार्यालय निरंतर धारित करता और पद पर नियुक्त हुआ माना जाएगा, सिर्फ उत्तराधिकारी राज्य में सरकारी सेवक का अनुशासनिक प्राधिकारी ही अनुशासनिक कार्रवाई करने हेतु सक्षम होगा। इस प्रकार, झारखण्ड राज्य के क्षेत्रों में पद अथवा कार्यालय धारित किए सरकारी सेवकों के लिए, झारखण्ड राज्य का उनका नियुक्ति प्राधिकारी होने के कारण, अनुशासनिक कार्रवाई करने का सक्षम प्राधिकारी झारखण्ड राज्य होगा, न कि बिहार राज्य। यह विवाद्यक **बिहार राज्य बनाम अरविन्द विजय विलन्ग (ऊपर)** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय में सुनिश्चित किया गया है।

समरूप तथ्यों पर आधारित समरुप विवाद्यक पर विचार करते हुए, **बिहार राज्य बनाम अरविन्द विजय बिलन्ग (ऊपर)** मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:-

"11. इस प्रकार, जब एक बार यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि नियत दिन पर और से विद्यमान राज्य का उत्तराधिकारी राज्य किसी सरकारी सेवक के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी होगा और उस दिन पर और से सक्षम प्राधिकारी को ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध किसी भी संबंध में कोई भी आदेश (ऐसे पद में उसके बने रहने को प्रभावित करते आदेश सहित) पारित करने की समस्त शक्ति होगी, विद्यमान बिहार राज्य को अनुशासनिक कार्यवाही प्रारंभ करने अथवा ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध निलम्बन आदेश जारी करने की स्वीकृति देना अधिनियम की धारा 74 और उसके परंतुक में अंतर्निहित अभिव्यक्त आदेश का उल्लंघन होगा। नियत दिन पर और से ''विद्यमान बिहार राज्य,'' जैसा धारा 2(e) में परिभाषित किया गया है, अस्तित्वहीन हो गया था। नियत दिन पर और से विद्यमान बिहार राज्य का उत्तराधिकारी राज्य अस्तित्व में आया। ये उत्तराधिकारी राज्य बिहार राज्य और झारखण्ड राज्य हैं। अतः धारा 74 के पठन द्वारा यह प्रकट होता है कि किसी सरकारी सेवक के संबंध में नियुक्ति प्राधिकार दो उत्तराधिकारी राज्यों में से एक होगा, बिहार राज्य अथवा झारखण्ड राज्य और यह निश्चित करने हेतु कि इन दो उत्तराधिकारी राज्यों में से कौन नियुक्ति प्राधिकार है, परीक्षा बहुत, बहुत सरल है। यदि कर्मचारी नियत दिन पर उत्तराधिकारी बिहार राज्य के हिस्से में आए क्षेत्र में सेवारत है अथवा पदस्थापित है, बिहार राज्य नियुक्ति प्राधिकार होगा। यदि कर्मचारी नियत दिन पर उत्तराधिकारी झारखण्ड राज्य के हिस्से में आए क्षेत्र में सेवारत है अथवा पदस्थापित है, झारखण्ड राज्य नियुक्ति प्राधिकार होगा। केवल उत्तराधिकारी राज्य में सक्षम प्राधिकारी को ही कार्रवाई प्रारंभ करने और आदेशों को पारित करने की शक्ति और अधिकारिता है। ऐसा नियत दिन के पूर्व समय के किसी भी बिन्दु पर अथवा उस स्थान जहाँ ऐसा वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है से असम्बद्ध है। इसे और भी स्पष्ट करते हुए हम कह सकते है कि यदि नियत दिन पर, कोई व्यक्ति ऐसे स्थान पर, जो झारखण्ड राज्य के क्षेत्र में है, सेवारत है और पदस्थापित है और यदि ऐसे व्यक्ति के संबंध में वाद हेतुक, यों कहे वर्ष 1998 अथवा वर्ष 1999 में, ऐसे स्थान पर, जो नियत दिन पर

बिहार राज्य का हिस्सा निर्मित करता है, उत्पन्न हुआ है, केवल झारखण्ड राज्य ही सक्षम प्राधिकार होगा और केवल ऐसा सक्षम प्राधिकार ही ऐसे व्यक्ति के संबंध में निर्णय पारित कर सकता है। ऐसे व्यक्ति के संबंध में बिहार राज्य को कार्रवाई प्रारंभ करने अथवा आदेश पारित करने की कोई अधिकारिता नहीं होगी।''

10. अरविन्द विजय बिलन्ग (ऊपर) मामले में निर्णीत निर्णयाधार पर विश्वास प्रकट करते हुए और वर्तमान मामले के तथ्यों पर इसे लागू करते हुए और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि तत्कालीन बिहार राज्य के विभाजन की तिथि से एक वर्ष पश्चात बिहार राज्य के संबंधित प्राधिकारियों द्वारा याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी और यद्यपि नियत दिन अर्थात् 15.11.2000 के पहले याची झारखण्ड राज्य के चाईबासा जिले में पदस्थापित था, मुझे यह अभिनिर्धारित करते हुए कोई हिचकिचाहट नहीं है कि बिहार राज्य के संबंधित प्राधिकारियों द्वारा प्रारंभ की गयी विभागीय कार्यवाही पूर्णत: अधिकारिता से परे और गैरकानूनी है।

11. प्रत्यर्थियों ने प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A में उपाबद्ध केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी तात्पर्यित स्पष्टीकरण के आधार पर बिहार राज्य द्वारा प्रारंभ की गयी विभागीय जाँच को न्यायोचित बताना चाहा है। केन्द्रीय सरकार का परिपत्र यह स्पष्ट करना चाहता है कि ऐसे मामले में जहाँ नियत दिन से पहले कोई विभागीय जाँच प्रारंभ नहीं किया गया है, सामान्यत: झारखण्ड राज्य विभागीय जाँच करने और इस पर अंतिम निर्णय लेने हेतु सक्षम होगा। लेकिन उन क्षेत्रों जो नियत दिन के तुरंत पहले विद्यमान बिहार का हिस्सा थे, से संबंधित अवचार के मामलों में बिहार राज्य द्वारा जाँच संचालित किया जा सकता है और अंतिम निर्णय के लिए झारखण्ड राज्य में अनुशासनिक प्राधिकारी को कागजात अंतरित करना होगा। स्पष्टीकरण यह भी स्पष्ट करना चाहता है कि उक्त लाइन पर झारखण्ड राज्य के मामलों के संबंध में सेवा देने हेतु अनंतिम रूप से आदेशित अधिकारियों से संबंधित सतर्कता जाँच, आरोप आदि के संबंध में कार्रवाई की जा सकती है। उक्त तात्पर्यित स्पष्टीकरण देखने से ही प्रतीत होते हैं कि ये **अरविन्द विजय बिलन्ग (ऊपर)** मामले में खंडपीठ के निर्णय द्वारा निर्णीत निर्णयाधार के विरुद्ध हैं जिसमें यह उद्घोषित किया गया है कि उत्तराधिकारी राज्य में सक्षम प्राधिकारी को ही, नियत दिन के पहले समय के किसी भी बिन्दु पर अथवा उस स्थान जहाँ वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है पर विचार किए बिना, आदेशों को पारित करने की शक्ति और अधिकारिता है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सही इंगित किया गया है कि कानून की व्याख्या, जैसा न्यायालय के निर्णय द्वारा घोषित किया गया है, को ऐसे स्पष्टीकरण, जिन पर प्रत्यर्थियों द्वारा विश्वास प्रकट किया गया है, द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। झारखण्ड राज्य में संबंधित प्राधिकारी ही उसके नियुक्ति और अनुशासनिक प्राधिकारी माने जाएंगे।

अत: यह अनुसरणित होता है कि ऐसी जाँच, जिसे बिना अधिकारिता के संचालित किया गया था, के रिपोर्ट के आधार पर कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। सजा के आक्षेपित आदेशों, जो याची के विरुद्ध पारित किए गए है, को मान्य नहीं ठहराया जा सकता है और इन्हें एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

उक्त चर्चा के आलोक में, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है, यद्यपि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में व्ययों के आदेश के बिना।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

सितारा खातून एवं अन्य

बनाम

मेसर्स नीलवटी ट्रान्सपोर्ट एवं एक अन्य

M.A. No. 224 of 2002. Decided on 18th November, 2009.

अभिधान (एम॰ भी॰) वाद सं॰ 4/2000 में मोटर यान दुर्घटना दावा अधिकरण, धनबाद द्वारा दिनांक 2.8.2002 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध।

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 एवं 173—आकस्मिक मृत्यु–अपराधकारी वाहन के स्वामी को 1,70,000/- रुपयों के मुआवजा का भुगतान करने की जिम्मेवारी का बोझ–अपराधकारी ट्रक के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेन्स का न होना–वाहन के स्वामी द्वारा दाखिल की गयी अपील और प्रति-परीक्षण की खारिजी–सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल अपील भी खारिज–इस कारण बीमा कम्पनी के मुकाबले मालिक की जिम्मेवारी से संबंधित प्रश्न पर न्यायालय को विचार नहीं करना चाहिए–मुआवजे की रकम 3,00,000/- रुपयों, तक बढ़ा दी गयी। (पैरा 6 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Shekhar Prasad Sinha, For the Appellants; M/s Alok Lal, K. P. Choudhary, For the Respondents.

एम॰ बाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–यह अपील दावेदारगण–अपीलार्थीगण द्वारा टाईटल (एम॰ भी॰) सूट सं॰ 4/2000 में दिनांक 2.8.2002 को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, धनबाद द्वारा दिए गए उस निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा उन्होंने 1,70,000/- रुपये मुआवजे की रकम का अधिनिर्णय दिया था और वाहन के स्वामी को मुआवजे की उक्त रकम का भुगतान करने का निर्देश दिया था।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:-

दावेदारों का मामला यह है कि ट्रैकर, जिसके लिए मृतक चालक के तौर पर सेवारत था, सड़क के बगल में खड़ा किया हुआ था। इसी बीच रजिस्ट्रेशन सं॰ BR 16 G 5857 धारित किये तेजी से आते एक ट्रक ने ट्रैकर को धक्का मारा जिसके परिणामस्वरुप ट्रैकर का चालक अर्थात् मोहम्मद आजाद उपहति के चलते मर गया। प्रत्यर्थी सं॰ 1 ट्रक का स्वामी था जबकि प्रत्यर्थी सं॰ 2 ट्रक का बीमाकर्ता था। पक्षों को सुनने और साक्ष्य पर विचार करने के बाद अधिकरण इस निष्कर्ष पर आया कि मृतक मोहम्मद आजाद ट्रैकर का खलासी था और ट्रक के चालक के पास भारी मोटर वाहन को चलाने का वैध ड्राइविंग लाइसेन्स नहीं था। परिणामस्वरुप, अधिकरण ने वाहन के स्वामी पर जिम्मेवारी डाल दिया।

3. वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी–स्वामी द्वारा एक प्रत्याक्षेप दाखिल किया गया था। जिसे प्रत्याक्षेप सं॰ 4/2007 के तौर पर दर्ज किया गया था। प्रत्याक्षेप सुनने के बाद इस न्यायालय की पीठ ने इसे दिनांक 20 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया। दिनांक 20 अप्रैल, 2007 का उक्त आदेश निम्नलिखित है:-

> *"सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 22 के अधीन तात्पर्यित यह प्रत्याक्षेप वर्तमान एम० ए० सं० 224 वर्ष 2002 में प्रत्यर्थी स्वामी द्वारा दाखिल किया गया है।*
>
> *विविध अपील सं० 224 वर्ष 2002 मुआवजे में वृद्धि हेतु दावेदार द्वारा दाखिल किया गया है।*

अधिकरण द्वारा पारित निर्णय से प्रकट होता है कि मृतक ट्रेकर का खलासी था जब ट्रैकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा रहा था तो एक ट्रक द्वारा इसे धक्का मारा गया था। ट्रक के स्वामी और बीमाकर्ता जो प्रत्यर्थीगण है, के विरुद्ध दावा मामला दाखिल किया गया था जो प्रत्यर्थीगण हैं। अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि ट्रक के ड्राइवर की घोर उपेक्षा के कारण दुर्घटना हुई। अधिकरण ने आगे अभिनिर्धारण किया कि प्रासंगिक समय पर जब दुर्घटना हुई ट्रक का ड्राइवर हल्के मोटर वाहनों को चलाने का लाईसेन्स धारित किए हुए था। इन निष्कर्षों के आधार पर अधिकरण ने मुआवजे का अधिनिर्णय दिया और ट्रक के मालिक पर जिम्मेदारी डाल दिया इस कारण कि यह मोटर यान अधिनियम के प्रावधानों और साथ-साथ बीमा पॉलिसी का उल्लंघन में था और इस प्रकार बीमा कम्पनी की कोई जिम्मेवारी नहीं है।

यद्यपि दिनांक 16.8.2002 को निर्णय एवं अधिनिर्णय पारित किया गया था, प्रत्यर्थी-स्वामी ने कोई अपील दाखिल नहीं की। आक्षेपित आदेश द्वारा उस पर नियत जिम्मेवारी के विरुद्ध दावेदारों ने दिनांक 4.10.2002 को सिर्फ विविध अपील सं० 224 वर्ष 2002 दाखिल किया। इस अपील का नोटिस जारी किया गया और दिनांक 13.7.2004 को प्रत्यर्थी-स्वामी पर इसे तामील किया गया लेकिन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 4 नियम 22 के अधीन प्रदत्त 30 दिनों के भीतर कोई प्रत्याक्षेप दाखिल नहीं किया गया था। यह प्रत्याक्षेप सिर्फ दिनांक 22.3.2007 अर्थात् उस पर अपील की नोटिस तामीला की तिथि से लगभग तीन वर्षों बाद दाखिल किया गया था। परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रत्याक्षेप दाखिल करने में हुए विलम्ब को माफ करने हेतु आवेदन/याचिका दाखिल की गयी थी।

हमने परिसीमा याचिका का परिशीलन किया है। प्रत्याक्षेप के पैरा 3 में इस अपीलार्थी/प्रत्यर्थी ने स्वीकार किया कि वह एम० ए० सं० 224 वर्ष 2002 में भेजी गयी नोटिस को दिनांक 13.7.2004 पर प्राप्त करने के बाद ही उसे अधिनिर्णय की जानकारी हुई। इस प्रकार, स्वीकृत तौर पर उसपर अपील नोटिस की तामीला की गयी और दिनांक 13.7.2004 को ही उसे अपील के लम्बित रहने के बारे में जानकारी हुई। लेकिन माफी आवेदन में कथन किया गया है कि जब मामला सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया और इसे सुनवाई के लिए लिया जाना था तब अधिवक्ता ने दावेदार द्वारा दाखिल विविध अपील में शपथपत्र दाखिल करने हेतु प्रत्याक्षेपी/स्वामी से संपर्क किया और शपथपत्र दाखिल करने के बाद वर्तमान प्रत्याक्षेप दाखिल करना आवश्यक पाया गया।

आक्षेपित आदेश से प्रकट है कि प्रत्यर्थी वाहन का स्वामी अधिकरण के समक्ष उपस्थित हुआ और लिखित बयान दाखिल किया और मामले का प्रतिवाद किया। इस तथ्य के बावजूद कि उसके विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय पारित किया गया था, उसने अपील दाखिल करना नहीं चाहा। सिर्फ यही नहीं, अपील नोटिस प्राप्त करने के बाद उसने लगभग तीन वर्षों तक प्रत्याक्षेप दाखिल नहीं किया। जब अपील को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया, तब ही प्रत्याक्षेप दाखिल किया गया है।

मामले के उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, हम प्रत्याक्षेप दाखिल करने में हुए विलम्ब को माफ करने का कोई कारण नहीं पाते है। प्रकटतः प्रत्याक्षेप परिसीमा से वर्जित है। अतः परिसीमा याचिका (आई० ए० सं० 871 वर्ष 2007) अस्वीकार किया जाता है। परिणामस्वरुप प्रत्याक्षेप सी० ओ० सं० 4 वर्ष 2007 परिसीमा से वर्जित होने के कारण खारिज किया जाता है।''

4. प्रत्याक्षेप को खारिज किए जाने के बाद वाहन के प्रत्यर्थी-स्वामी ने नियमित अपील एम॰ ए॰ सं॰ 110/2007 दाखिल किया जिसे भी दिनांक 12.6.2007 को खारिज कर दिया गया था।

5. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने दोहरा निवेदन किया है। विद्वान अधिवक्ता का प्रथम निवेदन यह है कि कि मृतक ट्रैकर का ड्राइवर था न कि खलासी। अतः अधिनिर्णित/मुआवजा युक्तिसंगत नहीं है और बहुत ही कम है। विद्वान अधिवक्ता का दूसरा निवेदन है कि मुआवजे के भुगतान की जिम्मेवारी ट्रक के बीमाकर्ता, जिसके साथ ट्रक का वैध बीमा था, पर डाला जाना चाहिए था।

6. जहाँ तक ट्रक के स्वामी और बीमाकर्ता के बीच जिम्मेवारी का संबंध है, जैसा पहले बताया गया है, वाहन के स्वामी द्वारा दाखिल अपील और प्रत्याक्षेप दोनों को खारिज किया जा चुका है। वाहन के स्वामी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने सही निवेदन किया है कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल अपील भी खारिज किया जा चुका है। लेकिन वाहन के स्वामी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अधिकरण द्वारा दी गयी मुआवजे की रकम उचित और युक्तिसंगत है।

7. इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी अपील और प्रत्याक्षेप खारिज किए जाने की दृष्टि में, बीमा कम्पनी के मुकाबले मालिक की जिम्मेवारी से संबंधित प्रश्न पर विचार करना समुचित नहीं होगा। अतः विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या अधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजे की रकम उचित और युक्तिसंगत है या नहीं।

8. स्वीकृत तौर पर, मृतक की आयु 25 वर्ष थी और मोटर दुर्घटना में उसकी मृत्यु हुई और वह अपने पीछे एक अवयस्क पुत्र, दो अवयस्क पुत्रियाँ और माता-पिता को छोड़ गया। दावेदारों के अनुसार मृतक ड्राइवर के तौर पर सेवारत था और उसके दैनिक भोजन भत्ते को छोड़ कर उसकी मासिक आय 3000/- रुपये थी। अधिकरण ने सिर्फ 1,70,000/- रुपये की रकम अधिनिर्णित किया।

9. यह मानने पर भी कि मृतक खलासी था, दावेदारों द्वारा दिए गए साक्ष्य के अनुसार दैनिक भोजन भत्ते के साथ उसकी मासिक आय 3000/- रुपये थी, अधिकरण को मुआवजा निर्धारण करने के उद्देश्य से अभिप्रायात्मक आय विचार में नहीं लेना चाहिए था। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ मृतक आमदनी रहित सदस्य था बल्कि वह ड्राइवर अथवा खलासी के तौर पर सेवारत था। किसी भी सूरत में मृतक की मासिक आय 2500/- रुपया लिए जाने पर वार्षिक निर्भरता 20,000/- रुपये आती है और अगर हम इसे 15 से गुणा करे तो न्यूनतम मुआवजा 3,00,000/- रुपया बनता है। हमारे दृढ़ विचार में, तथ्यों और साक्ष्य पर विचार करने के बाद, 3 लाख रुपये का मुआवजा उचित और युक्तिसंगत मुआवजा होगा।

10. अतः, हम इस अपील को अनुज्ञात करते हैं और मुआवजे की रकम को 3 लाख रुपये तक बढ़ाते हैं और वाहन के प्रत्यर्थी-स्वामी को दावेदारों को उक्त मुआवजे की रकम का भुगतान करने का निर्देश देते है।

जया रॉय, न्यायमूर्ति.—मैं सहमत हूँ।

माननीय आर० आर० प्रसाद, न्यायमूर्ति

चंचला देवी एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

Criminal Appeal (S.J.) No. 404 of 2006. Decided on 3rd November 2009.

एस॰ टी॰ सं॰ 14 वर्ष 2004 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा क्रमशः दिनांक 10.3.2006 एवं 17.3.2006 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं सजा के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 304-B एवं 498A–दहेज मृत्यु–नगद की मांग और ऐसी मांग को पूरा नहीं किए जाने पर गंभीर परिणामों की धमकी–जो भी मांग थी, वह विवाह के संबंध में थी और निश्चय ही दहेज की परिभाषा के भीतर आती है–मस्तक की उपहति के कारण मृतक की मृत्यु–बचाव पक्ष का अभिवाक कि मृतक की मृत्यु गिरने से हुई, स्वीकार योग्य नहीं–मृतक की मृत्यु अपने विवाह के सात वर्षों के भीतर हुई और दहेज की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण अभियुक्तों द्वारा क्रूरता/परेशान किया जाता था–दोषसिद्धि और सजा अंशतः संपुष्ट। (पैरा 15 से 18, 20 से 22)

निर्णयज विधि.–(2007)9 SCC 721—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. H. K. Mahato, For the Appellants; Mr. Tapas Roy, For the State.

न्यायालय द्वारा.–सोमबारी महतैं की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 304B/34, 302/34 और 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी आरोपों के विचारण हेतु समस्त चारों अभियुक्तों को रखा गया था। विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी दोषमुक्त करते हुए समस्त अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B और 498A के अधीन किए गए अपराध का दोषी पाया था। तद्नुसार, अपीलार्थी हारु महतो को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन किए गए अपराध के लिए दस वर्षों के सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी जबकि अन्य सारे अपीलार्थीगण को सात वर्षों के सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी। लेकिन भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन कोई पृथक सजा पारित नहीं की गयी थी।

2. अभियोजन का मामला यह है कि सोमवारी महतैं, सूचक ज्योति महतो (अ॰ सा॰ 3) की पुत्री, का विवाह घटना की तिथि के दो वर्ष पहले अपीलार्थी हारु महतो के साथ हुआ था। विवाह के समय, 48,000/- रुपये नकद और बर्तन-कपड़े, आदि दिए गए थे। दो महीने तक, सोमवारी महतैं अपने ससुराल में खुशी-खुशी रही थी लेकिन तत्पश्चात् अपीलार्थीगण उसकी त्वचा सांवली होने के कारण उसे 'काली-काली' करते हुए चिढ़ाने लगे। अभियुक्तों ने तब उससे 30,000/- रुपया मांगना शुरु किया अन्यथा उसका परित्याग कर दिया जाएगा और उसके पति की विवाह दूसरी जगह कर दिया जाएगा। हारु महतो प्रायः अपने ससुराल में पैसे लेने आया करता था और सूचक ज्योति महतो ने कभी उसे 1500/- रुपये दिए। इसके बावजूद हारु महतो फिर अपने ससुराल आया और व्यापार करने के लिए 30,000/- रुपये मांगा लेकिन जब सूचक ने पैसा देने से इन्कार कर दिया उसने यह धमकी देते हुए कि उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने होंगे, अपनी पत्नी के साथ वापस चला गया।

3. दिनांक 31.10.2003 को भीष्मदेव महतो, हारु महतो का पिता, शाम में आया और सूचक ज्योती महतो (अ॰ सा॰ 3) को कहा कि बीमार होने के कारण उसकी पुत्री को टी॰ एम॰ एच॰ में भरती किया गया है। यह सूचना पाने पर सूचक ज्योति महतो (अ॰ सा॰ 3) ने अपने पुत्र जेथू राम और अपने भतीजे दीपक महतो को अपनी पुत्री को देखने के लिए टी॰ एम॰ एच॰ भेजा लेकिन जब वे टी॰ एम॰ एच॰ गए तो उन्होंने सोमवारी महतैं को वहाँ नहीं पाया और जब वे दोनों सोमवारी महतैं के ससुराल

आए तो वहाँ उन्होंने उसे मृत पाया। यह सूचना मिलने पर सूचक ज्योति महतो (अ॰ सा॰ 3) अपनी पुत्री के घर आया जहाँ सोमवारी महतैं की मृत्यु की सूचना पाकर पुलिस पहले ही पहुँची हुई थी और उसने अरुण कुमार, चांडिल पुलिस थाना का उपनिरीक्षक, को अपना फर्दबयान (प्रदर्श-1/2) दिया जिसके आधार पर प्राथमिकी (प्रदर्श-4) दर्ज की गयी। उक्त उपनिरीक्षक (अ॰ सा॰ 7) ने अन्वेषण शुरू किया और मृत शरीर की मृत्यु समीक्षा की और मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श-3) तैयार किया। तत्पश्चात् मृत शरीर को शव परीक्षण हेतु भेजा गया जिसे डॉ॰ ललन चौधरी (अ॰ सा॰ 8) ने संचालित किया जिन्होंने शव परीक्षा करने पर निम्नलिखित उपहतियाँ पायी:-

> *1. आस्सीपीटल स्काल्प के दाहिने हिस्से के उपर के मांस पर 2.5 सी० एम० x 2 सी० एम० का विदीर्ण घाव। चीरफाड़ करने पर-आस्सीपीटल स्काल्प पर 10 सी० एम० x 5 सी० एम० की अंतःक्षति पायी गयी। मस्तिष्क का पूरा बायां हिस्सा को काफी ज्यादा चोट लगा पाया गया।*
>
> *2. दायीं ओर की मांसपेशी भी चोट लगी पायी गयी। हायोईड अस्थि भी चोट लगी पायी गयी।*
>
> *3. लैरिन्क्स और ट्रैकिया को जाम पाया गया और इसमें झाग था।*

4. डॉक्टर के अनुसार, मृत्यु कठोर और भोथरे चीज द्वारा कारित मस्तक में हुई उपहति के कारण हुई। शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श-5 के तौर पर प्रमाणित किया गया।

5. अन्वेषण पूरा होने के बाद, पुलिस ने अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोपपत्र दाखिल किया जिस आधार पर अपराध का संज्ञान लिया गया और कालक्रम में, जब मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया, आरोप विरचित किए गए जिनके विरुद्ध अपीलार्थीगण ने अपने को निर्दोष होने का अभिवाक् किया और विचारित किए जाने का दावा किया।

6. अभियोजन ने कुल आठ गवाहों का परीक्षण किया है। उसमें से बासुदेव महतो (मृतक का कजिन) का अ॰ सा॰ 1 के तौर पर परीक्षण किया गया जबकि अ॰ सा॰ 2, 3 और 4 क्रमशः मृतक के माता, पिता और भाई है। अन्य गवाह, अ॰ सा॰ 5 और 6 पक्षद्रोही हो गए।

7. बचाव पक्ष ने भी एक गवाह शशि राम महतो ब॰ सा॰ 1 का परीक्षण किया जिसने कथन किया कि पति-पत्नी के बीच मधुर संबंध था और अभियुक्तों ने कभी कोई मांग नहीं की थी और मृतक की हत्या नहीं की थी बल्कि मृतक की मृत्यु गिरने से हुई जब वह बीमार थी।

8. विचारण न्यायालय ने अ॰ सा॰ 1, 2, 3 और 4 के परिसाक्ष्यों कि मृतक को 30,000/- रुपये की मांग पूरी न किए जाने के कारण यातना दी जाती थी और अंततः उसकी हत्या कर दी गयी, पर अंतर्निहित विश्वास प्रकट करते हुए अपीलार्थीगण को दोषी पाया।

9. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पति-पत्नी के बीच बहुत मधुर संबंध था और इस प्रकार अपीलार्थीगण द्वारा मृतक की दहेज हेतु हत्या करने का प्रश्न ही नहीं उठता और पैसे की मांग नहीं पूरी किए जाने के कारण दहेज हेतु हत्या के लिए अभियोजन की ओर से दिया गया साक्ष्य पूर्णतः गलत है और वस्तुतः मृतक बीमार थी और बहुत कमजोर हो गयी थी और इस कारण जब वह गिर पड़ी तो उसे उपहति हुई और उसकी मृत्यु हो गयी और यह विवरण डॉक्टर के साक्ष्य से समर्थित होता है जिसने मत दिया है कि मृतक को हुई उपहति जमीन पर गिरने के कारण कारित हो सकती थी और ऐसी स्थिति में, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को आरोपों का दोषी धारित करने में गंभीर अवैधता की है।

10. विद्वान, अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि मामले की इस दृष्टि में, मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 304 B की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है क्योंकि अभियोजन का मामला यह नहीं है कि अभियुक्तों ने दहेज की मांग की थी बल्कि गवाहों के अनुसार पति ने व्यापार करने के लिए 30,000/- रुपयों की मांग की थी और इस प्रकार यह मांग दहेज की मांग की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 304 B के अधीन अपराध करने का प्रश्न नहीं उठता है।

11. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **अप्पा साहेब एवं एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2007)9 एस॰ सी॰ सी॰ 721]** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

12. राज्य के विद्वान अधिवक्ता को भी सुना गया।

13. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि स्वीकृत तौर पर सोमवारी महतैं की मृत्यु के दो वर्ष पूर्व सोमवारी महतैं का विवाह अपीलार्थी हारु महतो के साथ हुआ था जो अभियोजन के अनुसार दिनांक 31.10.2003 को हुआ था। अभियोजन ने आरोप सिद्ध करने के लिए जीरा देवी, मृतक की माता और ज्योति महतो, मृतक का पिता, का परीक्षण अ॰ सा॰ 2 और 3 के तौर पर किया है जबकि अ॰ सा॰ 1 वासुदेव महतो कजिन है और अ॰ सा॰ 4 बनमाली महतो मृतक का भाई है। अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य के मुताबिक हिन्दू वैवाहिक कृत्य और कर्म के अंतर्गत उसकी पुत्री का विवाह हारु महतो के साथ हुआ था और विवाह में वस्त्र, आभूषण और बर्तन के अतिरिक्त 48,000/- रुपया नगद भी दिया गया था लेकिन उसकी पुत्री को यातना दी जाती थी क्योंकि पति और उसकी पुत्री का ससुर 30,000/- रुपयों की मांग कर रहे थे। उसने परिसाक्ष्य दिया है कि उसका दामाद उसके घर आकर उन्हें धमकी देकर मांग किया करता था कि अगर ये नहीं दिया गया तो उसकी पुत्री को यातना दी जाएगी और इसलिए उसे कभी–कभार 2000-3000/- रुपये दिए जाते थे। उसने यह भी परिसाक्ष्य दिया है कि घटना के 7-8 दिन पहले, उसकी पुत्री आयी थी और एक बार फिर पैसो की मांग दुहरायी थी। ऐसा ही बयान अ॰ सा॰ 3 सूचक मृतक के पिता का है जिसने अभिसाक्ष्य दिया है कि जब कभी भी उसकी पुत्री उसके घर आयी, उसने हमेशा उससे कहा कि उसका पति पैसे मांगा करता है यद्यपि अनेक अवसरों पर उसे 2000-3000/- रुपया दिया गया था। निश्चय ही, इस गवाह ने परिसाक्ष्य दिया है कि उसका दामाद व्यापार करने के लिए 30,000/- रुपये मांगा करता था और इसके अतिरिक्त, व्यापार करने के लिए मांग के तथ्य का कथन अ॰ सा॰ 1 वासुदेव महतो द्वारा भी किया गया है और ऐसी स्थिति में यह निवेदन किया गया है कि यदि कोई मांग थी तो यह विवाह से संबंधित नहीं थी और इस प्रकार दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित 'दहेज' की परिभाषा के निबंधनों के अनुसार ऐसी मांग को दहेज करार नहीं दिया जा सकता है और इसलिए मामला कभी भी भारतीय दंड संहिता की धारा 304 B के॰ अधीन नहीं आएगा।

14. दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित 'दहेज' की परिभाषा के निबंधनों के अनुसार विवाह के समय या उससे पहले या विवाह के बाद और उक्त पक्षों के विवाह से संबंधित कोई संपत्ति अथवा बहुमूल्य प्रतिभूति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दी गयी या दिए जाने की सहमति दहेज की परिभाषा के अंतर्गत आएगी।

15. वर्तमान् मामले में, चूँकि यह कहा गया है कि मांग कारोबार चलाने के प्रयोजन से की गयी थी, इसलिए, यह अभिवाक् अपनाया जा रहा है कि दहेज की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आयेगा परन्तु परिसाक्ष्यों विशेष रूप से अ॰ सा॰ 2 के परिसाक्ष्यों की सूक्ष्म संवीक्षा करने पर; जो और कोई नहीं बल्कि

मृतक की माता हैं, यह प्रतीत होता है कि उसने अभिसाक्ष्य दिया है कि विवाह के समय अन्य सामानों के अतिरिक्त 48,000/- रु० नकद दिए गए थे एवं उसके वावजूद, उसके प्रति क्रूरता की जा रही थी क्योंकि उसके दामाद एवं समधी 30,000/- रु० अधिक मांगा करते थे। उसने आगे परिसाक्ष्य दिया है कि कुछ अवसर पर उसके दामाद को 2,000-3,000/- रु० दिए गये थे। निश्चय ही, अन्य साक्षियों, जैसे अ० सा० 1 एवं 2 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मांग कारोबार चलाने के प्रयोजन से की गयी थी परन्तु कारोबार करने के लिए धन की मांग के सम्बन्ध में इन साक्षियों के परिसाक्ष्य, अ० सा० 2 द्वारा दिए गए परिसाक्ष्य, जैसा कि उपर इंगित किया गया है, के परिप्रेक्ष्य में किया जाना है, इसका अर्थ यह होगा कि मांग विवाह के सम्बन्ध में थी परन्तु उसका उपयोग कारोबार करने के प्रयोजन हेतु किया जाना था एवं इस परिस्थिति में, यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि मांग 'दहेज' की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आएगा। इस प्रकार, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि जो कुछ भी मांग थी वह विवाह के सम्बन्ध में थी, इसलिए यह निश्चित रूप से दहेज की परिभाषा के अन्तर्गत आयेगा।

16. जहाँ तक अपीलार्थीगण की ओर से निर्दिष्ट निर्णय में अधिकथित निर्णयाधार का संबंध है, उसे उस मामले के तथ्यों के आधार पर अधिकथित किया गया है कि ऐसा संगत साक्ष्य था कि आर्थिक कठिनाई के कारण अथवा अत्यावश्यक घरेलू खर्चों के लिए अथवा खाद खरीदने के लिए मांग की गयी थी और उस संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उक्त मांग विवाह के संबंध में नहीं हो सकती थी और इसलिए दहेज की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएगी।

17. मामले के दूसरे पहलू पर आते हुए, मैं पाता हूँ कि डॉक्टर द्वारा दिए गए साक्ष्य के अनुसार मृत्यु मस्तक में उपहति के कारण हुई थी जो कठोर और भोथरी चीज द्वारा कारित हुई थी। निश्चय ही डाक्टर ने मत दिया है कि इस प्रकार की उपहति गिरने के कारण हो सकती है लेकिन इसी समय डॉक्टर ने गर्दन पर भी उपहति पायी है जो उसके अनुसार कभी भी गिरने के कारण नहीं हो सकती है और इस प्रकार अभियुक्तों की ओर से किया गया अभिवाक् कि मृतक की मृत्यु गिरने से हुई, कभी भी स्वीकार योग्य नहीं है।

18. इस प्रकार मैं पाता हूँ कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी० के अधीन अपराध गठित करने के लिए सारे आवश्यक तत्व हैं क्योंकि सोमवारी महतैं की मृत्यु शारीरिक उपहति के कारण विवाह के सात वर्षो के अंदर कारित हुई और उसे दहेज की मांग पूरी नहीं करने के लिए अभियुक्तों द्वारा यातना दी जाती थी और परेशान किया जाता था।

19. अब यह प्रश्न उठता है कि दहेज हत्या कारित करने के लिए सिर्फ पति जिम्मेदार है अथवा अन्य अपीलार्थीगण भी जिम्मेदार हैं?

20. अ० सा० 1 के साक्ष्य के मुताबिक यह नोट किया गया है कि पति ही 30,000/- रुपये की मांग किया करता था जबकि अ० सा० 2 ने परिसाक्ष्य दिया है कि उसका दामाद और समधी (मृतक का ससुर) भी 30,000/- रुपये मांगा करता था लेकिन यह प्रतीत होता है कि मृतक के ससुर ने कभी प्रत्यक्षत: उससे मांग नहीं की थी क्योंकि उसने कथन किया है कि उसका दामाद जब कभी भी उसके घर आता था, वह पैसे मांगा करता था। ऐसा ही साक्ष्य अ० सा० 3 का भी है जिसने परिसाक्ष्य दिया है कि जब कभी भी उसकी पुत्री आती थी वह कहती थी कि उसका पति उस पर व्यंग्य करता है और पैसा मांगा करता है। इस प्रकार यह प्रकट है कि ऐसा कोई भी संगत या अकाट्य साक्ष्य नहीं है कि मृतक के पति के अतिरिक्त अन्य अभियुक्त द्वारा भी मांग की जाती थी। दूसरी ओर गवाह इस बात पर डटे हैं कि पति मांग किया करता था।

21. मामले के इस दृष्टि में, यह धारित करना उचित नहीं होगा कि अन्य अपीलार्थीगण अर्थात् चंचला देवी, कुन्ती देवी और भीष्मदेव महतो भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन और धारा 498A के अधीन अपराध के लिए दोषी है। अतः उन्हें उनके विरुद्ध लगाए गये आरोपों से मुक्त किया जाता है और उन्हें अपने जमानत पत्र की जिम्मेवारी से उन्मोचित किया जाता है।

22. जहाँ तक अपीलार्थी हारु महतो, मृतक का पति, का संबंध है उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304B और 498A के अधीन सही दोषसिद्ध किया गया है और तथ्यों एवं परिस्थितियों में उसे अपराध के लिए दी गयी सजा समुचित है। तद्नुसार, उसके विरुद्ध पारित दोषसिद्धि का निर्णय और सजा का आदेश संपुष्ट किया जाता है।

23. परिणामस्वरुप, यह अपील अंशतः अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

बिरेन्द्र कुमार पाण्डे

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 6900 of 2005. Decided on 6th November, 2009.

सेवा विधि–प्रोन्नति–स्टेनो/टाईपिस्ट ए॰ एस॰ आई॰ पद पर प्रोन्नति हेतु दावा–याची को साक्षर कॉन्सटेबुल के तौर पर नियुक्त किया गया था और उसे एक लंबी अवधि तक उच्चतर पद पर कार्यवहन करवाया गया–यह उसे अपेक्षित परीक्षा में उसके अर्हित होने के अधीन उच्चतर पद पर प्रोन्नति के लिए उसके मामले पर विचार किए जाने का दावा करने का हकदार बनाएगा–याची को प्रोन्नति दिया जाना विशेष नियमों द्वारा मार्गदर्शित होगा–सिर्फ दक्षता और लंबी अवधि तक कार्यवहन के दावे के आधार पर प्रत्यर्थीगण को नियमों को नजरअंदाज करने और याची को उच्चतर पद पर प्रोन्नति करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है–फिर भी याची उच्चतर पद का कार्यवहन वेतन पाने का हकदार होगा–प्रत्यर्थीगण को याची की विभागीय परीक्षा संचालित करने का निर्देश। (पैरा 6 से 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Dr. S. N. Pathak, For the Petitioner; J.C. to A.G., For the Respondent-State.

आदेश

याची ने इस रिट याचिका में निम्नलिखित अनुतोषों के लिए प्रार्थना की है:–

(a) पुलिस महानिदेशक, बिहार द्वारा दिए गए दिनांक 9.11.2000 के आदेश के अनुसरण में जारी दिनांक 17.11.2000 के जिला आदेश सं० 1418 के अभिखंडन हेतु उत्प्रेषण रिट जारी करने के लिए।

(b) प्रत्यर्थीगण को याची को स्टेनो/टाईपिस्ट ए० एस० आई० पद पर प्रोन्नत करने के लिए समादेशित करने वाले परमादेश प्रकृति का एक रिट जारी करने के लिए।

(c) याची को स्टेनो/टाईपिस्ट ए० एस० आई० पद, जिस पर वह वर्ष 1997 से कार्यवहन कर रहा है, के लिए उसके वेतन के भुगतान हेतु प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने के लिए।

2. प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

4. याची के मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:-

याची को कॉन्स्टेबल के तौर पर राज्य पुलिस सेवा में वर्ष 1988 में नियुक्त किया गया था और उसके द्वारा अपेक्षित प्रशिक्षण पूरा किए जाने पर उसे आरक्षी अधीक्षक, पलामू के कार्यालय में पदस्थापित किया गया। जहाँ उसे स्टेनो/टाईपिस्ट का काम आबंटित किया गया था।

पुलिस महानिरीक्षक और पुलिस उप-महानिरीक्षक सहित कार्यालय में उसके वरीय अधिकारियों ने परिशिष्ट-1 श्रृंखला के मुताबिक उसे स्टेनो/टाईपिस्ट ए० एस० आई० के तौर पर पदस्थापित करने के लिए उसके नाम की अनुशंसा की।

अनुशंसा पर विचार करके याची को चार महीने की अवधि के लिए तदर्थ तौर पर स्टेनो/टाईपिस्ट ए० एस० आई० के पद पर प्रोन्नत किया गया था और पुलिस उप-महानिरीक्षक द्वारा उसकी नियमित प्रोन्नति के लिए मुख्यालय, बिहार को अनुशंसा अग्रसर की गयी थी।

उपर्युक्त पद पर उसकी सेवाएँ नियमित करने के बजाए जिला, जहाँ याची कार्यरत था, के आरक्षी अधीक्षक के आदेश द्वारा, याची को कॉन्सटेबल के पद पर प्रतिवर्तित कर दिया गया और विभाग के जिला पुलिस में पद स्थापित कर दिया गया।

लेकिन, तत्पश्चात् पुलिस महानिरीक्षक के आदेश पर, याची को दिनांक 24.10.2000 को फिर स्टेनो/टाईपिस्ट, ए० एस० आई० के पद पर तदर्थ प्रोन्नति दी गयी।

तत्पश्चात्, बिहार राज्य के विभाजन के समय याची को कॉन्सटेबल के पद पर प्रतिवर्तित करने के लिए पुलिस उप-महानिरीक्षक मुख्यालय, बिहार ने दिनांक 9.11.2000 को एक आदेश जारी किया और यह आदेश दिनांक 17.11.2000 के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-4) द्वारा लागू किया गया था।

याची दावा करता है कि उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध उसने अनेक अभ्यावेदन दिया लेकिन इन पर विचार नहीं किया गया।

याची की शिकायत है कि उसने स्वीकृत तौर पर पर्याप्त अवधि तक निरन्तर स्टेनो/टाईपिस्ट के उच्चतर पद पर कार्यवहन किया है और इस प्रकार वह उपर्युक्त पद पर प्रोन्नत किए जाने का हकदार है। उसकी अगली शिकायत यह है कि यद्यपि उससे स्टेनो/टाईपिस्ट ए० एस० आई० के उच्चतर पद पर कार्यवहन करवाया गया है लेकिन उसे उपर्युक्त पद पर लागू वेतन का भुगतान नहीं किया गया है और न ही उसे कार्यवहन वेतन दिया गया है जबकि वह वर्ष 1997 से और अभी भी उस पद पर काम कर रहा है।

याची की अगली शिकायत यह है कि एक अन्य सहकर्मी अर्थात् रामनाथ पांडे, जिसे शुरू में कॉन्स्टेबल के तौर पर सेवा में बहाल किया गया था और स्टेनो/टाईपिस्ट ए० एस० आई० के पद पर तदर्थ प्रोन्नति दी गयी थी, की सेवा उच्चतर पद पर तब से नियमित कर दी गयी है जबकि याची को उस पद पर नियमित करने के बजाए उसे मनमाने तरीके से कॉन्सटेबल के पद पर प्रतिवर्तित कर दिया गया है।

5. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि सारभूत पद जिस पर याची को नियुक्त किया गया था वह कॉन्सटेबल का पद है और चूँकि वह टंकण जानता था, टंकण कार्य हेतु जरुरत मुताबिक समय-समयानुसार उसकी सेवाएं ली गयी थी। विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि सिर्फ इसलिए कि टाईपिस्ट के तौर पर उसकी सेवाएँ ली गयी थी, याची स्टेनो/टाईपिस्ट ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर प्रोन्नति का दावा नहीं कर सकता है क्योंकि प्रोन्नति के लिए अधिकथित प्रक्रिया उल्लिखित करती है कि ऐसी प्रोन्नतियों पर सिर्फ वरीयता के आधार पर विचार किया जाना चाहिए और वह भी जब संबंधित उम्मीदवार पुलिस मुख्यालय द्वारा संचालित विभागीय परीक्षा में डी॰ जी॰ बोर्ड द्वारा उत्तीर्ण घोषित किया गया हो।

विद्वान अधिवक्ता आगे प्रतिवाद करते हैं कि किसी अधिकारी को ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर नियुक्त या प्रोन्नत करने के लिए रेंज डी॰ आई॰ जी॰ को प्राधिकार नहीं है और पुलिस निर्देशिका के परिशिष्ट-41 में अधिकथित प्रक्रिया के मुताबिक प्रोन्नति पर ऐसी नियुक्तियाँ बोर्ड द्वारा संचालित परीक्षा के बाद ही की जा सकती है। उपर्युक्त आधार पर विद्वान अधिवक्ता याची के तदर्थ प्रोन्नति के प्रतिसंहरण के आदेश को न्यायोचित ठहराना चाहते है।

6. विरोधी निवेदनों से जो तथ्य प्रकट होते है, वे यह हैं कि याची को साक्षर कॉन्सटेबल के तौर पर नियुक्त किया गया था और उसे स्टेनो/टाईपिस्ट ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर कार्यवहन करने के लिए कहा गया था। उच्चतर पद पर याची की ऐसी सेवा स्वीकृत तौर पर वर्ष 1997 से सीमित अवधि के लिए तदर्थ प्रोन्नति के माध्यम से ली गयी थी और नयी अधि सूचनाओं द्वारा ऐसी अवधियों को समय-समय पर बढ़ाया गया था।

7. इस प्रकार यह प्रकट है कि स्टेनो/टाईपिस्ट ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर उसकी प्रोन्नति/नियमितीकरण के लिए याची का दावा सिर्फ इस आधार पर है कि कार्यालय में उसके संबंधित वरीय अधिकारियों द्वारा उसकी दक्षता की परीक्षा की गयी है और उन्होंने संतुष्ट होकर उपर्युक्त पद पर कार्यवहन के लिए लगभग निरन्तर उसकी सेवा ली है।

8. स्वीकृत तौर पर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट नियम पुलिस निर्देशिका के परिशिष्ट-41 के अधीन और पुलिस निर्देशिका के नियम 660 और 660A के अधीन नियुक्ति/प्रोन्नति की प्रक्रिया अधिकथित करते है। याची ऐसी किसी विभागीय परीक्षा में उपस्थित नहीं हुआ है और न ही उसे बोर्ड द्वारा प्रोन्नति के लिए अर्हित घोषित किया गया है।

9. यह तथ्य, कि याची को समय-समय पर तदर्थ प्रोन्नतियाँ दी गयी थी, यह दर्शाता है कि उससे उच्चतर पद पर कार्यवहन करवाया गया था लेकिन कॉन्सटेबल के सारभूत पद पर उसका धारणाधिकार प्रतिधारित किया गया था। चूँकि याची की प्रोन्नति की मंजूरी विशेष नियमों द्वारा मार्गदर्शित होगी प्रत्यर्थीगण को नियमावली को नजरअंदाज करने और याची को उच्चतर पद पर प्रोन्नत करने का निर्देश, सिर्फ दक्षता और लंबी अवधि तक कार्यवहन करने के उसके दावे के आधार पर, संभवत: नहीं दिया जा सकता है।

10. मैं इस तथ्य के प्रति जागरुक हूँ कि याची से एक लंबी अवधि तक निरंतर उच्चतर पद पर कार्यवहन करवाया गया है। यह याची को सिर्फ अपेक्षित परीक्षा में उत्तीर्ण होने के अधीन उच्चतर पद पर उसकी प्रोन्नति के मामले पर विचार किए जाने का दावा करने का हकदार बनाएगा। वह अर्हित होने हेतु और अपनी दक्षता सिद्ध करने हेतु बोर्ड द्वारा ली जाने वाली अपेक्षित परीक्षा में उपस्थित होने का हकदार होगा। लेकिन याची उस अवधि के लिए, जब तक उसे उच्चतर पद पर कार्यवहन करवाया गया है, कार्यवहन वेतन पाने का हकदार होगा।

11. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, मैं प्रत्यर्थीगण को निम्नलिखित निर्देश देता हूँ:-

(i) इस आदेश के 6 महीने की अवधि के भीतर प्रत्यर्थीगण अपेक्षित विभागीय परीक्षा संचालित करेंगे ताकि याची उसमें उपस्थित होने में सक्षम हो और विहित परीक्षा में अर्हित होने पर उच्चतर पद पर याची की प्रोन्नति का समुचित निर्णय लेंगे।

(ii) प्रत्यर्थीगण याची को उस अवधि के लिए जिसमें स्टेनो/टाईपिस्ट ए० एस० आई० के उच्चतर पद पर कार्यवहन हेतु उसकी सेवाएँ ली गयी है, कार्यवहन वेतन का भुगतान करेंगे। ऐसा भुगतान उस तिथि से उच्चतर पद पर ली गयी उसकी सेवा के लिए किया जाएगा।

12. इन संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

13. इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

झारखण्ड राज्य सचिव, गृह विभाग, झारखण्ड सरकार के माध्यम से

बनाम

विनोद मणि दिवाकर एवं अन्य

W.P.S. No. 3007 of 2009. Decided on 18th November, 2009.

सेवा विधि–प्रोन्नति–याची की पुलिस महानिदेशक के तौर पर प्रोन्नति हेतु CAT का निर्देश–याची के कनीयों को प्रोन्नति दी गयी–याची को ''वर्दी घोटाला'' में फँसाया गया–कतिपय परिस्थितियों में, सरकारी सेवकों, जिनके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही अथवा दांडिक मामला लंबित है, को तदर्थ प्रोन्नति दी जा सकती है–तदर्थ प्रोन्नति नियमित प्रोन्नति का अधिकार प्रदान नहीं करता है–तदर्थ प्रोन्नति को तभी संपुष्ट किया जा सकता है जब सरकारी सेवक दांडिक मामले में दोषमुक्त किया जाता है अथवा विभागीय कार्यवाही में पूर्णत: विमुक्त किया जाता है–इसके अतिरिक्त, सरकारी सेवक अधिकार के आधार पर प्रोन्नति का दावा नहीं कर सकता है–सिर्फ इसलिए कि वर्ष 1986 से एक दांडिक मामला लंबित है, अधिकरण को ऐसा अनुतोष नहीं देना चाहिए था जो विधि में अनुज्ञेय नहीं है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. R. Krishna, For the Petitioner; M/s Dr. S.N. Pathak, N.K. Pander, Prabhash Kumar, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–इस रिट याचिका द्वारा याची–झारखण्ड राज्य ने ओ॰ ए॰ सं॰ 105/2007 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, सर्किट पीठ, धनबाद द्वारा दिनांक 5.12.2008 को पारित आदेश, जिसके द्वारा अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया था कि प्रत्यर्थी–आवेदक को दिनांक 23.2.1999 से पुलिस महानिदेशक के पद पर प्रोन्नत माना जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो एक अधिसंख्य पद का सृजन किया जाना चाहिए, के अभिखंडन हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति का रिट जारी करने की प्रार्थना

की है। अधिकरण ने आगे अभिनिर्धारित किया कि आवेदक को दिनांक 29.4.2005 के प्रभाव से अपर पुलिस महानिदेशक के तौर पर प्रोन्नति प्रदान किए जाने की अपेक्षा की जाती है और आगे संप्रेक्षण किया कि इस आदेश की तिथि से दो महीने के भीतर पारिणामिक आदेश पारित किया जाना चाहिए।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:-

3. आवेदक-प्रत्यर्थी ने अपनी हकदारी और वरीयता को ध्यान में रखते हुए अपर पुलिस महानिदेशक (ए॰ डी॰ जी॰ पी॰) के तौर पर उसकी प्रोन्नति के लिए निर्देश देने हेतु उपर्युक्त ओ॰ ए॰ सं॰ 105/2007 दाखिल करके प्रार्थना की थी। आवेदक 1974 बैच का आई॰ पी॰ एस॰ अधिकारी है। वर्ष 1986 में, सी॰ बी॰ आई॰ ने आवेदक के विरुद्ध ''वर्दी घोटाला'' मामला के नाम से जाना गया सी॰ बी॰ आई॰ केस सं॰ 25/86 पटना, संस्थापित किया था। उस मामले में मार्च 1986 में आरोप पत्र दाखिल किया गया था जो अभी लम्बित है। वर्ष 2005 में आवेदक ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की शरण ली और उस मामले में अधिकरण ने ऑफिस मेमोरैन्डम 1992 के आलोक में उसके तदर्थ प्रोन्नति पर विचार करने का याची-राज्य को निर्देश दिया। याची राज्य ने डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 2192/2006 नामक रिट याचिका दाखिल करके अधिकरण के उक्त आदेश का विरोध किया। यह निर्देश देते हुए रिट याचिका को निपटाया गया कि विभागीय प्रोन्नति कमिटी (डी॰ पी॰ सी॰) प्रत्यर्थी-आवेदक के तदर्थ प्रोन्नति के मामले पर विचार करेगी और निर्णय लेगी। उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में आवेदक के मामले पर विचार किया गया और दिनांक 13 फरवरी, 2007 की अधिसूचना द्वारा उसे अगले आदेश तक पुलिस महानिरीक्षक के पद पर तदर्थ प्रोन्नति दी गयी। प्रोन्नति पाने के बाद आवेदक ने एक बार फिर ओ॰ ए॰ सं॰ 105/2007 के जरिये अधिकरण की शरण ली और प्रार्थना किया कि वह अपर पुलिस महानिदेशक के तौर पर प्रोन्नति पाने का हकदार है। पक्षों को सुनने के बाद अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि दिनांक 14.9.1992 का डी॰ पी॰ टी॰ परिपत्र डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा 6 महीने बाद पुनर्विलोकन के बारे में, जहाँ कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही/दांडिक अभियोजन पूरी नहीं की गयी है, स्पष्ट कथन करता है। चूँकि ऐसा नहीं किया गया है, अत: ऐसा माना जाएगा कि आवेदक को डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा दिनांक 23.2.1999 के प्रभाव से आई॰ जी॰ पुलिस के तौर पर प्रोन्नति प्रदान करने योग्य माना जाएगा जब उससे कनीय व्यक्तियों को प्रोन्नति दी जा चुकी थी। अधिकरण ने आगे अभिनिर्धारित किया कि आवेदक दिनांक 29.4.2005 के प्रभाव से ए॰ डी॰ जी॰ पी॰ के तौर पर प्रोन्नति पाने का हकदार है।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय स्थायी अधिवक्ता श्री आर॰ कृष्ण ने अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को गैरकानूनी और पूर्णत: अधिकारिता रहित बताते हुए इसका विरोध किया है। विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान वर्ष 1992 के परिपत्र की ओर खींचा है और निवेदन किया है कि सिर्फ इस कारण कि आवेदक को तदर्थ प्रोन्नति दी गयी है, उसे भूतलक्षी प्रभाव से नियमित प्रोन्नति पाने का हक प्राप्त नहीं होता है। विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते है कि उन अधिकारियों, जो आवेदक से कनीय थे और जिन्हें प्रोन्नति दी गयी थी, के विरुद्ध कोई दांडिक कार्यवाही लंबित नहीं थी। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अधिकरण यह कल्पित नहीं कर सकता है कि आवेदक प्रोन्नति पाने का हकदार है।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस॰ एन॰ पाठक ने निवेदन किया कि आवेदक को सिर्फ इसलिए प्रोन्नत करने से इन्कार किया गया क्योंकि उसके विरुद्ध एक दांडिक मामला लंबित है और जो विगत 23 वर्षों से रूका पड़ा है। विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते है कि डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा कोई पुनर्विलोकन नहीं किया गया है और तभी जब उच्च न्यायालय ने आदेश पारित किया, याची को तदर्थ प्रोन्नति दी गयी थी। अंत में, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आवेदक के विरुद्ध प्रारंभ की गयी विभागीय कार्यवाही अधिकरण द्वारा ओ॰ ए॰ सं॰ 152 वर्ष 2001

में अभिखंडित कर दी गयी थी। इस प्रकार, अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

6. पक्षों के परस्पर विरोधी प्रतिवादों का मूल्यांकन करने के पूर्व मैं, दिनांक 14.9.1992 के ऑफिस मेमोरैन्डम, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के परिशिष्ट-6 के तौर पर उपाबद्ध की गयी है, के प्रासंगिक खंड की चर्चा करना चाहूँगा। यह मेमोरैन्डम उस सरकारी सेवक, जिसके विरुद्ध अनुशासनिक/न्यायालयी कार्यवाही लंबित है अथवा जिनका आचरण अन्वेषण के अधीन है, की प्रोन्नति पर विचार करता है। खंड 5, 5.1 से 5.3 यहाँ इसमें नीचे उद्धृत करने योग्य है:-

> *5. "उक्त पैरा 4 में निर्दिष्ट मासिक पुनर्विलोकन के बावजूद, कुछ ऐसे मामले हो सकते है जहाँ प्रथम डी० पी० सी० की बैठक की तिथि से दो वर्षों के अवसान के पश्चात् भी सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक मामला/दांडिक अभियोजन पूरा नहीं किया गया है और जिसने सरकारी सेवक के संबंध में प्राप्त निष्कर्षों को सीलबंद लिफाफे में रख दिया गया है, ऐसी स्थिति में, नियुक्ति प्राधिकारी सरकारी सेवक के मामले का पुनर्विलोकन कर सकता है, बशर्ते वह निलंबित न हो, और निम्नलिखित पहलूओं को ध्यान में रखते हुए उसे तदर्थ प्रोन्नति देने की वांछनीयता पर विचार कर सकता है:-*
>
> *(a) क्या अधिकारी की प्रोन्नति जनहित के विरुद्ध होगी;*
>
> *(b) क्या आरोप इतने गंभीर है कि उसे निरन्तर प्रोन्नति न देने का समुचित आधार है;*
>
> *(c) क्या निकट भविष्य में मामला निष्कर्षित होने की संभावना है;*
>
> *(d) क्या कार्यवाही विभागीय अथवा न्यायालयी को अंतिमरूप देने में हुए विलम्ब के लिए संबंधित सरकारी सेवक प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः जिम्मेदार माना जा सकता है; एवं*
>
> *(e) क्या सरकारी पद, जिसे सरकारी सेवक तदर्थ प्रोन्नति के बाद पा सकता है, के दुरुपयोग की संभावना है जो विभागीय मामले/दांडिक अभियोजन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।*
>
> *नियुक्ति प्राधिकारी को केन्द्रीय जाँच ब्यूरो के साथ परामर्श करना चाहिए और उसके विचारों को ध्यान में लेना चाहिए जहाँ विभागीय कार्यवाही अथवा दांडिक अभियोजन ब्यूरों द्वारा संचालित अन्वेषण से उद्भूत हुआ है।*
>
> *5.1. यदि नियुक्ति प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर आता है कि सरकारी सेवक को तदर्थ प्रोन्नति दिया जाना लोकहित के विरुद्ध नहीं होगा, उसका मामला दो वर्षों के अवसान के पश्चात अगली डी० पी० सी० के समक्ष उसकी निकटस्थ बैठक में प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि क्या अधिकारी तदर्थ आधार पर प्रोन्नति पाने के लिए सुयोग्य है। जहाँ तदर्थ प्रोन्नति के लिए सरकारी सेवक पर विचार किया जाता है, विभागीय प्रोन्नति कमिटी को अपना निर्धारण अनुशासनिक मामला/दांडिक कार्यवाही को ध्यान में लिए बिना व्यक्तिगत सेवा अभिलेख के आधार पर करना चाहिए।*
>
> *5.2. सरकारी सेवक को तदर्थ आधार पर प्रोन्नत करने का निर्णय लेने के पश्चात् स्वयं आदेश में यह स्पष्ट करते हुए प्रोन्नति का आदेश जारी किया जा सकता है कि:-*

(i) प्रोन्नति शुद्धतः तदर्थ आधार पर दी जा रही है और तदर्थ प्रोन्नति नियमित प्रोन्नति का कोई अधिकार प्रदान नहीं करती है; एवं

(ii) प्रोन्नति ''अगले आदेश तक'' मानी जाएगी। आदेशों में यह भी दर्शाया जाना चाहिए कि सरकार को तदर्थ प्रोन्नति रद्द करने का अधिकार है और सरकार किसी भी समय सरकारी सेवक को उस पद पर अवनत कर सकती है जिस पद से उसे प्रोन्नत किया गया है।

5.3. यदि संबंधित सरकारी सेवक को मामले के गुणागुण के आधार पर दांडिक अभियोजन से दोषमुक्त किया जाता है अथवा विभागीय कार्यवाही में पूर्णतः विमुक्त किया जाता है, तो पहले से की गयी तदर्थ प्रोन्नति को संपुष्ट किया जा सकता है और उस प्रोन्नति को समस्त तत्संबन्धी लाभों सहित तदर्थ प्रोन्नति की तिथि से नियमित माना जाएगा। यदि सरकारी सेवक सीलबंद लिफाफे में रखी हुई डी० पी० सी० कार्यवाही में उसके स्थानन को निर्दिष्ट करते हुए, उसके तदर्थ प्रोन्नति की तिथि के पूर्व की तिथि से अपना और उसी डी० पी० सी० द्वारा उसके निकटतम कनीय व्यक्तियों की प्रोन्नति की वास्तविक तिथि से अपनी नियमित प्रोन्नति पाता तो उसे उसकी वरीयता और अभिप्रायात्मक प्रोन्नति, जैसा कि उक्त पैरा, 3 में उल्लिखित है, अनुज्ञात की जाएगी।

7. यहाँ इसमें ऊपर उद्धृत ऑफिस मेमोरैन्डम के उपरोक्त खंडो के परिशीलन से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कतिपय परिस्थितियों में, सरकारी सेवक, जिसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही अथवा दांडिक मामला लंबित है, को तदर्थ प्रोन्नति अनुज्ञात की जा सकती है। खंड 5.2 स्पष्टत: प्रावधान करता है कि यदि सरकारी सेवक को तदर्थ प्रोन्नति अनुज्ञात की जाती है, यह स्पष्ट किया जाना होगा कि ऐसी तदर्थ प्रोन्नति उसे नियमित प्रोन्नति का अधिकार प्रदान नहीं करेगी और अगले आदेश तक ऐसी तदर्थ प्रोन्नति बनी रहेगी। सरकारी सेवक को दांडिक मामले में दोषमुक्त किए जाने अथवा विभागीय कार्यवाही में पूर्णत: विमुक्त किए जाने के बाद ही, इस तरह दी गयी तदर्थ प्रोन्नति संपुष्ट की जा सकती है।

8. आक्षेपित आदेश में, अधिकरण ने दिनांक 14.9.1992 के मेमोटेन्डम के उपरोक्त खंडो की गलत व्याख्या की है मानो कि दांडिक मामला लंबित रहने के बावजूद भी, सरकारी सेवक नियमित प्रोन्नति पाने का हकदार है। यहाँ इसमें नीचे अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का पैरा 12 और 13 उद्धृत करने योग्य है:-

"12. चूँकि परिपत्र पर विश्वास प्रकट किया गया है और परिपत्र प्रथम डी० पी० सी० की तिथि से दो वर्ष पश्चात विचार किया जाना विहित करता है, सामान्यतः यह उपधारित किया जा सकता है कि दिनांक 23.1.1999 से अर्थात् प्रथम डी० पी० सी० की बैठक से दो वर्ष बाद प्रोन्नति हेतु आवेदक पर विचार किया जा सकता है। यदि ऐसा मामला है तब संभवतः आवेदक इस दावे का हकदार नहीं है कि वह श्री नीलमणि, जिन्हें डी० पी० द्वारा दिनांक 26.11.1997 को समाशोधित किया गया था, की प्रोन्नति की तिथि से ही प्रोन्नति पाने का हकदार है। आवेदक की अनवेक्षा करने में कोई अनियमितता नहीं थी, आवश्यकता इस बात की थी कि मुहरबंद लिफाफा कार्यवाही की पद्धति अपनायी जाए। तकनीकी दृष्टि से, अभी भी लिफाफा खोलने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है क्योंकि दांडिक कार्यवाही अभी भी पूरी नहीं हुई है। हमें इसका ध्यान नहीं है कि याची को लाभ सिर्फ डी० ओ० पी० एण्ड टी० के निर्देश के कारण दिया गया है। अतः हमारे विचार में यह समुचित होगा कि हम इस आधार पर अग्रसर हो कि याची को दिनांक 23.2.1999 के प्रभाव से आई० जी० पुलिस के तौर पर प्रोन्नति प्रदान करने के लिए डी० पी० सी० द्वारा योग्य पाया गया माना गया है। तिथि को पीछे नहीं किया जा सकता है, लेकिन इस सीमा तक लाभ देने से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

13. अगला प्रश्न यह है कि क्या अपर डी० जी० के तौर पर प्रोन्नति किए जाने का याची का दावा उसे उसी तिथि के प्रभाव से उपलब्ध माना जाए जबसे श्री कटरिया को वर्ष 2005 में ए० डी० जी० के तौर पर प्रोन्नत किया गया था। हमें पूर्व पीठ के निर्देश को समझना होगा जो अपेक्षा करता है कि डी० पी० सी० आवेदक की प्रोन्नति का पुनर्विलोकन करे जो सिर्फ आई० जी० पुलिस के पद तक सीमित न हो बल्कि उसे ए० डी० जी० के पद के लिए भी समाशोधित करें। ऐसा कोई सुझाव नहीं है कि लंबित दांडिक मामलों को छोड़कर उसके विरुद्ध ऐसा कुछ भी था जो आवेदक को अशक्त करता हो। अतः आवेदक वर्ष 2005 के प्रभाव से ए० डी० जी० कैडर पर प्रोन्नत किए जाने का हकदार है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उसके प्रति कोई दुराग्रह नहीं है। उसे श्री कटरिया के समकक्ष रखा जाना चाहिए क्योंकि डी० पी० सी० का समाशोधन इस कैडर से भी संबंधित माने जाने की अपेक्षा करता है और अन्य मापदंडों पर भी विचार किए जाने की अपेक्षा की जाती है।''

9. अपना सुविचारित विचार प्रकट करने के पश्चात्, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि संबंधित गंभीर गलती की है कि प्रत्यर्थी को दिनांक 23.2.1999 से आई॰ जी॰ पुलिस के तौर पर प्रोन्नत माना जाएगा। हम ऐसा मानते हैं कि अधिकरण इस उपधारणा पर अग्रसर हुआ कि प्रत्यर्थी प्रोन्नति के योग्य है। अधिकरण ने यह घोषणा करने में विधि संबंधी गंभीर गलती की है कि प्रत्यर्थी को दिनांक 29.4.2005 के पश्चातवर्ती प्रभाव से अपर पुलिस महानिदेशक के पद पर प्रोन्नति प्रदान की जाए। संभवतः, अधिकरण ने प्रोन्नति संबंधी विधि का गलत अर्थ लगाया है क्योंकि सरकारी सेवक अधिकार के आधार पर प्रोन्नति का दावा नहीं कर सकता है। अधिक से अधिक एक सरकारी सेवक अपनी प्रोन्नति के मामले पर विचार किए जाने के लिए न्यायालय अथवा अधिकरण से निर्देश चाह सकता है। चाहे जो भी हो, स्वीकृत तौर पर सी॰ बी॰ आई॰ ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध मामला संस्थापित किया है और उस मामले में आरोपपत्र पहले ही दाखिल किया जा चुका है। सिर्फ इसलिए कि वर्ष 1986 से दांडिक मामला लंबित है, अधिकरण को ऐसी राहत नहीं देनी चाहिए थी जो विधि में अनुज्ञेय नहीं है। अतः आक्षेपित आदेश, विधि में कायम नहीं किया जा सकता है।

10. उपरोक्त कारणों से, यह आवेदन अनुज्ञात की जाती है और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

बिमल कुमार एवं एक अन्य

बनाम

शकुन्तला देवी एवं अन्य

Miscellaneous Appeal No. 369 of 2008. Decided on 18th November, 2009.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XLI नियम 19 सह-पठित धाराएँ 148 और 151—अभिधान अपील, जिसे उल्लिखित अवधि के भीतर न्यायालय के आदेश के अभिकथित अननुपालन के कारण खारिज कर दिया गया था, के पुर्नग्रहण के लिए दी गयी याचिका की अस्वीकृति–सिर्फ गैरहाजिर प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध ही अपील खारिज की जा सकती है–गैरहाजिर प्रत्यर्थीगण की अनुपस्थिति के कारण अपील निपटाया जा सकता है क्योंकि न्यायालय को आदेश के अनुपालन का समय बढ़ाने की शक्ति है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–अपीलार्थीगण

द्वारा प्रत्यर्थीगण को 10,000/- रुपयों का भुगतान करने के अध्यधीन अभिधान अपील को मूल फाइल में प्रत्यावर्तित किया गया। (पैरा 4 से 8)

अधिवक्तागण.—M/s P.K. Prasad, Rohit Roy, Ayush Aditya, For the Appellants; M/s. B.K. Prasad, Amit Kumar Das, For the Respondents.

आदेश

यह अपील विविध केस सं० 1 वर्ष 2004, जिसे अभिधान अपील सं० 109 वर्ष 1994 के पुनर्ग्रहण हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI, नियम 19 सह-पठित धारा 151 के अधीन अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल किया गया था, में विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ० टी० सी०-VI, राँची द्वारा दिनांक 3.10.2008 को पारित आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी० के० प्रसाद निवेदन करते हैं कि उक्त अपील को दिनांक 20.12.2003 के आदेश के अननुपालन के कारण खारिज कर दिया गया था जिसका अनुपालन दिनांक 7.1.2004 को किया जाना था लेकिन अपील को दिनांक 6.1.2004 को खारिज कर दिया गया था, और इसके अतिरिक्त पूरी अपील को खारिज नहीं किया जा सकता था और अधिक से अधिक इसे सिर्फ अनुपस्थित प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध खारिज किया जा सकता था; कि अपीलार्थीगण के पूर्व व्यवहार को विचार में नहीं लिया जा सकता था; कि वादीगण-अपीलार्थीगण द्वारा दो गवाहों का परीक्षण यह दर्शाने के लिए किया गया था कि उनकी धारणा के अनुसार नियत तिथि 7.1.2004 है न कि 6.1.2004।

3. प्रत्यर्थी सं० 1 से 5 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री बी० के० प्रसाद और प्रत्यर्थी सं० 7 और 58 की ओर से उपस्थित, श्री ए० के० दास ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है और निवेदन किया है कि अपीलार्थीगण की दिलचस्पी सिर्फ मामले को लंबा खींचने और प्रत्यर्थीगण जो विगत कई दशकों से पहले ही न्यायालय के समक्ष है को परेशान करने में है।

4. यह सत्य है कि वाद को काफी पहले वर्ष 1973 में स्व० किशोरी लाल कसेरा द्वारा दाखिल किया गया था और इसे वर्ष 1994 में खारिज कर दिया गया था और उक्त अपील कुछ प्रत्यर्थीगण की उपस्थिति की प्रतीक्षा किए जाने के कारण वर्ष 1994 से अभी भी लंबित है; और अनेक आदेशों के बावजूद अपीलार्थीगण ने अनुपस्थित प्रत्यर्थीगण पर नोटिस तामील करने के लिए कदम नहीं उठाया, लेकिन यह भी सत्य है कि पूरी अपील को खारिज नहीं किया जा सकता था भले ही कदम उठाने हेतु नियत तिथि दिनांक 6.1.2004 थी और इसे सिर्फ अनुपस्थित प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध ही खारिज किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थीगण की ओर से परीक्षित गवाहों ने कहा था कि उनकी धारणा थी कि नियत तिथि 7.1.2004 थी, और तब तुरन्त ही दिनांक 16.1.2004 को अपीलार्थीगण ने अपील अर्थात् विविध केस सं० 1 वर्ष 2004 के पुनर्ग्रहण हेतु यह याचिका दाखिल किया था।

5. इन परिस्थितियों में, मैं दिनांक 20.12.2003 के आदेश के अनुपालन की तिथि को दिनांक 30.11.2009 तक बढ़ाने और अपील को पुर्नस्थापित करने के पक्ष में हूँ। पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सहमत हैं कि गैर हाजिर प्रत्यर्थीगण की अनुपस्थिति में इस अपील को निपटाया जा सकता है क्योंकि न्यायालय को आदेश के अनुपालन का समय बढ़ाने की शक्ति है।

6. तद्नुसार, आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और अभिधान अपील सं० 109 वर्ष 1994 को मूल फाइल में पुर्नस्थापित किया जाता है। अपीलार्थीगण को टी० ए० सं० 109 वर्ष 1994 में दिनांक 20.12.2003 को पारित आदेश का दिनांक 30 नवम्बर, 2009 तक अनुपालन करने का निर्देश दिया जाता है और पक्षों को इस तिथि पर विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रात: 11 बजे उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

7. अवर न्यायालय सुनिश्चित करेगा कि प्रकाशन की प्रक्रिया/नोटिस का तामीला जल्द से जल्द, बेहतर होगा दो महीने के भीतर, पूरी की जाए और अपील को दैनिक आधार पर सुना जाए और इसे नोटिस की तामीला की तिथि से दो महीने के भीतर शीघ्रता से निपटाया जाए। अपील को जल्द निपटाने हेतु पक्षों को अवर अपीलीय न्यायालय से हर तरह का सहयोग करने का निर्देश दिया जाता है।

8. लेकिन, अपीलार्थीगण के पूर्व व्यवहार की दृष्टि में, यह आदेश प्रत्यर्थीगण 1 से 5 तक को आज से दो सप्ताह के भीतर 10,000/- रुपयों का भुगतान करने के अधीन है जिसमें विफल रहने पर यह आदेश स्वत: वापस लिया माना जाएगा।

9. दिनांक 30 नवम्बर, 2009 तक पक्षों द्वारा यथास्थिति बनाए रखना होगा।

इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ, यह अपील निपटाया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

सुश्री अनुराधा बसु

बनाम

स्टील ऑथोरिटी ऑफ इंडिया, बोकारो स्टील प्लान्ट एवं अन्य

W.P. (S.) No. 1334 of 2003. Decided on 4th November, 2009.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–वर्खास्तगी–कम्पनी के आवास गृह में अनधिकृत निर्माण–जाँच अधिकारी का निष्कर्ष कि याची द्वारा अनधिकृत निर्माण किया गया था, अटकलों एवं अनुमानों पर आधारित है–बिना अपने स्वतंत्र विवेक का प्रयोग किए, अनुशासनिक प्राधिकारी ने सेवा से बर्खास्तगी की अत्यधिक सजा दी–यद्यपि, उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में अभिकथित अनधिकृत निर्माण को याची द्वारा पहले ही हटाया जा चुका था–बर्खास्तगी का आदेश अपास्त। (पैरा 12 से 17)

अधिवक्तागण.–M/s K. Bahadur, Rama Kant Tiwari, For the Petitioner; Mr. G.M. Mishra, For the Respondents.

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.–पक्षों को सुना गया।

2. याची सुश्री अनुराधा बसु स्टील ऑथरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड की एक समनुषंगी कम्पनी बोकारो स्टील लिमिटेड के चिकित्सा विभाग में उप-प्रबंधक (परिचर्या) स्टाफ सं० 085333 थी। उसे बोकारो स्टील सिटी में सेक्टर-IV/C में आवास गृह सं० 2003 आबंटित किया गया था और वह वर्ष 1988 से उक्त आवास गृह में निवास कर रही थी। वर्ष 2001 में, स्टील ऑथोरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड ने कर्मचारियों, भूतपूर्व कर्मचारियों, मृत कर्मचारियों के पति/पत्नी को लंबी अवधि के पट्टे के आधार पर और उपर्युक्त योजना में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों पर कम्पनी के गृह/फ्लैट के अर्जन हेतु 'कर्मचारियों को आवास पट्टा देने हेतु एस० ए० आई० एल० योजना-2001' नामक एक योजना चालू किया और तद्नुसार योजना के अधीन आच्छादित व्यक्तियों से आवेदन मांगा गया था।

3. याची ने आवास गृह, जो उसके कब्जे में था और जिसे कम्पनी द्वारा उसे पहले ही आबंटित किया जा चुका था, पाने के लिए योजना के मुताबिक आवेदन दिया। कम्पनी ने उक्त योजना के अधीन

उक्त आवास गृह उसे आबंटित किया और 3,10,000/- रुपये की प्रीमियम तय किया गया। याची ने कम्पनी के निर्देश के मुताबिक उक्त राशि किस्तों में जमा किया। उक्त आवास गृह का भूतल आवास गृह सं॰ 2001 के तौर पर चिन्हित और संख्यांकित किया गया और यह किसी डॉ॰ (श्रीमती) बिमला सिंह के कब्जे में था।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विवाद के कारण, डॉ॰ (श्रीमती) विमला सिंह, भूतल अर्थात् आवास गृह सं॰ 2001 की अधिभोगी, ने बोकारो स्टील कम्पनी के प्रबंधन को सूचना दी कि याची उसके आवास गृह सं॰ 2003 के छत पर अनधिकृत निर्माण कर रही है और छत पर उक्त अनधिकृत निर्माण के कारण भवन को नुकसान हो रहा है क्योंकि इसमें दरारें पड़ गयी है। दूसरी ओर याची ने छत पर किसी निर्माण के आरोप से इन्कार किया। दोनों पक्ष एक-दूसरे के विरुद्ध आरोप-प्रत्यारोप लगाते रहे और तब यह प्रकट होता है कि नियोक्ता-कम्पनी बोकारो स्टील लिमिटेड ने याची के विरुद्ध कार्रवाई की।

5. याची को उसके द्वारा छत पर पहले ही किए गए अभिकथित अनधिकृत निर्माण को हटाने के लिए उसके नियोक्ता–बोकारो स्टील लिमिटेड द्वारा नोटिस और स्मरण पत्र तामील किया गया और अंततः दिनांक 19.6.2002 को याची पर आरोप का ज्ञापन तामील किया गया और उसे अपने बचाव का लिखित कथन दाखिल करने को कहा गया। याची के विरुद्ध निम्नलिखित आरोप थे:-

'...........

कि सुश्री ए० बसु, उप-प्रबंधक (परिचर्या) स्टाफ सं० 085333, चिकित्सा विभाग, ने कर्मचारियों को आवास गृहों का पट्टा देने के लिए एस० ए० आई० एल० योजना-2001 के अधीन लंबी अवधि के पट्टे के आधार पर उसे आबंटित आवास गृह सं० 04 सी०/सी०/2003 के छज्जे/छत पर अनधिकृत रूप से कमरों का निर्माण किया। उसे अनधिकृत निर्माण को तोड़ने का निर्देश देते हुए जारी किए गए पत्रों/नोटिसों के बावजूद वह उक्त निर्देश का अनुपालन करने में विफल रही और कर्मचारियों को आवासगृहों का पट्टा देने के लिए एस० ए० आई० एल० योजना-2001 के खंडों 13.1 और 13.7, उक्त आवास गृह के आबंटन आदेश के खंड (xi) और ईस्टेट मैनुअल के प्रावधानों का उल्लंघन करके अवचार किया है।

अतः प्रबंधन के अनुसार, सुश्री ए० बसु ने निम्नलिखित अवचार के कृत्य किए हैं:-

(i) वह उस तरह का आचरण करने में विफल रही है जो कम्पनी की प्रतिष्ठा को बढ़ाए।

(ii) कम्पनी के संपत्ति अथवा, कारोबार संबंध में बेईमानी

(iii) कम्पनी के हितों के प्रतिकूल कार्य करना

(iv) कम्पनी की संपत्ति को नुकसान कारित करना।

(v) सद्व्यवहार और अनुशासन को ध्वस्त करने वाला कृत्य करना और इस प्रकार एस० ए० आई० एल० आचरण, अनुशासन और अपील नियमावली, 1977 के खंड 4.0(1)(iii), 5.0 (1), 5.0(5), 5.0 (10) और 5.0 (20) का उल्लंघन।

6. अंततः कथित रूप से उसके द्वारा की गयी उपर्युक्त अभिकथित अवचार के लिये याची के विरुद्ध प्रबंधन द्वारा विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी।

7. जाँच अधिकारी द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची के विरुद्ध आरोप सिद्ध हुए थे जाँच रिपोर्ट दाखिल की गयी थी। याची को एक द्वितीय कारण बताओ नोटिस दिया गया था जिसका उसने उत्तर दिया और तत्पश्चात दिनांक 14.2.2003 को एक आदेश जारी करके अनुशासनिक प्राधिकारी ने याची को तत्काल प्रभाव से सेवा से बर्खास्त कर दिया जिसे इस रिट याचिका में याची द्वारा चुनौती दी गयी है।

8. याची का मुख्य परिवाद यह है कि जाँच अधिकारी का निष्कर्ष अनुचित है क्योंकि यह अभिलेख पर लायी गयी सामग्री और साक्ष्य पर आधारित नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य के बावजूद जाँच अधिकारी ने अपने निष्कर्षों को अभिलेख पर लाये गये साक्ष्यों को नजरअंदाज/अस्वीकार करके अपनी उपधारणा पर आधारित किया है। अनुशासनिक प्राधिकारी ने अपने विवेक का प्रयोग किए बिना बर्खास्तगी का आदेश पारित किया है और इस प्रकार यह अभिखंडित करने योग्य है।

9. यह भी प्रतिवाद किया गया है कि उसके विरुद्ध अभिकथित अवचार का उसके नियोजन से कोई संबंध नहीं है। उसके अनुसार उसने एस० ए० आई० एल० के आचरण, अनुशासन और अपील नियमावली, 1977 के अधीन कोई भी अवचार नहीं किया है और इस प्रकार अभिकथित अनधिकृत निर्माण के लिए उसके विरुद्ध आचरण, अनुशासन और अपील नियमावली, 1977 के अधीन विभागीय कार्यवाही नहीं की जा सकती है और उसे सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता था। आगे, उसके अनुसार, यदि उसने कोई अनधिकृत निर्माण किया भी है तो अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उसने पट्टे जिसके अधीन उसे आवासगृह आबंटित किया गया था, के निबंधनों और शर्तों का उल्लंघन किया है और पट्टा करार के किसी निबंधन एवं शर्त का उल्लंघन करने के लिए प्रत्यर्थी अधिक से अधिक पट्टा करार में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों के प्रावधानों का सहारा ले सकता था अथवा वैकल्पिक रूप से सार्वजनिक परिसर (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के अधीन याची के विरुद्ध कार्रवाई कर सकता था, लेकिन किसी भी सूरत में, उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही नहीं की जा सकती थी अथवा 'कर्मचारियों को आवासगृहों का पट्टा देने के लिए एस० ए० आई० एल० योजना 2001 के निबंधनों और शर्तों को किसी भी तरीके से अभिकथित तौर पर भंग करने के लिए, जिसका उसके नियोजन से कोई संबंध नहीं है, सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता था और इस प्रकार याची के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा पारित बर्खास्तगी का आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है।

10. योजना अर्थात् कर्मचारियों को आवास गृहों का पट्टा देने के लिए एस० ए० आई० एल० योजना-2001' जिसके अधीन याची को उक्त आवास गृह दिया गया था, तर्क किए जाते समय मेरे सामने प्रस्तुत किया गया है।

प्रश्नगत योजना के प्रावधानों का परिशीलन करने से यह प्रकट होता है कि उक्त करार का खंड 13.0 योजना के निबंधनों और शर्तों को बताता है।

खंड 13.1 यह परिकल्पित करता है कि पट्टाधारी पट्टे पर दिए गए परिसर में कोई परिवर्धन/संरचनात्मक परिवर्तन नहीं करेगा और खंड 13.12 बताता है कि पट्टाकर्ता को पट्टे के किसी भी निबंधनों और शर्तों का उल्लंघन किए जाने की स्थिति में पट्टाधारी को तीन महीने का नोटिस देकर पट्टे का पर्यवसान करने का अधिकार होगा और इस तरह पर्यवसान किए जाने पर पट्टाकर्ता को परिसर से पट्टाधारी को बेदखल करने का हक होगा।

खंड 13.14 बताता है कि पट्टा सार्वजनिक परिसर (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के प्रावधानों और/अथवा इस संबंध में लागू किसी अन्य प्रासंगिक अधिनियम/कानून द्वारा शासित होगा।

याची के अनुसार यदि उसने 'कर्मचारियों को आवास गृहों का पट्टा देने के लिए एस० ए० आई० एल० योजना-2001 के किसी भी निबंधन का उल्लंघन किया था तब ऊपर उल्लिखित योजना के उप-खंडों 13.12 और 13.14 का सहारा लिया जा सकता था।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-एस० ए० आई० एल० की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जी० एम० मिश्रा ने प्रतिशपथ पत्र में किए गए प्रकथनों पर विश्वास प्रकट करते हुए और याची के तर्क का विरोध करते हुए निवेदन किया है दो मंजिले ब्लॉक के प्रथम तल पर बना आवास गृह 2003 को याची को आबंटित किया गया था जबकि आवास गृह सं० 2001 भूतल पर है और याची द्वारा दखल आवास गृह के ठीक नीचे है। आवास गृह सं० 2001 को प्रत्यर्थी एस० ए० आई० एल० के एक अन्य कर्मचारी अर्थात् डॉ० (श्रीमती) विमला सिंह को आबंटित किया गया था और उसने सूचना दी कि याची ने अनधिकृत रूप से छत पर दो कमरों का निर्माण किया है जिसके परिणामस्वरूप आवास गृह सं० 2001 में कई दरारें पड़ गयी है। याची को प्रत्यर्थी कम्पनी द्वारा अनधिकृत निर्माण तोड़ने के लिए अनेक नोटिसें तामील की गयी थी लेकिन उसने प्रत्यर्थी बोकारो स्टील लिमिटेड के शहरी प्रशासन विभाग द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन नहीं किया था और इस तरह उसके क्रियाकलाप के परिणामस्वरूप कम्पनी की संपत्ति को नुकसान पहुँचा और इस कारण बोकारो स्टील लिमिटेड ने आचरण, अनुशासन और अपील नियमावली, 1977 के अधीन प्रदत्त अधिकारों का सहारा लिया और कम्पनी के प्रासंगिक नियमावली के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई की गयी और विभागीय कार्यवाही के पश्चात् जब आरोपों को सिद्ध पाया गया, याची को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है।

12. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों में इस पर विचार किया जाना होगा कि क्या याची के विरुद्ध उसके द्वारा अपने आवास गृह के छत पर किये गये अभिकथित अनधिकृत निर्माण, जिसे अपने नियोक्ता के निर्देश के बावजूद वह तोड़ने में विफल रही, के कृत्य के लिए एस० ए० आई० एल० आचरण, अनुशासन और अपील नियमावली 1977 के अधीन विभागीय कार्यवाही की जा सकती है और क्या उसे इस आधार पर कि उसने अवचार किया है सेवा से बर्खास्त किया जा सकता है। आगे, क्या जाँच अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अनुचित है और किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है और क्या अनुशासनिक प्राधिकारी ने बिना विवेक का प्रयोग किए सेवा से बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित किया है।

13. जहाँ तक पहले आरोप कि याची उस तरह का आचरण, जो कम्पनी की प्रतिष्ठा को बढ़ाए, करने में विफल रही है का संबंध है, जाँच रिपोर्ट जिसे रिट याचिका के साथ उपाबद्ध किया गया है से प्रकट है कि जाँच अधिकारी ने साक्ष्य का मूल्यांकन करके अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि सुश्री बसु के गवाहों ने उसके इस कथन की संपुष्टि की है कि छत पर निर्माण पहले से ही मौजूद था, फिर भी इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था क्योंकि कोई भी पूर्व अधिभोगी इस तरह के निर्माण सामग्रियों को छोड़ कर जाना नहीं चाहेगा और इसलिए निर्माण याची द्वारा ही किया गया था।

जाँच अधिकारी का उक्त निष्कर्ष अटकलों और अनुमानों पर आधारित है। जाँच अधिकारी ने स्वयं अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि गवाहों ने याची के कथन को संपुष्ट किया है लेकिन उसने अपनी उपधारणा कि अनधिकृत निर्माण याची द्वारा ही किया गया है के आधार पर इस साक्ष्य को नहीं माना है। मैं नहीं पाता हूँ कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री अथवा साक्ष्य है जिससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जाए।

14. जाँच रिपोर्ट से प्रकट है कि जाँच अधिकारी ने अलग-अलग आरोपों पर विचार नहीं किया है; बल्कि वह जल्दबाजी में इस निष्कर्ष पर आया है कि आरोप सिद्ध कर दिए गए हैं क्योंकि उनकी उपधारणा के मुताबिक अनधिकृत निर्माण याची द्वारा ही किया गया है। अनुशासनिक प्राधिकारी ने भी जिन्होंने आक्षेपित आदेश पारित किया है, अपने विवेक का प्रयोग किए बिना और जाँच रिपोर्ट का सही परिप्रेक्ष्य में गहन परीक्षण किए बिना सेवा से बर्खास्तगी की अत्यधिक सजा दी है।

15. यद्यपि ऐसा दर्शाने की कोई सामग्री नहीं है कि अभिकथित निर्माण याची द्वारा ही किया गया था लेकिन मामले को किसी भी दृष्टिकोण से देखने पर यह प्रकट है कि इस रिट याचिका के लम्बित रहने के दौरान याची ने एक पूरक शपथपत्र दाखिल करके कथन किया है कि इस न्यायालय के आदेश के मुताबिक उसने पहले ही अपने आवास गृह की छत पर किए गए अभिकथित अनधिकृत निर्माण को तोड़ दिया है और हटा दिया है और उसने दिनांक 2.7.2004 को दाखिल अपने पूरक शपथ पत्र के साथ उपाबद्ध दस्तावेज को अभिलेख पर लाया है जो दर्शाता है कि नियोक्ता ने भी उक्त तथ्य को स्वीकार किया है और दिनांक 17/18.6.2004 को इस प्रभाव का पत्र जारी किया है कि झारखण्ड उच्च न्यायालय के निर्देश के मुताबिक आवास गृह सं॰ 2003 के छत पर निर्मित अनधिकृत कमरों को तोड़ दिया गया है। यह भी अभिलेख पर लाया गया है कि अभिकथित अनधिकृत निर्माण को तोड़े जाने के बाद प्रत्यर्थी एस॰ ए॰ आई॰ एल॰ ने याची के साथ दिनांक 8 जुलाई 2004 का पट्टा करार किया है।

16. उक्त चर्चा और निष्कर्षों की दृष्टि में, मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि कथित तौर पर याची द्वारा किए गए अभिकथित अनधिकृत निर्माण के बारे में जाँच अधिकारी का निष्कर्ष अनुचित है और अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों और साक्ष्य के विरुद्ध है। अग्रेतर, मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि अनुशासनिक प्राधिकारी ने अपने स्वतंत्र न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना और अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों और साक्ष्य पर विचार किए बिना यांत्रिक रूप से सेवा से बर्खास्तगी की सजा का आक्षेपित आदेश पारित किया है और इस कारण दिनांक 14.2.2003 को अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा याची के विरुद्ध पारित बर्खास्तगी का ऐसा आदेश, जो परिशिष्ट-4 में अंतर्निहित है, को विधि में कायम नहीं रखा जा सकता है।

17. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका एतद्द्वारा अनुज्ञात की जाती है। याची को सेवा से बर्खास्त करने वाले परिशिष्ट-4 में अंतर्निहित दिनांक 14.2.2003 के आदेश को अभिखंडित किया जाता है। चूँकि उक्त बिन्दुओं पर यह रिट याचिका अनुज्ञात की गयी है और इस प्रकार याची द्वारा उठाए गए अन्य प्रश्नों पर विचार किया जाना आवश्यक नहीं है। प्रत्यर्थियों को एतद्द्वारा निर्देश दिया जाता है कि वे दो सप्ताह के भीतर पारिणामिक आदेश जारी करें और याची को उस अवधि के दौरान, जब उसे सेवा से बाहर रहने के लिए मजबूर किया गया था, सेवारत माने। व्यय का कोई आदेश नहीं है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद न्यायमूर्ति

सरिता देवी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 167 of 2008. Decided on 16th November, 2009.

दांडिक विधि–अन्वेषण–याची को अपराधिक गैंन्ग का एक सदस्य होने के संदेह पर पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया–याची ने अपने को निर्दोष बताते हुए किसी स्वतंत्र एजेन्सी

द्वारा अपने मामले की जाँच करवाने की प्रार्थना की है–लेकिन याची के मत का राज्य द्वारा खंडन किया गया है–अन्वेषण के बाद मामला सत्य पाया गया और पुलिस द्वारा अंतिम फॉर्म प्रस्तुत किया गया–जिला पुलिस द्वारा पहले ही अन्वेषण पूरा किए जाने के कारण किसी अन्य एजेन्सी को अन्वेषण का भार सौंपने योग्य मामला नहीं है–याची को अवर न्यायालय के समक्ष सारे बिन्दुओं को उठाने की स्वतंत्रता दी गयी। (पैरा 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Shailesh, For the Petitioner; J.C. to G.P.-II, For the State.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि विजय कुमार, याची के पति, को दिनांक 21.6.2008 को हिनू स्थित आइलेक्स मल्टीप्लेक्स से सिनेमा देख कर बाहर आते समय किसी कारगिल यादव के साथ पुलिस द्वारा इस बहाने पकड़ा गया कि वह आपराधिक रिकार्ड वाले कारगिल यादव के सहयोगियों में से एक है, और इस तथ्य को समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया जिसकी कटिंग रिट याचिका के साथ उपाबद्ध है, लेकिन दो दिनों बाद चान्हो पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गयी जिसमें अभिकथन किया गया कि जब उसने एक जंगल में पुलिस दल के साथ छापामारी की तो उन्होंने किसी कारगिल यादव, जो जे॰ एल॰ टी॰ नामक प्रतिबंधित संगठन का सदस्य है के साथ-साथ विजय कुमार, याची का पति, को पकड़ा और तलाशी लेने पर उन दोनों के पास से आग्नेयास्त्र और कुछ पैसे, जिसे उद्यापन द्वारा इकट्ठा किया गया पैसा अभिकथित किया गया है, पाए गए और इस आचार पर चान्हो पी॰ एस॰ केस सं॰ 54 वर्ष 2008 के तौर पर प्राथमिकी दर्ज की गयी, लेकिन यह अभिकथन समाचार पत्रों के रिपोर्ट से झूठा साबित होता है जिसे दूसरे दिन ही प्रकाशित किया गया था जब कारगिल यादव अपने मित्रों के साथ आइलेक्स मल्टीप्लेक्स के निकट पकड़ा गया था। वस्तुत: विजय कुमार, याची के पति, का उग्रवादी समूह के सदस्यों में से किसी के भी साथ कोई संबंध नहीं है और इस तरह पुलिस ने याची के पति को झूठा फँसाया है और उसे उग्रवादी समूह का सदस्य गलत रूप से करार दिया है और इन स्थितियों के अंतर्गत याची द्वारा अन्वेषण को किसी अन्य स्वतंत्र एजेन्सी को देने की प्रार्थना की गयी है ताकि वास्तविक तथ्य सामने आ सके।

3. लेकिन राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि एक प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें यह कथन किया गया है कि पुलिस ने मामले का अन्वेषण करने के बाद अभिकथनों को सत्य पाया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 384, 386, 414/34 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) A, 26, 35 के अधीन और सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 के अधीन अंतिम फॉर्म जमा किया है और यह कि याची के पति को आइलेक्स मल्टीप्लेक्स, हिनू से गिरफ्तार नहीं किया गया था बल्कि उसे चान्हो के निकट एक जंगल से गिरफ्तार किया गया है।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं इस मामले को अन्वेषण के लिए किसी अन्य स्वतंत्र एजेन्सी को सौंपे जाने लायक नहीं पाता हूँ जब जिला पुलिस द्वारा पहले ही अन्वेषण पूरा कर लिया गया है।

5. फिर भी, याची को उचित चरण पर अवर न्यायालय के समक्ष इन सारे अभिवाकों, जिन्हें इस रिट याचिका में अपनाया गया है, को उठाने की स्वतंत्रता होगी।

6. इस संप्रेक्षण के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

अर्चना राय

बनाम

झारखण्ड राज्य, मुख्य सचिव, झारखण्ड सरकार, राँची के माध्यम से एवं अन्य।

W.P.(S) No. 6179 of 2008. Decided on 4th November, 2009.

झारखण्ड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000—धारा 57(2)(B)–व्याख्याता के पद के लिए चयन–व्याख्याता के पद पर चयन हेतु कोई लिखित परीक्षा विहित नहीं की गयी है–जे॰ पी॰ एस॰ सी॰ द्वारा सिर्फ मौखिक परीक्षा नियत की गयी है–मौखिक परीक्षा में 40% अंक नियत किया जाना मनमानी कार्रवाई नहीं है–चयन प्रक्रिया को चुनौती देती याचिका खारिज। (पैरा 2 से 4)

निर्णयज विधि.–W.P. (C) Nos. 270/2008, 881/2008—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s Kanti Kumar Ojha, Rakesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Sanjoy Piprawall, For the J.P.S.C.

आदेश

झारखण्ड लोक सेवा आयोग द्वारा वर्तमान याची का व्याख्याता के तौर पर चयन नहीं करने के कारण वर्तमान याचिका दायर की गयी है। दिनांक 31 जनवरी, 2007 के सार्वजनिक विज्ञापन का अनुसरण करते हुए याची मौखिक परीक्षा में उपस्थित हुई और तत्पश्चात् साक्षात्कार कमिटी द्वारा उसका मूल्यांकन किया गया और वर्तमान याची का संपूर्ण प्रस्तुतीकरण देखते हुए अंक प्रदान किया गया और क्रमानुसार क्रमांकित किया गया। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मौखिक परीक्षा हेतु 40% अंक का नियतीकरण मनमानी कार्रवाई है और इस प्रकार व्याख्याता पद हेतु प्रत्यर्थीगण की चयन प्रक्रिया अभिखंडित और अपास्त करने योग्य है।

2. यह विवाद्यक अनेक रिट याचिकाओं, उदाहरणस्वरूप 20 मार्च 2009 को विनिश्चित डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 270 वर्ष 2008, 21 जुलाई 2009 को विनिश्चित डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1069 वर्ष 2008 एवं डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 881 वर्ष 2008, 9 अक्टूबर 2009 को विनिश्चित डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6251 वर्ष 2008 और 25 अगस्त, 2009 को विनिश्चित डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 904 वर्ष 2008, में इस न्यायालय द्वारा पहले ही निर्णीत किया जा चुका है। इन सारी रिट याचिकाओं में, इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मौखिक परीक्षा हेतु 40% अंक का नियतीकरण मनमानी कार्रवाई मुख्यत: इस कारण से नहीं है क्योंकि झारखण्ड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 57(2)(B) के अधीन चयन हेतु प्रक्रिया विहित है और व्याख्याता पद पर चयन हेतु कोई लिखित परीक्षा विहित नहीं की गयी है और इस प्रकार झारखण्ड लोक सेवा आयोग द्वारा सिर्फ मौखिक परीक्षा नियत की गयी है। इस तरह, वे निर्णय जिन पर याची के अधिवक्ता ने विश्वास प्रकट किया है वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते है। उपर्युक्त निर्णयों में दिये गये कारण मौखिक

परीक्षा हेतु 40% अंक का नियतीकरण अनुमोदित करने के लिए इस न्यायालय द्वारा स्वीकृति दिए गए हैं। दिनांक 21 जुलाई, 2009 के आदेश के मुताबिक डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 881 वर्ष 2008 और डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1069 वर्ष 2008 में पैराग्राफ 3, 4 और 5 में इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:-

"3. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों विशेषतः झारखण्ड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 57 (2)(B) को देखते हुए और दिनांक 31 जनवरी 2007 के सार्वजनिक विज्ञापन को देखते हुए और दिनांक 16 मार्च 2007 को दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित विज्ञापन और दिनांक 20 मार्च 2009 को डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 270 वर्ष 2008 में दिए गए निर्णय में निर्दिष्ट अनेक निर्णयों को देखते हुए, व्याख्याता पद के लिए उम्मीदवारों की चयन प्रक्रिया में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता अथवा अवैधता नहीं है। चूँकि वर्तमान मामले में कोई लिखित परीक्षा नहीं ली गयी है, अतः मौखिक परीक्षा के लिए आबंटित अंक को मनमाना, अनुचित अथवा असद्भावपूर्ण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह अधिनियम, 2000 की धारा 57 के अधीन कानूनन अपेक्षित नहीं है। जब व्याख्याताओं की नियुक्ति की जानी है, तो उनकी शैक्षिक अर्हताओं, आदि का समुचित मूल्यांकन करना होगा और इस कारण शैक्षिक अर्हताओं और उपलब्धियों के लिए 60% अंक आबंटित किए गए हैं लेकिन ऐसा हो सकता है कि कुछ उम्मीदवारों ने सिलेबस के एक अंश का अध्ययन किया हो। इसी तरह हो सकता है कि उन उम्मीदवारों द्वारा नये सिलेबस के एक अंश का अध्ययन नहीं किया गया हो। इस प्रकार, नए सिलेबस के बारे में उनका ज्ञान जाँचने के लिए मौखिक परीक्षा हेतु 40% अंक आबंटित किए गए हैं और इसे मनमानी कार्रवाई नहीं कहा जा सकता है बल्कि इसके विपरीत मौखिक परीक्षा हेतु 40% अंक नियत किया जाने के लिए वैध और विश्वसनीय तर्क हैं। जब कभी भी झारखण्ड लोक सेवा आयोग उम्मीदार का चयन कर रहा हो आयोग द्वारा सारी सावधानी बरती जानी चाहिए ताकि किसी विशेष संकाय के नवीनतम सिलेबस का पूर्ण ज्ञान रखने वाले उम्मीदवार का चयन किया जा सके अन्यथा यदि शैक्षिक अर्हताओं के लिए शत-प्रतिशत अंक आबंटित किए जाते है, तो ऐसी पूरी संभावना है कि वैसे उम्मीदवारों, जिन्होंने नये सिलेबस का अध्ययन कभी नहीं किया हो लेकिन स्नातक अथवा स्नातकोत्तर अध्ययन के दौरान ऊँचे अंक पाये हों, का चयन हो जाए परन्तु यह चयन का सही अथवा स्वस्थ तरीका नहीं है और इसलिए नवीनतम सिलेबस के ज्ञान की दृष्टि से किसी उम्मीदवार का मूल्यांकन करने के लिए झारखण्ड लोक सेवा आयोग द्वारा सही अधिमान दिया गया है।

4. मौखिक परीक्षा हेतु 40% अंक के आबंटन के लिए एक कारण और भी है। प्रासंगिक पद के लिए किसी उम्मीदवार की उपर्युक्तता जाँचने के लिए मौखिक परीक्षा लिया जाना एक मुख्य सिद्धान्त है। पद पर नियुक्ति के लिए स्नातक अथवा स्नातकोत्तर परीक्षा में प्राप्त अंक का उच्चतर प्रतिशत सहायक नहीं है। शैक्षणिक अर्हता एकमात्र मानदंड नहीं है। उम्मीदवार तत्परतापूर्वक उत्तर दे रहा है या नहीं, उम्मीदवार का व्यवहार किस प्रकार का है, उम्मीदवार का स्वभाव कैसा है विशेषतः जब कठिन प्रश्न पूछे जा रहे हों, उम्मीदवार की सहानुभूति और तत्परता और सहनशक्ति और ऐसी अन्य योग्यताएँ मौखिक परीक्षा में जाँची जाएँगी और इस कारण, मौखिक साक्षात्कार और इसके लिए 40% अंक के नियतीकरण को वर्तमान मामले के तथ्यों में मनमानी कार्रवाई करार नहीं किया जा सकता है।

5. याचियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जोर देकर प्रतिवाद किया गया है कि 40% और 60% का अनुपात एक दूसरे से मेल नहीं खाता है। शैक्षिक अर्हताओं के लिए ज्यादा अंक दिए जाने चाहिए थे। इस प्रतिवाद को इस न्यायालय द्वारा मुख्यतः इस कारण स्वीकार नहीं किया गया है क्योंकि स्नातक अथवा स्नातकोत्तर परीक्षा में प्राप्त उच्चतर अंक प्रतिशत अध्यापन की योग्यता नहीं प्रदान करता है क्योंकि अध्यापन एक कला है और किसी विशेष उम्मीदवार के चयन हेतु अनेक अन्य कारकों को जाँचना होगा जैसा कि इसमें उपर कहा गया है क्योंकि शिक्षक को नवयुवक छात्रों के साथ व्यवहार करना है। इस याचिका में सिर्फ यही प्रतिवाद उठाया गया है जबकि अन्य उम्मीदवारों द्वारा अनेक प्रतिवाद पहले ही किए गए हैं और जिन्हें पहले ही रिट याचिका डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 270 वर्ष 2008 में निर्णीत किया गया है और इस निर्णय की दृष्टि में भी, इस याचिका में कोई सार नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है।"

उपर्युक्त निर्णय की दृष्टि में, इस रिट याचिका में कोई सार नहीं है।

3. इसी तरह, डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 270 वर्ष 2008 में दिनांक 20 मार्च, 2009 को इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में पैरा 11 से 19 तक में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मौखिक परीक्षा हेतु 40% अंक का नियतीकरण कोई मनमानी कार्रवाई नहीं है विशेष रूप से जब कोई लिखित परीक्षा नहीं ली जा रही है।

4. इस निर्णय की दृष्टि में, इस रिट याचिका में कोई सार नहीं है और इस कारण एतद्द्वारा इसे खारिज किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

मोस्मात सुदामिया एवं अन्य

बनाम

न्यू इण्डिया एश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड

M.A. No. 430 of 2006. Decided on 16th November, 2009.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 एवं 173—दुर्घटनावश मृत्यु–प्रतिकर की राशि के वर्धन हेतु अपील–दो ट्रको के बीच सीधी टक्कर–दावेदारों द्वारा यह साक्ष्य रखा गया कि मृतक-चालक में पारिश्रमिक के तौर पर 5,000/- रुपए प्राप्त कर रहा था–वेतन के संबंध से साक्ष्य को बीमा कम्पनी या ट्रक के मालिक द्वारा न तो विवादित किया गया और न ही खण्डित किया गया–किसी प्रतिकूल साक्ष्य की अनुपस्थिति में अधिकरण ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की सहायता लेकर विधि में बड़ी त्रुटि की–तथापि, मृतक की आय के समर्थन में अपीलार्थीगण–दावेदारों द्वारा कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं रखा गया–किसी विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में साक्ष्य सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, 3,000/- रुपए की एक न्यूनतम तनख्वाह मानकर प्रतिकर की राशि का आकलन किया जा सकता है–15 के गुणक का इस्तेमाल करके ब्याज समेत 3,60,000/- रुपए के प्रतिकर का भुगतान किया गया–बीमा कम्पनी दोनों यान की बीमाकर्ता होने के नाते प्रतिकर राशि के भुगतान की दायी है।

(पैरा 3, 4, 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. R.A. Choubey, For the Appellant; Mr. Manish Kumar, For the Respondents.

आदेश

जब अपील की बारी आई थी, दावेदारों और बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकारण के चरण में इस न्यायालय के अपील को सुनने और आज ही निस्तारित कर

देने का अनुरोध किया और इसलिए उनकी सहमति से निम्नांकित आदेश पारित करके इस अपील को सुना जा रहा है और निस्तारित किया जा रहा है।

2. दावेदारों विधवा और लगभग 12, 8, 5 एवं 2 वर्ष की आयु वाले चार अवयस्क बच्चे हैं। किसी बिरजू महतो की मृत्यु के लिए जो ट्रक चलाते समय एक दुर्घटना में मारा गया था, को प्रतिकर प्रदान करने हेतु उन्होंने एक दावा केस दाखिल किया है। ये तथ्य विवादित नहीं है कि मृतक UP-70-G-9495 पंजीकरण संख्या वाले ट्रक को चला रहा था। जबकि मृतक ट्रक चला रहा था तो एकाएक UP-78-N/4210 पंजीकरण संख्या वाला एक अन्य ट्रक आया और उसके ट्रक को टक्कर मार दिया जिसके परिणामतः मृतक की मृत्यु हो गई। दोनों ट्रकों का बीमाकर्ता न्यू इण्डिया एंश्योरेंस कम्पनी है जिसका प्रतिनिधित्व श्री मनीष कुमार द्वारा किया जा रहा है।

3. दावेदारों द्वारा यह साक्ष्य रखा गया था कि मृतक वेतन के तौर पर 5,000/- रुपए प्राप्त कर रहा था। वेतन के संबंध में साक्ष्य को न तो बीमा कम्पनी या ट्रक के मालिक द्वारा ही विवादित या खण्डित किया गया है। जबकि दायिता का निर्णय करते समय अधिकरण ने निम्नलिखित निष्कर्ष अभिलिखित किया:–

प्रश्नाधीन दुर्घटना दो वाहनों के सीधी टक्कर के कारण उदभूत हुई और इसलिए, दायिता का बँटवारा दोनों वाहन द्वारा आधा-आधा किया जाएगा। मृतक को दुर्घटना के इस मामले में अंतर्ग्रस्त दोनों वाहनों में से एक का चालक होने के नाते तीसरे व्यक्ति के तौर पर कोटिबद्ध किया जा सकता है उस वाहन के संबंध में जिसका वह चालक नहीं था। जैसा कि साक्ष्य से आया है कि दोनों वाहन मोटर यान दुर्घटना होने के लिए समान रूप से उत्तरदायी थे, विधि के प्रावधान के अनुसार मृतक चालक का विधिक प्रतिनिधि प्रत्येक मृत चालक की ओर से प्रतिकर का दावा नहीं कर सकता जिसकी मृत्यु स्वयं मृतक के अंधाधुंध और लापरवाही से गाड़ी चलाए जाने के कारण दुर्घटना में हुई थी, जो इस दावा मामले में अंतर्ग्रस्त वाहनों में से एक का चालक था। विधि का प्रावधान यह है कि मृतक का विधिक प्रतिनिधि या तो मोटर यान अधिनियम के प्रावधानों के अधीन या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के प्रावधानों के अधीन प्रतिकर का दावा कर सकता है। UP-70G-9495 पंजीकरण वाले दुर्भाग्य पूर्ण वाहन का मृतक चालक विपक्षी पक्षकार सं० 2 का एक कर्मचारी था या एजेण्ट था जिसकी मृत्यु एक मोटर यान दुर्घटना में उक्त दुर्भाग्यवश वाहन के एक चालक के तौर पर उसके नियोजन के अनुक्रम में हुई थी। इस प्रकार, दावेदार मृतक चालक के विधिक प्रतिनिधि होने के कारण बदकिस्मत वाहन के मालिक विपक्षी सं० 2 के विरुद्ध मृतक चालक की मृत्यु के कारण प्रतिकर के अधिकारी हैं। नियोक्ता एवं कर्मचारी का संबंध स्थापित किया गया है। विपक्षी सं० 2 के स्वामित्व वाला UP-70-G 9495 पंजीकरण वाला बदकिस्मत वाहन दुर्घटना के सुसंगत तिथि को स्वीकार्यतः विपक्षी सं० 3 के साथ बीमित था और इसलिए, विपक्षी सं० 3 को बीमाकर्ता होने के कारण दुर्भाग्यपूर्ण वाहन के बीमित स्वामी के क्षतिपूर्ति करनी होगी।

4. प्रथम दृष्टया, हमारा विचार है कि अधिकरण का आदेश एवं उसमें अभिलिखित निष्कर्ष पूर्णतः विधि में त्रुटिपूर्ण है। जैसा कि ऊपर नोटिस किया गया है, दावेदारों द्वारा यहां दावा रखा गया था कि चालक मासिक वेतन के तौर पर 5,000/- रुपए प्राप्त कर रहा था। किसी प्रतिकूल साक्ष्य की अनुपस्थिति में अधिकरण ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की सहायता लेने में विधि में वड़ी गलती की है। कोई दावेदार जो ट्रक का चालक था, द्वारा मृतक की अभिकथित तनख्वाह पर अविश्वास नहीं कर सकता। तथापि, मृतक की आय के समर्थन में अपीलार्थीगण की ओर से दावेदारों द्वारा कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था।

5. दावेदारों अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि किसी दस्तावेजी साक्ष्य की अनुपस्थिति में मृतक की मासिक आय 3,000/- रु० प्रति महीने से कम नहीं हो सकती और प्रतिकर का परिकलन करने के प्रयोजन के लिए अधिकरण को इस राशि को ध्यान में रखना चाहिए था।

6. हम अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में बल पाते हैं।

7. बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री मनीष कुमार ने पूरी न्याय संगतता के साथ निवेदन किया कि किसी विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, 3,000/- रुपए की न्यूनतम तनख्वाह को सामने रखकर प्रतिकर की राशि का आकलन किया जा सकता है।

8. पूर्वोक्त परिचर्चा की दृष्टि में, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि मृतक-चालक आवश्यक रूप से वेतन के तौर पर 3,000/- रुपए प्राप्त कर रहा होगा। अगर यह राशि ली जाती है तो वार्षिक निर्भरता 24,000/- रुपए आती है। 15 का गुणांक लेने पर कुल प्रतिकर 3,60,000/- रुपए आया है। स्वीकार्यत: दोनों वाहन प्रत्यर्थी बीमा कम्पनी के साथ बीमित था। इस प्रकार, किसी भी स्थिति में, अगर यह उपधारित कर भी लिया जाए कि दोनों वाहनों की लापरवाही के कारण दुर्घटना हुई थी, बीमा कम्पनी दोनों वाहनों की बीमाकर्ता होने के नाते प्रतिकर राशि का भुगतान करने का दायी है।

9. अतएव, हम इस अपील को अनुज्ञात करते हैं और अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर राशि को बढ़ाकर 3,60,000/- रुपए किया जाता है।

10. यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 3,60,000/- रुपए का वर्धित प्रतिकर ब्याज के साथ भुगतेय होगा।

माननीय आर० आर० प्रसाद, न्यायमूर्ति

अविनाश प्रसाद

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

WP(Cr.) No. 174 of 2009. Decided on 19th November, 2009.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 258—दं० प्र० सं० कभी भी परिवाद मामले से उद्भूत सम्मनीय मामले में किसी अभियुक्त को उन्मोचित करना अथवा कार्यवाही बन्द करना अनुध्यात नहीं करती है—एक सम्मनीय मामले में अभियुक्त को उन्मोचन इप्सित करने की छूट नहीं है—याची विचारण के दौरान इन सारे बिन्दुओं को न्यायालय में उठा सकता है।(पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.—(2004)7 SCC 338—Relied upon; (2008) 5 SCC 668—Referred to.

अधिवक्तागण.—Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; Mr. R.N. Roy, For the State.

आदेश

दिनांक 10.8.2004 को जब वन रक्षक ने पाया कि नोआमुन्डी स्थित वन क्षेत्र में मेसर्स टिस्को को पट्टे पर दिए गए थाना सं० 747 के अधीन प्लॉट सं० 893 पर वन विभाग की अनुज्ञा लिए बिना गढ्ढे खोद कर लौह अयस्क का गैर-कानूनी खनन किया जा रहा है, उसमें यह कथन करते हुए कि उक्त गैर-कानूनी खनन मेसर्स टिस्को द्वारा किया गया है जिसके लिए इसके प्रबंध निदेशक, अविनाश प्रसाद जिम्मेदार है, एक अभियोजन रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। जाँच करने पर, जब अभिकथनों को सत्य

पाया गया, अपराध रिपोर्ट को विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, चाईबासा के न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया था जिन्होंने दिनांक 8.4.2005 को याची के विरुद्ध भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया। तद्नुसार, न्यायालय द्वारा जारी समन उसके द्वारा प्राप्त किए गए थे। तत्पश्चात् दिनांक 23.6.2005 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 205 के अधीन याचिका दाखिल की गयी थी, जिस पर दिनांक 12.9.2005 को एक आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा इस शर्त पर कि आरोप के स्पष्टीकरण के चरण पर और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज किए जाने के चरण पर याची सशरीर उपस्थित होगा, व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्ति दे दी गयी थी। मामले में नियत अगली तिथि अर्थात् 29.9.2005 को धारा 251 के अधीन याची की ओर से एक याचिका दाखिल की गयी थी जिसमें प्रार्थना की गयी थी कि अभियुक्त को उसके अधिवक्ता के माध्यम से आरोप का सार स्पष्ट किया जाए। मामले को याची की उपस्थिति के लिए किसी अन्य तिथि पर स्थगित कर दिया गया था। लेकिन, इसी बीच, याची द्वारा एक रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (क्रि॰) सं॰ 282 वर्ष 2005 इस न्यायालय में दाखिल की गयी थी जिसमें संज्ञान के आदेश को अन्य के साथ इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि याची ने भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन कोई भी अपराध कारित नहीं किया है, बल्कि वह अन्य व्यक्ति था जिसने याची के पट्टाधृत क्षेत्र से लौह अयस्क निकाल कर रिष्टि किया और इसके लिये याची ने नामजद अभियुक्त के विरुद्ध एक मामला भी दर्ज किया है। लेकिन, उक्त रिट याचिका को वापस लेने की अनुज्ञा इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.5.2006 के आदेशानुसार दी गयी थी और याची को इन सभी बिन्दुओं को आरोप विरचित किए जाते समय उठाने की स्वतंत्रता दी गयी थी। बहुत अंतराल के बाद, यही आधार लेते हुए कि यह याची नहीं था जिसने अपराध किया है जैसा अभिकथित किया गया है, बल्कि किसी मंगल सिंह सोरेन ने ये सारी रिष्टियाँ की है जिसके विरुद्ध याची ने सूचना दर्ज कराई थी, अवर न्यायालय के समक्ष उन्मोचन के लिए याचिका दाखिल की गयी थी। उक्त याचिका को विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, चाईबासा द्वारा दिनांक 4.3.2009 के आदेशानुसार उसमें यह अभिनिर्धारित करते हुए कि उन्मोचन हेतु जो भी बिन्दु उठाए गए हैं, उनके ऊपर विचारण के दौरान ही विचार किया जा सकता है और दंडाधिकारी द्वारा विचारण योग्य सम्मन्स मामले में अभियुक्त के उन्मोचन का संहिता के अधीन कोई प्रावधान नहीं है, खारिज कर दिया गया था और इस प्रकार, उन्मोचन हेतु दाखिल याचिका को पोषणीय अभिनिर्धारित नहीं किया गया था।

2. उस आदेश से व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका दाखिल की है।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा निवेदन करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 258 में अंतर्निहित प्रावधान को ध्यान में रखते हुए विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने अभिनिर्धारित किया था कि संहिता के अधीन किसी व्यक्ति, का जो परिवाद पर संस्थापित सम्मन्स मामले में अभियुक्त है, को उन्मोचित करने का प्रावधान नहीं है लेकिन विद्वान दंडाधिकारी ने स्वयं को यह अभिनिर्धारित करने में अपनिदेशित किया क्योंकि परिवाद, जिसे धारा 258 में निर्दिष्ट किया गया है, का अर्थ सदा ही वह परिवाद होगा जिसमें धारा 200 के अधीन परिवादी का परीक्षण करने के बाद न्यायालय ने संज्ञान लिया है अथवा प्रक्रिया जारी करने को मुल्तवी करने के बाद दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के अधीन किसी व्यक्ति को सम्मन जारी किया जाता है और इस प्रकार, उन्मोचन अथवा कार्यवाही बन्द करने से संबंधित आदेश पारित करने के लिए यह पक्के तौर पर विद्वान दंडाधिकारी के क्षेत्राधिकार में था।

4. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि अपराध रिपोर्ट और अभियोजन रिपोर्ट में भी प्रकट किए गए अभियोजन के मामले के मुताबिक कि कम्पनी, अर्थात् मेसर्स टिस्को के प्रबन्ध निदेशक अर्थात् याची द्वारा अवैध खनन किया जा रहा था, इस स्थिति में याची को प्रबंध निदेशक होने के तौर पर,

किसी अभिकथन की अनुपस्थिति में, प्रतिनिधिक दायित्वकर्ता अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता था, विशेषत: जब संविधि, अर्थात् भारतीय वन अधिनियम प्रबंध निदेशक पर प्रतिनिधिक दायित्व नियत करने पर मौन है और इस प्रकार **मकसूद सैयद बनाम गुजराज राज्य एवं अन्य [(2008)5 SCC 668]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की दृष्टि में अभियोजन दोषपूर्ण हैं। अतः, समस्त अभियोजन अभिखंडन योग्य है।

5. इसके विरुद्ध, राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस तथ्य के आधार पर कि याची ने रिट याचिका पहले वापस ले ली थी, अभिवाक्, जिसे अभी किया गया था और जो पहले भी उपलब्ध था, को फिर से करना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और कि अवर न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में कि किसी व्यक्ति, जो परिवाद मामले से उद्भूत सम्मनस् मामले में अभियुक्त है, को उन्मोचित करने का प्रावधान नहीं है, न्यायोचित है और इस प्रकार, वर्तमान याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

6. याची की ओर से किए गए निवेदन कि 'परिवाद' जिसे संहिता की धारा 258 में निर्दिष्ट किया गया है, उस परिवाद से संबंधित है जिसपर दंडाधिकारी ने शिकायतकर्ता का बयान लेने के बाद अथवा दंड संहिता प्रक्रिया की धारा 204 के अधीन प्रक्रिया जारी करना मुल्तवी करने के बाद संज्ञान लिया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(d) के अधीन दिए गए 'परिवाद' की निम्नलिखित परिभाषा की दृष्टि में सारहीन है:–

> *"2(d) ''परिवाद'' का अर्थ दंडाधिकारी को मौखिक अथवा लिखित रूप से किया गया कोई अभिकथन है, इस संहिता के अधीन उसके द्वारा कार्रवाई किए जाने की दृष्टि के साथ, कि किसी व्यक्ति ने चाहे जाना अथवा अनजाना, एक अपराध किया है लेकिन पुलिस रिपोर्ट में सम्मिलित नहीं है।''*

7. इस प्रकार, परिवाद की परिभाषा यह बताती है कि परिवाद लिखित अथवा मौखिक रूप से की जा सकती है। यदि परिवाद अपने पदीय कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए कार्रवाई अथवा तात्पर्यित रूप से कार्रवाई करते किसी जनसेवक द्वारा की जाती है, धारा 200 की उप-धारा (a) के निबंधनों के अनुसार दंडाधिकारी द्वारा शपथ पर उसका परीक्षण करना आवश्यक नहीं है। यदि लिखित परिवाद सचमुच अपराध गठित करती है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(a) के अधीन संज्ञान लेने में दंडाधिकारी सक्षम है जबकि यदि मौखिक अथवा लिखित शिकायत किसी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से, ना कि पदीय हैसियत से की जाती है, तब न्यायालय परिवादी का परीक्षण करने के बाद संज्ञान ले सकता है अथवा प्रक्रिया जारी करना मुल्तवी कर सकता है, लेकिन दोनों मामलों में, यह परिवाद होगी और इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 258 के उद्देश्य हेतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 258 में प्रयोग किए गए 'परिवाद' शब्द का दो भिन्न अर्थ नहीं हो सकता है और मामले की इस दृष्टि में, अवर न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में कि दंड प्रक्रिया संहिता परिवाद मामले से उद्भूत सम्मन्स मामले में अभियोजित किसी व्यक्ति का उन्मोचन अथवा कार्यवाही बन्द करना अनुध्यात नहीं करता है बिल्कुल न्यायोचित है। इस संदर्भ में **अदालत प्रसाद बनाम रुपलाल जिन्दल एवं अन्य [(2004)7 SCC 338]** के मामले एवं **सुब्रमण्यम सेतुरमन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य [2005 SCC (Cri)242]** मामले को भी निर्दिष्ट किया जाए जहाँ जिसमें माननीय न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि सम्मन्स मामले में अभियुक्त को उन्मोचन इप्सित करने की छूट नहीं है।

8. अन्य बिन्दुओं पर आते हुए, यह सचमुच प्रकट होता है कि याची ने पहले भी संज्ञान लेने वाले आदेश को अनेक आधार पर चुनौती दी थी जिस याचिका को याची की ओर से वापस लिए जाने

पर खारिज कर दिया गया था और ऐसी स्थिति के अधीन याची की ओर से उठाए गए इस बिन्दु कि याची के अपराध करने के बारे में किसी भी अभिकथन की अनुपस्थिति में, याची को कम्पनी द्वारा किए गए अपराध के लिए प्रतिनिधिक दायित्वकर्ता अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है, को इस याचिका में न्यायानिर्णयन किए जाने योग्य नहीं है, किन्तु विचारण के दौरान याची को इन सारे बिन्दुओं को उठाने की छूट रहेगी।

9. तद्नुसार, मैं इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। अत: यह खारिज की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

हरदेव सिंह उर्फ हरदेव सिंह मारवा एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1094 of 2006. Decided on 9th November, 2009.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 190—संज्ञान–सूचक द्वारा दाखिल विरोध याचिका के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध संज्ञान–अन्वेषण अधिकारी द्वारा केस डायरी और आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा आक्षेपित आदेश पारित–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के चरण पर दंडाधिकारी को पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट के साथ असहमत होने और प्राथमिकी में नामित किसी भी अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामले से संबंधित एक निष्कर्ष दर्ज करने की आत्यंतिक शक्ति एवं अधिकारिता नहीं है–आक्षेपित आदेश में कोई गलती नहीं–याचिका खारिज। (पैरा 5 से 8)

निर्णयज विधि.–(2007) 13 SCC 71—Relied upon; AIR 1980 SC 1883; AIR 1989 SC 885; 1996 Cr. LJ 2528; (2004)13 SCC 11—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. B.M. Tripathi, For the Petitioners; Mr. Jai Prakash, For the Opp. Parties.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन इस याचिका द्वारा याची ने जी॰ आर॰ केस सं॰ 4219 वर्ष 2005 में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद द्वारा दिनांक 23.1.2006 के आदेश, जिसके द्वारा सूचक द्वारा दाखिल विरोध याचिका के आधार पर याचीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए संज्ञान लिया गया था, सहित समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन की प्रार्थना की है।

2. पूर्वोक्त जी॰ आर॰ केस सं॰ 4219 वर्ष 2005 सूचक द्वारा अन्य बातों के साथ साथ यह कथन किया कि पेट्रोल पम्प का नाईट गार्ड उसके घर आया था और उसे अपने साथ पेट्रोल पम्प चलने को कहा था, करते हुए दर्ज की गयी प्राथमिकी के आधार पर तोपचाँची पी॰ एस॰ केस सं॰ 160 वर्ष 2005 से उद्भूत हुआ। तद्नुसार, सूचक पेट्रोल पम्प आया और अपने बड़े बेटे वशीम हुसैन को मृत पड़ा पाया क्योंकि किसी रिंकू सिंह ने उसकी मृत्यु कारित करते हुए उसपर गोली चलाया था। सूचक के कथनानुसार घटना का कारण यह है कि सूचक के एस॰ टी॰ डी॰ बूथ के पहले, वहाँ पहले ही से रजक मियाँ का एस॰ टी॰ डी॰ बूथ था और याचीगण ने सूचक को एस॰ टी॰ डी॰ बूथ खोलने से मना किया था। सूचक को अपने पुत्र की हत्या के पीछे याचीगण का हाथ होने का संदेह हुआ। पुलिस ने अन्वेषण

प्रारंभ किया और किसी राकेश कुमार सिंह उर्फ रिन्कू सिंह के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया और याचीगण के विरुद्ध अंतिम फार्म दाखिल किया। लेकिन, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने आक्षेपित आदेश के निबंधनों के अनुसार भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने आक्षेपित आदेश को गैर-कानूनी और पूर्णत: बिना अधिकारिता वाला बताते हुए विरोध किया है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अवर न्यायालय विधि के अनुसार नयी जाँच किए बिना याचीगण के विरुद्ध अंतिम फॉर्म के प्रस्तुतीकरण के पश्चात अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, विचारण न्यायालय के पास विचारण के दौरान गवाहों का परीक्षण करने के पश्चात् उपस्थित होने के लिए याचीगण की सह-अपराधिता हेतु दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन नोटिस जारी करने का एकमात्र रास्ता था। इस संदर्भ में, विद्वान अधिवक्ता ने **किशोरी सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य [(2004)13 SCC 11]** के मामले में और **राम संजीवन सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य [1996 Cr. L.J. 2528]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास प्रकट किया है।

4. सूचक की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने, दूसरी ओर निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने पुलिस रिपोर्ट और केस डायरी के परिशीलन के पश्चात् इन याचीगण के विरुद्ध भी अपराध के लिए संज्ञान लेने में विधि की कोई गलती नहीं किया है। विद्वान अधिवक्ता ने **एच॰ एस॰ बेन्स बनाम राज्य (चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र) [AIR 1980 SC 1883]** और **मेसर्स इंडिया करात प्रा॰ लि॰ बनाम कर्नाटक राज्य एवं एक अन्य [AIR 1989 SC 885]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में विश्वास प्रकट किया है।

5. पक्षों के प्रतिवादों की मूल्यांकन करने से पहले, मैं दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 को निर्दिष्ट करना चाहूँगा जो अन्वेषण पूरा किए जाने और अन्वेषण रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने पर प्रक्रिया और दंडाधिकारी की शक्ति पर विचार करता है। यह सर्वविदित है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 (2) के अधीन उक्त पुलिस रिपोर्ट पर दंडाधिकारी के समक्ष तीन विकल्प होता है। वह निर्णय ले सकता है कि मामले में आगे कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है अथवा वह पुलिस रिपोर्ट के आधार पर दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 190(1)(b) के अधीन अपराध का संज्ञान ले सकता है और आदेशिका जारी कर सकता है और अंत में, वह धारा 156(3) के अधीन आगे अन्वेषण करने का निर्देश दे सकता है और आगे रिपोर्ट तैयार करने के लिए पुलिस को निर्देश दे सकता है। **संजय बंसल बनाम जवाहरलाल वत्स [(2007)13 SCC 71]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह विधि सुनिश्चित की गयी है। माननीय न्यायाधीशों ने संप्रेक्षित किया:–

> *"9. जब धारा 173(2)(i) के अधीन पुलिस द्वारा दंडाधिकारी को अग्रसारित रिपोर्ट उसके समक्ष प्रस्तुत की जाती है, अनेक स्थितियाँ उद्भुत होती है। रिपोर्ट यह निष्कर्षित कर सकता है कि किन्हीं विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा एक अपराध किया गया प्रकट होता है और ऐसे मामले में, या तो (1) रिपोर्ट स्वीकार कर सकता है और संज्ञान ले सकता है और आदेशिका जारी कर सकता है अथवा (2) रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और कार्यवाही बन्द कर सकता है और अथवा (3) धारा 156(3) के अधीन आगे जाँच करने का निर्देश दे सकता है और आगे रिपोर्ट दिए जाने की पुलिस से अपेक्षा कर सकता है। दूसरी ओर, रिपोर्ट कह सकती है कि पुलिस के अनुसार कोई अपराध किया गया प्रकट नहीं होता है। जब ऐसी रिपोर्ट दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, उसके पास फिर तीन रास्तों में से एक विकल्प चुनने का है अर्थात् (1) वह रिपोर्ट स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही बन्द कर सकता है; या (2) वह रिपोर्ट के साथ असहमत हो सकता है और यह दृष्टिकोण अपना सकता है कि आगे कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, अपराध का संज्ञान*

ले सकता है और आदेशिका जारी कर सकता है; या (3) धारा 156(3) के अधीन पुलिस द्वारा आगे अन्वेषण किए जाने का निर्देश दे सकता है। इस प्रकार, यह स्थिति पूरी तरह सुनिश्चित है कि धारा 173(2) के अधीन पुलिस रिपोर्ट प्राप्त किए जाने पर एक दंडाधिकारी संहिता की धारा 190(1)(b) के अधीन अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है भले ही पुलिस रिपोर्ट इस प्रभाव का है कि अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है। दंडाधिकारी अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा परीक्षित गवाहों के बयानों को विचार में ले सकता है और शिकायत किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और अभियुक्तों पर आदेशिका जारी करने का आदेश दे सकता है। धारा 190(1)(b) अधिकथित नहीं करता है कि एक दंडाधिकारी एक अपराध का संज्ञान तब ही ले सकता है जब अन्वेषण अधिकारी मत देता है कि अन्वेषण ने अभियुक्त के विरुद्ध एक मामला बनाया है। दंडाधिकारी अन्वेषण अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को अनदेखा कर सकता है और अन्वेषण से उद्भूत तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है, और यदि वह उचित समझता है तो, मामले का संज्ञान ले सकता है, धारा 190(1)(b) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और अभियुक्तों पर आदेशिका को जारी करने का निर्देश दे सकता है। ऐसी स्थिति में धारा 190(1)(a) के अधीन एक मामले में संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 में अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिए दंडाधिकारी बाध्य नहीं है यद्यपि धारा 200 अथवा धारा 202 के भी अधीन कार्रवाई करने हेतु उसका रास्ता खुला है। [देखे इंडिया करात (प्रा॰) लि॰ बनाम कर्नाटक राज्य] सूचक पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है जब दंडाधिकारी संज्ञान लेने और मामला में आगे बढ़ने का निर्णय लेता है। लेकिन जब दंडाधिकारी निर्णय लेता है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है और कार्यवाही बन्द कर देता है अथवा यह दृष्टिकोण लेता है कि कुछ के विरुद्ध कार्यवाही के लिए सामग्री है और अन्यों के संबंध में अपर्याप्त आधार है; सूचक पर निश्चय ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा क्योंकि दर्ज प्राथमिकी पूर्णतः अथवा अंशतः प्रभावहीन हो जाती है। अतः इस न्यायालय ने भगवन्त सिंह मामले में उपदर्शित किया है कि जहाँ दंडाधिकारी संज्ञान नहीं लेने का और कार्यवाही बन्द कर देने का निर्णय लेता है अथवा यह दृष्टिकोण लेता है कि प्राथमिकी में उल्लिखित कुछ व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही का कोई पर्याप्त आधार नहीं है, सूचक को नोटिस दिया जाना और मामले में सुनवाई का अवसर दिया जाना आज्ञापक हो जाता है। जैसा उपर उपदर्शित किया गया है, उस संबंध में नोटिस जारी करने का संहिता में कोई प्रावधान नहीं है।

6. वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, अन्वेषण अधिकारी द्वारा आरोप-पत्र और केस डायरी दाखिल करने के बाद मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने आक्षेपित आदेश पारित किया जिसे इसमें यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:–

> *"दिनांक 19.1.2006 को आई॰ ओ॰ द्वारा पेश किए गये आरोप-पत्र और केस डायरी के साथ-साथ केस डायरी मेरे समक्ष प्रस्तुत किया गया है, दिनांक 20.1.2006 को सूचनादाता की ओर से दाखिल विरोध दाखिल करने के लिए समय याचिका को संचालित किया गया है और दूसरी ओर याची राजू सिंह मारवा की ओर से दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2) के अधीन एक याचिका दाखिल की गयी है जिसे भी प्रबलित किया गया है।*
>
> *दोनों पक्षों को सुना गया और केस रिकार्ड का परिशीलन किया गया।*
>
> *यह प्रकट है कि अभियुक्त राजेश कुमार सिंह उर्फ रिन्कू सिंह के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया गया है और शेष दो अभियुक्तों अर्थात् (1) हरदेव सिंह मारवा और (2) राजू सिंह मारवा के विरुद्ध अभियोग इस मामले के आई॰ ओ॰ द्वारा सत्य नहीं पाए गए हैं, लेकिन केस रिकॉर्ड और केस डायरी के परिशीलन के बाद यह प्रकट*

है कि सूचक जो मृतक का पिता है, अभियुक्त हरदेव सिंह मारवा और उसके पुत्र राजू सिंह मारवा के पेट्रोल पम्प के निकट एस० टी० डी० बूथ चला रहा था और घटना से पहले, उनके द्वारा सूचक निरन्तर धमकाया जाता था कि वह अपना एस० टी० डी० बूथ बन्द कर दे अन्यथा उसे गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। यह भी प्रकट है कि अभियुक्त (1) हरदेव सिंह मारवा और (2) राजू सिंह मारवा द्वारा अपने पेट्रोल पम्प में हथियार रखने का तथ्य सर्वविदित था। केस डायरी में यह भी आया है कि अभियुक्त राकेश कुमार सिंह उर्फ रिन्कू सिंह उनके बाहुबली के तौर पर जाना जाता था और इस प्रकार इस घटना में इन अभियुक्तों की संलिप्तता से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए और केस डायरी के पैरा सं० 5. 9, 11, 23, 2, 24, 34, 63, 77 एवं 78 को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि अभियुक्तों 1. हरदेव सिंह मारवा और 2. राजू सिंह मारवा के विरुद्ध भी कार्यवाही करने हेतु केस रिकार्ड और केस डायरी में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है और इस प्रकार अभियुक्त 1. राकेश कुमार सिंह उर्फ रिन्कू सिंह, (2) हरदेव सिंह मारवा और (3) राजू सिंह मारवा के विरुद्ध भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27, 35 के अधीन एक प्रथम दृष्टया मामला निर्मित होता है।

तद्नुसार, अभियुक्त 1, राकेश कुमार सिंह उर्फ रिन्कू सिंह, (2) हरदेव सिंह मारवा और (3) राजू सिंह मारवा के विरुद्ध दं० प्र० सं० की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है और यह केस रिकॉर्ड विधि के अनुसार दं० प्र० सं० की धारा 207 के अधीन प्रावधानों के अनुपालन के पश्चात् श्री एस० के० सिंह, जे० एम०, धनबाद के न्यायालय को सुपुर्द करने हेतु अंतरित किया जाता है। अभियुक्त राकेश कुमार सिंह उर्फ रिन्कू सिंह और राजू सिंह मारवा अभिरक्षा में है, अतः, उन्हें दं० प्र० सं० की धारा 309 (2) के अधीन नियत तिथि अर्थात् 31.1.2006 को प्रस्तुत करने के लिए प्रति प्रेषित किया जाता है। अभियुक्त हरदेव सिंह मारवा अभी तक न्यायिक अभिलेख पर उपस्थित नहीं हुआ है। अतः उसके विरुद्ध गिरफ्तारी का नया वारन्ट जारी किया जाए और उपस्थिति के लिए नियत तिथि पर पेश किया जाए।

तद्नुसार, अभियुक्त हरदेव सिंह मारवा की ओर से 167 (2) दं० प्र० सं० के अधीन और आज आगे बढ़ायी गयी जमानत याचिका निपटायी जाती है क्योंकि यह समयपूर्व है। अभियुक्त ने दिनांक 27.10.2005 को आत्मसमर्पण कर दिया है।''

7. मेरे दृढ़ विचार में, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने दंड प्रक्रिया संहिता में दी गयी प्रक्रिया को सही-सही लागू किया है। श्री त्रिपाठी का प्रतिवाद है कि विचारण के स्तर पर सिर्फ द० प्र० सं० की धारा 319 के अधीन आगे बढ़ने का रास्ता खुला है। इस चरण पर, दंडाधिकारी को पुलिस अधिकारी के रिपोर्ट से असहमत होने और प्राथमिकी में नामित किसी अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामले के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने की आत्यंतिक शक्ति और अधिकारिता नहीं है।

8. पूर्वोक्त कारणों से, मैं मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई गलती नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह याचिका खारिज की जाती है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

अजैब सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

WP(C) No. 2091 of 2003. Decided on 18th November, 2009.

भारत का संविधान, 1950–अनुच्छेद 226—नवनिर्मित बाजार क्षेत्र में दुकान का आबंटन–याची की दुकान तोड़ दी गयी, लेकिन फिर भी दुकान के आबंटन के सन्नियम के मुताबिक, उसे अभी तक कोई दुकान आबंटित नहीं किया गया था–दुकानों का आबंटन करने में प्रशासन द्वारा अभिकथित तौर पर अनेक अनियमितताएँ बरती गयी–याची का मामला नवनिर्मित बाजार क्षेत्र में दुकान के आबंटन के लिए उसके दावे पर विचार करने हेतु है–यदि याची को पात्र पाया जाता है, तब डी॰ सी॰ चार सप्ताह के भीतर निर्णय लेगा।(पैरा 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. N. Bakshi, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kr. Mahtha, For the State.

आदेश

पक्षों को सुना गया और उनकी सहमति से इस चरण पर ही रिट याचिका निपटायी जा रही है।

2. याची की शिकायत यह है कि यद्यपि उसके पास जमशेदपुर शहर में स्थित खटिया बाजार में एक दुकान था, लेकिन इसे तोड़ दिया गया था, और तत्पश्चात्, वहाँ एक नए बाजार का निर्माण किया गया था और जिला प्रशासन ने उन व्यक्तियों, जिनकी दुकानें तोड़ दी गयी थी, को नवनिर्मित दुकान आबंटित करने का निर्णय लिया था। याची के अनुसार यद्यपि उप-कलक्टर द्वारा किए गए सर्वेक्षण में यह पाया गया था कि याची अर्थात् अजैब सिंह के पास उक्त क्षेत्र में एक दुकान था और इसे तोड़ दिया गया था, लेकिन फिर भी दुकानों के आबंटन के सन्नियम के मुताबिक, उसे अभी तक कोई दुकान आबंटित नहीं किया गया है। याची का अभिकथन है कि दुकानों के आबंटन में प्रशासन द्वारा अनेक अनियमितताएँ बरती गयी है। विद्वान अधिवक्ता ने मेरे समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2631 वर्ष 2002 और 306 वर्ष 2003 में पारित दिनांक 9.7.2003 का एक आदेश प्रस्तुत किया, जहाँ समरुप परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने उन याचीगण के मामलों पर विचार करने और नवनिर्मित बाजार क्षेत्र में भूमि/दुकान आबंटित करने का निर्देश उप-कलक्टर को दिया है। आगे यह निर्देश दिया गया था, कि यदि कोई भूमि/दुकान उपलब्ध नहीं है, तब उप-कलक्टर को उन व्यक्तियों को हटा देना चाहिए जो जिला प्रशासन के मित्र एवं संबंधी है और जिन्हें बाह्य आधारों पर दुकानें आबंटित की गयी थी। यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान याची का मामला भी बिल्कुल डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2631 वर्ष 2002 और 306 वर्ष 2003 के रिट याचीगण की तरह ही है।

3. प्रत्यर्थीगण की ओर से एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसके पैराग्राफ 10 में कथन किया गया है कि अनेक दुकानें और रिक्त भूमि अभी भी उपलब्ध है और इन्हें नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए विधि के अनुसार और सूची के अनुसार आबंटित किया जाएगा।

4. पूर्वोक्त तथ्यों पर विचार करने और साथ-साथ डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2631 वर्ष 2002 (आर॰) में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जिसकी एक प्रति तर्क के समय मेरे समक्ष प्रस्तुत की गयी है, के परिशीलन के पश्चात्, मैं पाता हूँ कि दुकान के आबंटन हेतु उपने दावे पर विचार करने के लिए याची ने सफलतापूर्वक मामला बनाया है और तद्नुसार, यह रिट याचिका उप-कमिश्नर, पूर्वी सिंहभूम को यह निर्देश देते हुए निपटायी जाती है कि नवनिर्मित बाजार क्षेत्र में दुकान आबंटित करने के उसके दावे पर, दुकान आबंटन हेतु अन्य मानदंडों को पूरा करने के अध्यधीन विचार किया जाय और यदि वह आबंटन की शर्तों को पूरा करता है, उसे उक्त बाजार क्षेत्र में एक दुकान आबंटित किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि याची दुकान के आबंटन हेतु पात्र पाया जाता है और कोई दुकान उपलब्ध नहीं पायी जाती है, तब उप-कमिश्नर को डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2631 वर्ष 2002

और 306 वर्ष 2003 में इस न्यायालय द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धान्त और निर्देश का अनुसरण करना होगा और इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुतीकरण की तिथि से चार सप्ताहों के भीतर एक निर्णय लेना होगा।

5. इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

अजित कुमार मोहंती

बनाम

पापा देवी महाली एवं अन्य

M.A. No. 94 of 2009. Decided on 18th November, 2009.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धारा 166—अधिकरण द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध प्रतिकर प्रदान किया गया क्योंकि अपराधकारी वाहन के चालक के पास वैध ड्राईविंग लाईसेंस नहीं था–अधिनिर्णय को चुनौती दी गई–यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं रखा गया कि वाहन एक वैध लाईसेंस रखने वाले व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था–अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं। (पैरा 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Kripa Shankar Nanda, For the Appellants; ...., For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अधिकरण, जमशेदपुर द्वारा पारित निर्णय एवं अधिनिर्णय का परिशीलन किया।

2. प्रतिकर केस सं॰ 66 वर्ष 2008 में अपर जिला न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ III-सह-मोटर यान दुर्घटना दावा अधिकरण, जमशेदपुर द्वारा पारित निर्णय एवं अधिनिर्णय को अपीलार्थी–स्वामी ने चुनौती दी है। अधिकरण ने आदेश पारित किया और अपीलार्थी पर प्रतिकर का भुगतान करने का दायित्व लाद दिया यह निश्चायी निष्कर्ष अभिलिखित करने के उपरांत की अपराधकारी वाहन का चालक एक वैध ड्राइविंग लाईसेंस नहीं रखे हुए था।

3. अभिलेख से, यह स्पष्ट है कि कोई बालाजी महतो वाहन चला रहा था। अधिकरण द्वारा पारित निर्णय के पैरा–11 में अभिलिखित निष्कर्ष को इसके नीचे उत्कथित किया गया है:–

> *''बीमा कम्पनी ने अपने प्रत्युत्तर में दावा किया है कि पंजीकरण सं० WB 20B 4400 धारण किए हुए अपराधकारी वाहन के मालिक ने बीमा की नीति के निबंधनों एवं शर्तों का उल्लंघन किया था एक ऐसे व्यक्ति द्वारा वाहन को चलाए जाने की अनुमति देकर, जिसके पास वैध ड्राईविंग लाईसेंस नहीं था। आवेदकों ने संपुष्टि की है कि सुसंगत समय पर अपराधकारी वाहन उसके चालक, अर्थात बालाजी महतो द्वारा चलाया जा रहा था। उन्होंने यह भी संपुष्ट किया है कि अपराधकारी वाहन (विपक्षी पक्षकार सं० 1) अजित कुमार मोहंती का है और (विपक्षी पक्षकार सं० 1) ने अपने प्रत्युत्तर में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि अपराधकारी वाहन उसी का था और व्यापक पॉलिसी सं० 2351 वर्ष 2008 के अधीन, जो 17.8.2007 से 16.8.2008 तक वैध है, ओरिएंटल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड (विपक्षी पक्षकार सं० 2) के साथ बीमित था। प्रथम सूचना रिपोर्ट और मुसाबोनी पुलिस थाना केस सं० 21 वर्ष 2008 दिनांक 6.5.2008 में संबंधित अभियोग पत्र से यह भी प्रतीत होता है*

कि पंजीकरण सं० WB 20B 4400 धारण किए हुए टाटा सूमो को अंतर्ग्रस्त करने वाली दुर्घटना के संबंध में वाहन के चालक के विरुद्ध उसका मामला दर्ज किया गया था और पुलिस ने संपुष्टि की है कि सुसंगत समय पर अपराधकारी वाहन को अभियुक्त बालाजी महतो द्वारा चलाया जा रहा था। बीमा कम्पनी (विपक्षी पक्षकार सं० 2) के प्रत्युत्तर से यह प्रतीत होता है कि पंजीकरण सं० WB 20B 4400 धारण करने वाले अपराधकारी वाहन टाटा सूमो के संबंध में बीमा के तथ्य का इसके द्वारा विनिर्दिष्ट इनकार नहीं किया गया है। इसका अर्थ है कि विपक्षी पक्षकार सं० 2 के अधीन वाहन के बीमित होने के तथ्य को इसके द्वारा (विपक्षी पक्षकार सं० 2) के द्वारा स्वीकार किया गया है। बीमा कम्पनी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अपराधकारी वाहन का चालक दुर्घटना के समय एक वैध ड्राईविंग लाईसेंस नहीं रखे हुए था और इसलिए, बीमा कम्पनी के किसी प्रतिकर के भुगतान की कोई दायिता नहीं है। उन्होंने एम० ए० सं० 141 वर्ष 2007 में झारखण्ड उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 16.12.2008 के निर्णय की प्रति दाखिल की है जिसमें न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया है कि अगर चालक ड्राईविंग लाईसेंस धारण नहीं किए हुए है, बीमा कम्पनी विमुक्त हो जाती है। आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि बीमा कम्पनी के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए विधि के इस नियम के मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में कोई प्रयोज्यता नहीं है। उन्होंने निवेदन किया है कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए विधि के नियम में मृतक चालक नहीं था और इस प्रकार, वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों बीमा कम्पनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयज विधि के तथ्यों एवं परिस्थितियों से पूर्णतः भिन्न है। उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि वर्तमान मामले में मृतक एक तृतीय पक्ष था और उन्होंने सरदारी एवं अन्य बनाम सुशील कुमार एवं अन्य (2008 ए० आई० ए० आर० (सिविल) 300 भारत का सर्वोच्च न्यायालय के मामले पर भरोसा किया। मैंने दोनों पक्षों द्वारा भरोसा किए गए निर्णयज-विधि का परिशीलन किया। मैंने पाया कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयज विधि पर बीमा कम्पनी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यथा भरोसा किए गए इस निर्णय में भी परिचर्चा की गई है और आवेदक द्वारा भरोसा किया गया निर्णयज विधि पर विचार करने के उपरांत माननीय उच्च न्यायालय ने एम० ए० सं० 141 वर्ष 2007 में दिनांक 16.12.2008 का निर्णय पारित किया है। माननीय उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के आलोक में, मेरा मत है कि अभिलेख पर यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि मालिक ने अपराधकारी वाहन टाटा सूमो को उक्त चालक द्वारा चलाया जाने की अनुमति दी थी जिसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था सभी बीमा पॉलिसी के निबन्धनों एवं शर्त्तों का स्पष्ट उल्लंघन है और यह मुद्दा तदनुसार विनिश्चय किया जाता है।''

4. अपीलार्थीगण ने अधिकरण के समक्ष मामले का प्रतिवाद किया परन्तु वहाँ इसका कोई संकेत तक नहीं है कि वाहन बालाजी महतो से इतर कोई व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था और इस प्रभाव का कोई साक्ष्य नहीं रखा गया था।

5. मामले की इस दृष्टि में, हम अधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष के साथ हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

6. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि चालक एक वैध ड्राइविंग लाईसेंस नहीं रखा हुआ था अपीलार्थी के विरुद्ध अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

7. तदनुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, हजारीबाग एवं एक अन्य

WP(C) No. 6309 of 2002. Decided on 16th November, 2009.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–प्रोन्नति–आर्थिक लाभों के भुगतान हेतु निर्देश–अधिकरण द्वारा कर्मकार का अधिक्रमण अन्यायोचित अभिनिर्धारित किया गया–सी॰ सी॰ एल॰ संबंधित कर्मकार को अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय के फल से वंचित नहीं कर सकता है–जब अधिकरण ने उसकी प्रोन्नति के मामले पर भूतलक्षी रूप से विचार करने के लिए प्रबंधन को विनिर्दिष्ट रूप से निर्देश दिया, तब प्रोन्नति परक आर्थिक लाभ देने से इंकार करने का कोई कारण नहीं हो सकता है–'काम नहीं तो वेतन नहीं' के आधार पर कर्मकार को प्रोन्नतिपरक आर्थिक लाभ देने से इंकार न्यायोचित नहीं है–याचिका खारिज। (पैरा 9 से 13)

निर्णयज विधि.–WP(L) No. 6308/2002; (2008)7 SCC 22—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Ananda Sen, Ranjan Kumar, For the Petitioner; M/s K.B. Sinha, Amitabh, For the Respondent No. 2.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. रिट याची-सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड एम॰ जे॰ केस॰ सं॰ 7 वर्ष 2002 में पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, हजारीबाग द्वारा दिनांक 13.8.2002 को पारित उस आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा रेफरेन्स केस सं॰ 48 वर्ष 1989 में अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार कर्मकार को दी गयी प्रोन्नति के आधार पर 96,931 रुपये और 38 पैसे की राशि का परिगणन किया गया था और विरोधी पक्षकार को पूर्वोक्त राशि का भुगतान तीन महीनें के भीतर करने का निर्देश दिया गया था। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि रेफरेन्स केस सं॰ 48 वर्ष 1989 में अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार कर्मकार को धनीय लाभ दिए बिना अभिप्रायात्मक प्रोन्नति अनुज्ञात करना न्यायोचित नहीं है और सिर्फ ढकोसला है।

3. इस याचिका को उद्भूत करने वाले तथ्य संक्षेप में इस प्रकार है कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 हरि नारायण प्रसाद याची सेन्ट्रल कोलफील्डस लिमिटेड के साथ मैगजीन क्लर्क के तौर पर सेवारत था। अपने नियोजन के दौरान, कतिपय अवचारों के लिए उसे चार्जशीट किया गया था। घरेलू जाँच की गयी और तत्पश्चात् उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने औद्योगिक विवाद उठाया और तत्पश्चात् दिनांक 20.7.1983 के अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण, धनबाद ने अभिनिर्धारित किया कि कर्मकार की सेवा से बर्खास्तगी अन्यायोचित है और तब उसके द्वारा पूरी बकायी मजदूरी के साथ सेवा में पुर्नस्थापित करने का निर्देश दिया।

4. वर्ष 1989 में याची द्वारा अपने अधिक्रमण के विरुद्ध एक अन्य औद्योगिक विवाद उठाया गया था और उक्त विवाद को भी केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण सं॰ 1, धनबाद को निर्दिष्ट कर दिया गया था। इसका निर्देश निम्नलिखित था:–

> *"क्या वर्ष 1975 से अनेक अवसरों पर महाप्रबंधक, मेसर्स सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड के कुजु क्षेत्र, पी० ओ०-कुजु, जिला हजारीबाग के अधीन श्री हरिनारायण प्रसाद, ग्रेड-II क्लर्क का उसके कनीयों द्वारा अधिक्रमित किया जाना न्यायोचित है? यदि नहीं, तो कर्मकार किस राहत को पाने का हकदार है?"*

5. दोनों पक्षों ने उक्त निर्देश पर प्रतिवाद किया और अंततः यह प्रतीत होता है कि दिनांक 4.8.1997 के अधिनिर्णय द्वारा, केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण, धनबाद ने अभिनिर्धारित किया कि वर्ष 1975 से अनेक अवसरों पर कर्मकार का उसके कनीयों द्वारा अधिक्रमित किया जाना न्यायोचित नहीं है और तद्द्वारा प्रबंधन को वर्ष 1983 से आगे अर्थात् सन्दर्भ केस सं॰ 48 वर्ष 1989 में दिनांक 20 जुलाई, 1983 को अधिनिर्णय पारित करने के पश्चात् प्रोन्नति के लिए कर्मकार की उम्मीदवारी पर विचार करने का निर्देश दिया।

6. तत्पश्चात्, प्रबंधन ने कर्मकार को दिनांक 9.2.1976 के प्रभाव से क्लर्क ग्रेड-I के पद पर, दिनांक 25.11.1982 के प्रभाव से वरीय क्लर्क के पद पर और दिनांक 22.5.1990 के प्रभाव से कार्यालय निरीक्षक के पद पर अभिप्रायात्मक प्रोन्नति देते हुए दिनांक 27.11.1998 को एक कार्यालय आदेश जारी किया जो परिशिष्ट-3 में अंतर्निहित है। जब कर्मकार को प्रोन्नतिपरक धनीय लाभ नहीं दिया गया, तो उसके औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33(C)(2) के अधीन उसको देय राशि को विनिश्चत करने और इस तरह परिगणित राशि का ब्याज समेत भुगतान करने हेतु नियोजक को निर्देश देने के लिए पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय के समक्ष याचिका दाखिल किया। धारा 33(C)(2) के अधीन कर्मकार द्वारा दाखिल याचिका इस रिट याचिका के परिशिष्ट-4 के तौर पर उपाबद्ध है।

7. धारा 33(C)(2) के अधीन उक्त याचिका (परिशिष्ट-4) के परिशीलन से, यह प्रकट है कि कर्मकार ने विनिर्दिष्ट रूप से प्राख्यापित किया कि परिणामिक धनीय लाभों को उसे देने के लिए प्रबंधक के समक्ष किए गए अनेक प्रार्थनाओं और मांग के बावजूद प्रबंधन ने कोई ध्यान नहीं दिया और अंततः रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा एक विधिक नोटिस भी भेजा गया, लेकिन प्रबंधन द्वारा इस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी।

8. जैसा कि पहले ही ध्यान में लिया गया है, श्रम न्यायालय ने दिनांक 13.8.2002 को एक आदेश जो परिशिष्ट-7 में अंतर्निहित है, पारित किया और अभिनिर्धारित किया कि सम्बद्ध कर्मकार प्रोन्नत पद के समस्त देय, जो गणना करने पर 96, 931 रुपये 38 पैसे की राशि पायी गयी थी, 6% प्रति वर्ष ब्याज के साथ-साथ, पाने का हकदार है। आदेश की तिथि से तीन महीने के भीतर उक्त राशि भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। इस याचिका में परिशिष्ट-7 में अंतर्निहित इस आदेश को चुनौती दी गयी है।

9. याची-सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन ने निवेदन किया कि पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, हजारीबाग द्वारा पारित आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-7) बिना अधिकारिता के है। श्रम न्यायालय को कर्मकार की हकदारी के प्रश्न पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है क्योंकि वह सिर्फ कार्यपालक न्यायालय के तौर पर कार्यरत है और वह अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय के निबंधनों के परे नहीं जा सकता है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि औद्योगिक अधिकरण ने किसी भी लाभ के भुगतान का कोई आदेश पारित नहीं किया था। सिर्फ वर्ष 1983 से प्रोन्नति मामले पर विचार करने का निर्देश था, अतः श्रम न्यायालय कर्मकार को धनीय लाभ देने का निर्देश नहीं दे सकता था। उनके अनुसार, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33(C)(2) के अधीन कार्यवाही में कर्मकार का अधिकार और हकदारी निर्णय किए जाने का विषय-वस्तु नहीं था। अपने निवेदन के समर्थन में, उन्होंने **डी॰ कृष्ण एवं एक अन्य बनाम विशेष अधिकारी, भेल्लोर सहकारी चीनी मिल एवं एक अन्य, (2008)7 SCC 22** में प्रकाशित, मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास प्रकट किया है। **मेसर्स, मिनरल एक्सप्लोरेशन कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, हजारीबाग एवं अन्य अर्थात् डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 6308 वर्ष 2002** में दिनांक 16.4.2009 के इस न्यायालय की एकल पीठ के निर्णय को भी उद्धृत किया है।

10. सम्बद्ध कर्मकार की ओर से उपस्थित होने वाले वरीय अधिवक्ता, श्री के॰ बी॰ सिन्हा ने निवेदन किया कि श्रम न्यायालय रेफरेन्स के निबंधनों अथवा अधिनिर्णय के निबंधनों के परे नहीं गया है। उनके अनुसार, जब केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया कि कर्मकार का अधिक्रमण अन्यायोचित था और तद्द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति मामले पर विचार करने का निर्देश प्रबंधन को दिया, तब ऐसे मामले में, समस्त धनीय लाभ, जिन्हें अन्य कनीय व्यक्तियों को दिया गया था, कर्मकार तक विस्तारित किए जाने वाले स्वाभाविक पारिणामिक राहत थे। उन्होंने आगे निवेदन किया कि केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण द्वारा धनीय लाभों के भुगतान हेतु कोई पृथक आदेश पारित किए जाने की अपेक्षा नहीं की जाती थी जब यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका था कि याची का अधिक्रमण अन्यायोचित था।

11. मेरी दृष्टि में, नियोजक सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड का दृष्टिकोण बिल्कुल ही अन्यायोचित और भ्रामक है। जब अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि कर्मकार का अधिक्रमण अन्यायोचित है, तब सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड सम्बद्ध कर्मकार को उसके पक्ष में पारित अधिनिर्णय के फल से वंचित नहीं कर सकता था। जब केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण ने भूतलक्षी प्रभाव से अर्थात् उस तिथि से जब उसके अन्य कनीयों को प्रोन्नति परक एवं धनीय लाभ दिए गए थे, उसकी प्रोन्नति के मामले पर विचार करने का निर्देश प्रबंधन को दिया था, तब मेरी दृष्टि में, प्रोन्नति परत धनीय लाभ भी देने से इंकार करने का कोई कारण नहीं हो सकता है। औद्योगिक अधिकरण के विशेष निष्कर्षों की दृष्टि में काम नहीं तो वेतन नहीं के आधार पर सम्बद्ध कर्मकार को प्रोन्नति परक धनीय लाभ देने से इंकार किए जाने को न्यायोचित नहीं माना जा सकता है।

12. विद्वान पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय ने सही अभिनिर्धारित किया कि कर्मकार सभी धनीय लाभ का हकदार है। श्रम न्यायालय के ऐसे निष्कर्षों को रेफरेन्स और अधिनिर्णय के निबंधनों के परे नहीं कहा जा सकता है। अत: याची-सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लि॰ द्वारा अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए उठायी गयी आपत्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और इसलिए अस्वीकार किया जाता है।

13. परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका विफल है और याची को पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय द्वारा पारित आदेश और निर्देश का पूरी तरह अनुपालन करने का निर्देश दिया जाता है और ब्याज सहित सारा भुगतान आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर कर्मकार को कर दिया जाना होगा।

व्यय के लेकर कोई आदेश नहीं है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

बबिता उरांव एवं अन्य

बनाम

नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड एवं एक अन्य

M.A. No. 3 of 2009. Decided on 9th November, 2009.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 एवं 173—दुर्घटनावश मृत्यु–अधिकरण द्वारा 2,04,000/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णय किया गया–प्रतिकर की राशि के वर्धन के लिए अपील–अपराधकारी ट्रक अंधाधुंध एवं लापरवाही से आया और मृतक को कुचल दिया–सुसंगत समय पर अपराधकारी ट्रक बीमा कम्पनी के साथ बीमित था–मृतक ट्रक पर ईंट चढ़ाने और

उतारने का कार्य करता था—मृतक की आय 2,400/- रुपए प्रति माह लेते हुए वैयक्तिक खर्चों के लिए उक्त राशि में एक तिहाई राशि की कटौती करने के उपरांत 6% ब्याज के साथ 17 के गुणक को लागू करके 3,27,000/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णय किया गया—अधिनिर्णय तद्नुसार उपान्तरित किया गया—अपील अनुज्ञात। (पैरा 3 से 7)

अधिवक्तागण.—M/s Ashutosh Anand, S. Garapati, For the Appellants; Mr. P. Kumar, For the Respondents.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.—हमने पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है और उनकी सहमति से इस अपील का निस्तारण स्वीकृति ग्रहण करने के चरण में ही किया जा रहा है।

2. प्रतिकर केस सं॰ 41 वर्ष 2007 में मोटर यान दुर्घटना अधिकरण, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 24.9.2008 के निर्णय के विरुद्ध दावेदारों/अपीलार्थीगण ने यह अपील दाखिल की है जिसके द्वारा 6% वार्षिक ब्याज के साथ 2,04,000/- रुपए (दो लाख चार हजार रुपए) की एक राशि एक मोटर यान दुर्घटना में भरत उरांव की मृत्यु के लिए अधिनिर्णय की गई है। दावेदारों का मामला यह है कि 19.1.2007 को दोपहर में मृतक भरत उरांव एक श्रमिक के तौर पर कार्य करने के लिए संस्कृत विद्यालय के निकट पत्राटोली गाँव के निकट आया था और BHD-1765 नम्बर वाला ट्रक अंधाधुंध रूप से और लापरवाही से आया और उसे कुचल डाला जिसके परिणामस्वरुप उसकी घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई। आगे का मामला यह है कि उक्त घटना के समय भरत उरांव 25 वर्ष का था और दावेदार मृतक की विधवा, पुत्रियां एवं माता-पिता है। भरत उरांव (मृतक) प्रति महीने 5,000/- रुपए कमाता था और अपराधकारी वाहन सुसंगतर समय पर नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड के साथ बीमित था। इस प्रकार दावेदार बीमा कम्पनी से 5,00,000/- रुपए (पाँच लाख रुपये) की एक प्रतिकर राशि उसपर ब्याज के साथ पाने के अधिकारी है।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 1 नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड की ओर से उपस्थित होने वाले श्री प्रत्युष कुमार ने अर्जुन भगत, जो वाहन का चालक था जिसके विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया है, को पक्षकार के तौर पर अभियोजित नहीं किया गया है और अपराधकारी वाहन के मालिक ने अपने अपराधकारी वाहन के संबंध में बीमा कवर का उल्लंघन किया है और इस प्रकार बीमा कम्पनी किसी प्रतिकर राशि का भुगतान करने की दायी नहीं है।

4. पक्ष द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के उपरांत, मैं पाता हूँ कि सुसंगत समय पर मृतक भरत उरांव घटना स्थल पर था और BHD-1765 नम्बर वाला अपराधकारी ट्रक अंधाधुंध रूप से और लापरवाही से भरत उरांव को कुचल दिया जिसके परिणामत: उसकी घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई। साक्ष्य एवं पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट से, मैं पाता हूँ कि घटना के समय मृतक की आयु 25 वर्ष थी। इससे भी बढ़कर, बीमा-पत्र स्पष्ट दर्शाता है कि पूर्वोक्त अपराधकारी ट्रक सुसंगत समय पर नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी से बीमित था।

5. अब प्रतिकर की राशि के प्रश्न पर विचार करना है। दावेदार के अनुसार, ट्रक पर ईंट चढ़ाने और उतारने के लिए भरत उरांव प्रति-महीना 5,000/- रुपए कमाया करता था। परन्तु इसको सिद्ध करने के लिए उन्होंने कोई दस्तावेज दाखिल नहीं दिया है। अगर हम भरत उरांव की आय 2,400/- रुपए प्रति-महीना को भी लेते हैं तो उक्त राशि के 1/3 भाग वह राशि (जो मृतक अपने पर खर्च करता) को कटौती करने के उपरांत गुणक के आधार पर प्रतिकर राशि 1600 x 12 x 17 अर्थात् 3,26,400/- (तीन लाख छब्बीस हजार एवं चार सौ रुपए) आती है।

6. अतएव, हमारे विचार से न्यायसंगत एवं उचित प्रतिकर 3,27,000/- (तीन लाख सताईस हजार रुपए) होगा। तद्नुसार, इस आदेश की तिथि से दो महीनों के भीतर केस दाखिल करने की तिथि से 6% वार्षिक ब्याज के साथ प्रत्यर्थीगण सं॰ 1 नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड को 3,27,000/- रुपए के प्रतिकर का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अपीलार्थीगण को पहले ही भुगतान की गई राशि की कटौती करने के उपरांत बीमा कम्पनी प्रतिकर राशि का भुगतान करेगी।

7. तद्नुसार, उपरोक्त यथा इंगित रूप से मैं अधिनिर्णय को उपान्तरित करती हूँ और यह अपील अनुज्ञात की जाती है।

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.—मैं सहमत हूँ।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

सुभाष कुमार सुमन

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 3731 of 2003. Decided on 13th November, 2009.

सेवा विधि—बर्खास्तगी—दुराचरण के लिए पुलिस बल से याची की बर्खास्तगी—याची ने दुकानदारों के साथ झगड़ा किया और गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग किया जब उनके दुकानों से खरीदी गयी वस्तुओं के लिए उससे मूल्य मांगा गया था—विभागीय जाँच में याची के विरुद्ध आरोप पूरी तरह से सिद्ध हुआ—अनुशासित पुलिस बल का सदस्य होने के नाते, उससे ऐसी गतिविधियों में शामिल होने की अपेक्षा नहीं की जाती थी—ऐसा गंभीर दुराचरण पुलिस बल की छवि को धूमिल करता है और इस पर समुचित कार्रवाई करनी होगी—याचिका खारिज।
(पैरा 4, 6, 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.—CWJC No. 2728 of 2000—Distinguished.

अधिवक्तागण.—Mr. Rajesh Kumar, For the Petitioner; J.C. to A.G., For Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और उनकी सहमति से यह रिट याचिका इसी चरण पर निपटायी जा रही है।

2. याची को धनबाद रेलवे पुलिस में बतौर कॉन्सटेबल सेवा करते हुए आरक्षी अधीक्षक, रेलवे पुलिस, धनबाद द्वारा आरोप का मेमो तामील किया गया था जिसमें अभिकथन किया गया था कि विशेष आदेश के बावजूद वह दिनांक 18.6.1998 और 19.6.1998 को अपने कारतूस गोला बारूद के साथ अपनी ड्यूटी पर हाजिर नहीं हुआ और इसके बजाय शराब के नशे में उसने दुकानदारों, विजय तिवारी और विकास अग्रवाल के साथ झगड़ा किया और गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग किया। याची को कारण बताने को कहा गया जिसे उसके द्वारा दाखिल किया गया जिसमें उसने अभिवाक् किया कि वह घटना की अभिकथित तिथि को चिकित्सीय पर्यवेक्षण में था और कै-दस्त और पेट की समस्या से पीड़ित था। याची का कारण बताओ संतोषजनक नहीं पाया गया था और तत्पश्चात् उसके विरुद्ध एक विभागीय जाँच प्रारंभ की गयी थी जिसमें याची ने भी भाग लिया था और अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य और सामग्री के आधार पर जाँच अधिकारी ने याची के विरुद्ध आरोपों को सही पाया और तब उसने

अपनी रिपोर्ट दाखिल की। तत्पश्चात्, अनुशासनिक प्राधिकारी अर्थात् आरक्षी अधीक्षक ने अपने समक्ष प्रस्तुत तथ्यों और सामग्रियों पर विचार करने के बाद दिनांक 31.7.1999 को याची को सेवा से बर्खास्त करने वाला आदेश पारित किया। तत्पश्चात् याची ने पुलिस उप-महानिरीक्षक, रेलवे के समक्ष अपील दायर की लेकिन इसे भी दिनांक 6.6.2000 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस कारण याची ने अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित अपनी बर्खास्तगी के आदेश और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट करने वाले अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को चुनौती देते हुए यह रिट याचिका दाखिल किया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार ने यह दर्शाने हेतु कि धुरेन्द्र राय नामक एक अन्य कॉन्स्टेबल, जिसके विरुद्ध भी समरुप आरोप थे और जिसे विभागीय जाँच के बाद सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, को उसके विरुद्ध पारित बर्खास्तगी के आदेश को अभिखंडित करने के बाद सेवा में पुनर्बहाल करने का निर्देश पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया है, पूरक शपथ पत्र दाखिल करते हुए सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 2728 वर्ष 2000 में दिनांक 7.4.2005 को पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रति को अभिलेख पर लाया है। तद्नुसार, श्री राजेश कुमार निवेदन करते हैं कि वर्तमान याची का मामला भी बिल्कुल ऐसा ही है।

4. अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित याची की सेवा से बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश और साथ-साथ अपीलीय आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि दोनों प्राधिकारियों ने अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य और सामग्रियों एवं साथ-साथ जाँच रिपोर्ट पर विचार किया है और तब इन निष्कर्षों पर पहुँचे हैं कि याची के विरुद्ध लगाए गए आरोप पूर्णत: सिद्ध हुए थे।

5. धुरेन्द्र राय के मामले में पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जिसे पूरक शपथपत्र के परिशिष्ट-12 के तौर पर उपाबद्ध किया गया है, के परिशीलन से प्रकट होता है कि उस मामले में अपचारी के विरुद्ध आरोपों को विभागीय जाँच के दौरान स्थापित नहीं किया जा सका था, जबकि वर्तमान मामले में तथ्य भिन्न हैं। इस मामले में आरोप विभागीय जाँच के दौरान स्थापित और सिद्ध पाए गए थे। दोनों मामलों में दिए गए साक्ष्य भिन्न थे। अत: पटना उच्च न्यायालय द्वारा धुरेन्द्र राय के मामले में दिया गया निर्णय याची के मामले पर लागू नहीं हो सकता है।

6. जहाँ तक इस अभिकथन कि याची ने दुकानदार विजय तिवारी और विकास अग्रवाल के साथ झगड़ा किया था और गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग किया था, का संबंध है, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया उन्होंने प्रभारी अधिकारी, रेलवे पुलिस थाना, डाल्टेनगंज को लिखकर दिया कि उनका याची के साथ कोई विवाद नहीं था और घटना की अभिकथित तिथि अर्थात् 18.6.1998 को ऐसी कोई घटना जैसा अभिकथित किया गया है नहीं हुई थी और इसलिए मामले के इस दृष्टिकोण में याची की बर्खास्तगी अपास्त किए जाने योग्य है। यह तर्क किसी भी गुणागुण रहित है क्योंकि जाँच रिपोर्ट, जिसे रिट याचिका के साथ उपाबद्ध किया गया है, के परिशीलन से यह प्रकट है कि विजय तिवारी और विकास अग्रवाल, दोनों व्यक्ति जिनके बारे में कहा गया है कि उन्होंने याची के पक्ष में पत्र, जो परिशिष्ट-10 में अंतर्निहित है, जारी किया था, वस्तुत: विभागीय जाँच में गवाह के तौर पर उपस्थित हुए थे और उन्होंने यह कथन करते हुए कि याची ने उनके साथ झगड़ा किया था और गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग किया था जब उससे उनकी दुकानों से खरीदी गई वस्तुओं के लिए मूल्य मांगा गया था, याची के विरुद्ध आरोप का पूरा समर्थन किया था।

7. अत: रिट याचिका के परिशिष्ट-10 में अंतर्निहित इन दोनों व्यक्तियों अर्थात् विजय तिवारी एवं विकास अग्रवाल द्वारा अभिकथित तौर पर डाक से भेजे गए पत्र पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

8. चूँकि याची अनुशासित पुलिस बल का सदस्य था, अतः उसके द्वारा ऐसे कृत्य किए जाने की अपेक्षा नहीं की जाती है। एक पुलिस कार्मिक द्वारा किए गए ऐसे गंभीर दुराचरण से समाज में एक गलत संदेश जाता है और यह पुलिस बल की छवि को धूमिल करता है, अतः एक पुलिस कार्मिक के ऐसे दुराचरण के साथ समुचित कार्रवाई करनी होगी।

9. मेरी दृष्टि में सेवा से याची की बर्खास्तगी की सजा आरोप के मुकाबले समुचित और अनुपातिक थी।

10. तद्नुसार, इस रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाए जाने के कारण इसे खारिज किया जाता है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

लक्ष्मण सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 6059 of 2008. Decided on 16th November, 2009.

झारखण्ड पेंशन नियमावली, 2000—नियम 43(a) एवं 43(b)–पेंशन का रोका जाना–विभागीय कार्यवाही अथवा दांडिक कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान उपदान और पेंशन रोकने की शक्ति सरकार को नहीं है–विभागीय/दांडिक कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान उपदान और पेंशन रोकने के लिए नियमावली और कार्यपालक आदेश सशक्त नहीं करते हैं–अनंतिम पेंशन का 75% दिया जाना अनुज्ञात करता हुआ वित्त विभाग का दिनांक 16.6.2008 का पत्र सं॰ 194 नजरअंदाज करने योग्य है–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 7 से 11)

निर्णयज विधि.–2007(4) JCR 1 (Jhr.) (FB)—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. J.N. Pandey, For the Petitioner/Appellant(s); JC to Sr. SC-I, For the Opposite Party/Respondents.

आदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दाखिल की गयी इस रिट याचिका में याची ने उसे जो दिनांक 29.2.2008 को सेवानिवृत्त हो चुका है, पेंशन और उपदान की मंजूरी और भुगतान का निर्देश प्रत्यर्थीगण को जारी करना इप्सित करता है। सामान्य भविष्य निधि, सामूहिक बीमा और उपयोग में नहीं लाई गई उपार्जित छुट्टी भुनाने सहित सारे सेवानिवृत्ति लाभों को मंजूर करने एवं भुगतान करने और सेवानिवृत्ति लाभों, जिन्हें प्रत्यर्थीगण द्वारा रोक लिया गया है, की राशि पर ब्याज भुगतान करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने के लिए प्रार्थना की गयी है।

2. प्रत्यर्थीगण ने प्रतिशपथपत्र दाखिल किया है जिसमें उन्होंने पैरा 10 में अभिवाक् किया है कि पूरा पेंशन और अन्य लाभों को इस कारण नहीं दिया जा सकता है क्योंकि वाणिज्य कर विभाग, झारखंड सरकार ने झारखंड पेंशन नियमावली की धारा 43(b) के अधीन पहले ही कार्यवाही प्रारंभ कर दिया है क्योंकि याची को राज्य को 12 करोड़ रुपयों की राशि की राजस्व हानि के मामले में संलिप्त पाया गया है और वित्त विभाग, झारखंड सरकार के दिनांक 16.6.2008 के पत्र सं॰ 194 के मुताबिक जब किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध एक विभागीय कार्यवाही लंबित है, तो पेंशन का सिर्फ 75% अनंतिम पेंशन के तौर पर मंजूर किया जा सकता है।

3. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेखों का परिशीलन किया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यद्यपि याची ने दिनांक 29.2.2008 को अधिवर्षिता प्राप्त की, फिर भी उसके पेंशन, उपदान अथवा अन्य सेवानिवृत्ति पश्चात लाभों का भुगतान उसे नहीं किया गया है और प्रत्यर्थीगण ने बिना किसी कारण के याची को भुगतान योग्य देय का भुगतान रोक दिया है।

5. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि याची, जिसने लगभग 12 करोड़ रुपयों की अनियमितता अभिकथित तौर पर की है, के विरुद्ध एक विभागीय कार्यवाही लंबित है और इसलिए याची की सेवानिवृत्ति के बाद उसके विरुद्ध जाँच कार्यवाही प्रारंभ की गयी है जो प्रगति में है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि यद्यपि याची के विरुद्ध जाँच लंबित है, फिर भी **डॉ॰ दूध नाथ पांडे बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य 2007 (4) JCR (Jhr.) (F.B.)** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में सेवानिवृत्ति पश्चात लाभों को रोका नहीं जा सकता है।

7. अभिलेखों का परिशीलन प्रकट करता है कि इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के बाद एक कार्यपालक आदेश जारी किया गया है जिसके द्वारा यह निर्देश दिया गया है कि जहाँ राज्य को कारित राजस्व क्षति के मामले में अंतर्ग्रस्त व्यक्ति के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी है और कार्यवाही लंबित है, वहाँ पेंशन का 75% अनंतिम पेंशन के तौर पर मंजूर किया जा सकता है और शेष राशि का भुगतान रूका रहेगा। उस निर्णय के अनुसरण में प्रत्यर्थीगण ने याची को भुगतान योग्य सेवानिवृत्ति पश्चात् लाभों का भुगतान रोक दिया है।

8. बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(a) एवं नियम 43(b) और सरकार द्वारा जारी परिपत्र, जिसके द्वारा राज्य सरकार को पेंशन की राशि की मंजूरी रोकने का निर्देश दिया गया है के परिशीलन के बाद इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष संदर्भित किया गया था कि क्या किसी मार्गदर्शक सिद्धांतों की अनुपस्थिति में न्यायिक अथवा विभागीय कार्यवाही के लम्बित रहने के आधार पर उपदान और उपार्जित छुट्‌टी भुनाने से रोकने की शक्ति राज्य सरकार के पास है और पूर्णपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(a) एवं 43(b) के अधीन विभागीय कार्यवाही अथवा दांडिक कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान राज्य सरकार को उपदान और पेंशन रोकने की शक्ति नहीं है।

9. उक्त की दृष्टि में, यह प्रकट है कि नियमावली और कार्यपालक आदेश विभागीय कार्यवाही अथवा दांडिक कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान उपदान और पेंशन रोकने हेतु सशक्त नहीं बनाता है। अत: **डॉ॰ दूधनाथ पांडे (ऊपर)** मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में सरकार द्वारा जारी परिपत्र, जैसा प्रति शपथ पत्र के पैरा-10 में उल्लिखित है, नजरअंदाज करने योग्य है।

10. चूँकि जैसा विवाद उठाया गया है, वैसा विवाद **2007 (4) JCR 1 (Jhr.) (F.B.)** में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय द्वारा सुलझाया जा चुका है, याचिका पूर्वोक्त मामले में उक्त निर्णय से पूरी तरह आच्छादित होती है।

11. यह रिट याचिका इस न्यायालय की पूर्वोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय के अनुसार निपटायी जाती है और याचिका अनुज्ञात करने योग्य है।

यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। ऊपर किए गए संप्रेक्षणों के आलोक में प्रत्यर्थीगण को इस आदेश की एक प्रति के प्रस्तुतीकरण की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर याची को भुगतान योग्य राशि का भुगतान करने पर विचार करना होगा।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

सुधीर प्रसाद सिन्हा एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1257 of 2005. Decided on 8th November, 2009.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 147/448/323/504—गृह-अतिचार, उपहति एवं अपमान–उन्मोचन याचिका की खारिजी–घटना तब हुई जब याचीगण ने परिवादी बि॰ प॰ को उसके आवासीय परिसर से बेदखल करने की कोशिश की–कम्पनी द्वारा परिवादी के विरुद्ध कम्पनी की संपत्ति पर उसके गलत स्वामित्व के लिए बेदखली मामला दाखिल किया गया–याचीगण के विरुद्ध जाँच में कोई आपत्तिजनक सामग्री नहीं पायी गयी–याचीगण के विरुद्ध कोई भी अपराध निर्मित नहीं हुआ–यद्यपि समन विचारण मामले में उन्मोचन का अभिव्यक्त प्रावधान संहिताबद्ध नहीं किया गया है–लेकिन ऐसी स्थिति में जब उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है, अभियुक्तों के विरुद्ध दांडिक अभियोजन समाप्त कर दिया जाना चाहिए–आक्षेपित आदेश अपास्त–दांडिक अभियोजन अभिखंडित। (पैरा 6 से 9)

निर्णयज विधि.–AIR 1992 SC 2206—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. R.S. Majumdar, For the Petitioners; Mr. A.B. Mahto, For the State; Mr. S.N. Das, For the O.P. No.2.

आदेश

याचीगण ने दिनांक 17.8.2001 को श्रीमती रीता मिश्र, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याचीगण की ओर से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन दाखिल उन्मोचन याचिका को खारिज कर दिया गया था और जिसे दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 51 वर्ष 2001 में दिनांक 20.8.2005 को अपर सत्र न्यायाधीश, IX, धनबाद द्वारा दिनांक 17.8.2001 के आक्षेपित आदेश को मान्य ठहराते हुए संपुष्ट किया गया था, सहित उनके विरुद्ध प्रारंभ की गयी समस्त दांडिक कार्यवाहियों के अभिखंडन हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि याचीगण के विरुद्ध परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा परिवाद दाखिल किया गया था जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह कथन किया गया था कि उसका पिता रामप्रीत सिंह मेसर्स टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड का कर्मचारी था और उक्त कम्पनी द्वारा उसे एक आवास गृह आबंटित किया गया था। उसका पिता उक्त कम्पनी की सेवा से 21 फरवरी 1978 को सेवानिवृत्त हुआ। यद्यपि उसके पिता ने अपने स्थान पर परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की नौकरी के लिए आवेदन दिया था लेकिन इस पर विचार नहीं किया गया था और इसी बीच दिनांक 13.4.1987 को उसके पिता की मृत्यु हो गयी। यह कथन किया गया है कि घटना की अभिकथित तिथि अर्थात् दिनांक 16.10.1996 को याचीगण 5-6 अनजान व्यक्तियों के साथ परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के आवास गृह में घुस गया और उसे तुरत आवास गृह खाली करने को कहा जिसका परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा विरोध यह करते हुए किया गया कि जब तक उसके और टिस्को के बीच विवाद का समाधान नहीं होता वह आवासगृह खाली नहीं करेगा क्योंकि इसके अलावा उक्त आवास गृह के संबंध में जिला न्यायाधीश, धनबाद के न्यायालय में टाइटल अपील सं॰ 60 वर्ष 1995

भी लंबित था। परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के ऐसे जवाब ने याचीगण को प्रकोपित किया जिन्होंने भद्दी और गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग किया और परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को उसके आवासगृह से खींचते हुए मारा-पीटा। लेकिन गवाहों के समय पर हस्तक्षेप से याचीगण और अन्य अभियुक्तगण घटनास्थल से चले गए लेकिन परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को धमकी देने के बाद। दाखिल किए गए परिवाद की जाँच करने के बाद याचीगण सहित अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147/448/323/504 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया और तद्नुसार सम्मन जारी किया गया। तब याचीगण ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन अपने उन्मोचन के लिए उन्मोचन याचिका दाखिल किया जिसे विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा यह संप्रेक्षित करते हुए कि समन विचारण मामले में उन्मोचन का कोई प्रावधान नहीं है, खारिज कर दिया गया। तब याचीगण ने यह घोषणा करवाने के लिए कि सी॰ पी॰ केस सं॰ 748 वर्ष 1996 में न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद द्वारा दिनांक 12.5.1998 को पारित आक्षेपित संज्ञान आदेश पोषणीय नहीं है, पटना उच्च न्यायालय के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दांडिक विविध सं॰ 4992 वर्ष 1998 (आर॰) दाखिल किया। पटना उच्च न्यायालय की राँची पीठ ने याचिका पर विचार करने के बाद और **के॰ एम॰ मैथ्यू बनाम केरल राज्य, ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 2206** में प्रकाशित, मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास प्रकट करने के बाद आक्षेपित आदेश को अभिखंडित कर दिया और अवर न्यायालय को निर्देश दिया कि वह पक्षों को पुन: सुने और अभियुक्त याचीगण की ओर से दिनांक 7.8.1997 को दाखिल याचिका पर युक्तिसंगत आदेश पारित करे।

3. पटना उच्च न्यायालय द्वारा किए गए उक्त संप्रेक्षण के अनुसरण में याचीगण ने विचारण दंडाधिकारी के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन पुन: याचिका दाखिल किया जिसे भी उसके दिनांक 17.8.2001 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। याचीगण ने तब इस न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 395 वर्ष 2001 दाखिल किया जिसे दिनांक 26.2.2002 को यह संप्रेक्षण करते हुए निपटाया गया कि याचीगण को पहले सत्र न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण दाखिल करना चाहिए था। इस संप्रेक्षण के अनुसरण में, याचीगण ने सत्र न्यायाधीश-IX, धनबाद के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 51 वर्ष 2002 दाखिल किया जिन्होंने पक्षों को सुनने के बाद विचारण दंडाधिकारी द्वारा दिनांक 17.8.2001 को पारित आदेश को संपुष्ट किया और याचीगण की उन्मोचन याचिका खारिज कर दी और इस कारण आक्षेपित आदेशों के अभिखंडन हेतु वर्तमान याचिका दाखिल की गयी है। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क देते हुए निवेदन किया है कि परिवाद याचिका में लगाए गए आरोप झूठे और मनगढ़ंत है जिन्हें टिस्को प्रबंधन के अधिकारियों को परेशान करने के लिए द्वेषपूर्वक लाया गया था क्योंकि वे परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को प्रश्नगत आवास गृह खाली करने को कह रहे थे और इस संबंध में प्रबंधन ने वैध प्रक्रिया अपनायी है जिसे परिवाद याचिका में माना भी गया है। यह तथ्य नहीं है कि याचीगण ने परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को फटकारा है अथवा प्रश्नगत आवासगृह से उसे बेदखल करने के लिए किसी तरीके के बल का प्रयोग किया है जैसा कि उनके विरुद्ध अभिकथन किया गया है। मामले का झूठा होना इस तथ्य से प्रकट होगा कि टिस्को लि॰ परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के पिता और उसकी मृत्यु के बाद परिवादी-पुत्र, जो धनबाद में वकील है, को बेदखल करने के लिए वर्ष 1979 से 20 वर्षों से कानूनी लड़ाई लड़ रहा है। कम्पनी द्वारा दाखिल टाईटल (बेदखली) सूट सं॰ 248 वर्ष 1979 में डिक्री भी हुई थी और अपीलीय न्यायालय तक इसे मान्य ठहराया गया था। साथ-साथ कम्पनी ने परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विरुद्ध कम्पनी की संपत्ति पर उसके गलत स्वामित्व के लिए कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 630 के अधीन याचिका दाखिल की है।

4. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि तथ्यों और परिस्थितियों में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 147 इस तथ्य की दृष्टि में लागू नहीं होती है कि परिवादी ने परिवाद याचिका में सिर्फ याचीगण

को नामित किया है लेकिन भा॰ द॰ सं॰ की धारा 147 की परिधि के अंतर्गत मामले को लाने के लिये बिना नाम और उनका विशेष लक्षण प्रकट किए बिना दो-तीन व्यक्तियों को जोड़ा है। इसी प्रकार, भा॰ द॰ सं॰ की धारा 448 लागू नहीं होती है क्योंकि परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने न्यायालय में अपने कथन में सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करते हुए स्पष्टत: स्वीकार किया है कि वह अपने घर से बाहर तब आया था जब उसे बाहर से बुलाया गया था और इस तथ्य को जाँच के दौरान दो गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 2 द्वारा संपुष्ट किया गया है और इस प्रकार यह आरोप कि याचीगण ने परिवादी को घर से बाहर खींचकर निकाला, को सिद्ध नहीं किया जा सकता है। जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 504 का संबंध है, याचीगण में से किसी के विरुद्ध गाली-गलौज की भाषा की प्रकृति अथवा उनमें से किसी के द्वारा अपमानजनक शब्द के प्रयोग को लेकर कोई विशेष आरोप नहीं है। परिवादी के विरुद्ध अपमानजनक अथवा गाली-गलौज की भाषा के प्रयोग को लेकर याचीगण के विरुद्ध लगाए गए आरोप पर गवाह मौन हैं। तथ्यों और परिस्थितियों में, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147/448/504 के अधीन लिये गये अपराध का संज्ञान कायम नहीं रखा जा सकता है। उन्होंने प्राख्यान किया कि जाँच के दौरान परिवादी की ओर से किसी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है और अ॰ सा॰ 1, जिसका परीक्षण किया गया था, दूर दराज के इलाके, जो सुंदरपुर बस्ती के नाम से लोकप्रिय है, का वासी था और इस तरह अ॰ सा॰ 1 को चांस गवाह की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इसी प्रकार, अ॰ सा॰ 2 परिवादी का पुत्र है जिसने जाँच के दौरान अपने बयान में स्वीकार किया है कि याचीगण उसके आवास पर पहले कभी नहीं आए थे एवं ऐसे कथन आरोप को असत्य साबित करता है।

5. दूसरी ओर परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस॰ एन॰ दास ने निवेदन किया है कि परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 का अपने परिवाद याचिका में यह स्पष्ट प्राख्यान है कि याचीगण और अन्यों ने उसे 'वकील-फकील', वकीलों के विरुद्ध एक अनादर सूचक शब्द, कह कर संबोधित करके उसका अपमान किया है।

6. मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों एवं साथ-साथ पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों पर विचार करने के बाद मैं पाता हूँ कि याचीगण और अन्यों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147/ 448/504 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है यद्यपि याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता इस बात पर डटे हैं कि जाँच में याचीगण के विरुद्ध कोई आपत्तिजनक सामग्री संग्रहित नहीं की गयी है लेकिन विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने गलत रूप से विचार करके भारतीय दंड संहिता की धारा 147/448/504 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया है और इस तर्क में सार प्रकट होता है। स्वीकृत तौर पर याचीगण टिस्को लि॰ जो अब टाटा स्टील के नाम से जाना जाता है, के कर्मचारी है और जो विगत 20 वर्षों से परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के अनधिकृत कब्जे से प्रश्नगत आवासगृह को खाली कराने के लिए कानूनी लड़ाई लड़ रहे हैं। टाइटल (बेदखली) सूट, जिसे लाया गया था, की डिक्री टिस्को के पक्ष में की गयी थी और जिसे इस न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था। मैं परिवाद याचिका में किए गए तर्कों और प्राख्यानों से पाता हूँ कि कम्पनी अधिनियम 1956 की दांडिक प्रावधानों के अधीन धारा 630 के अधीन उक्त कम्पनी द्वारा परिवादी के विरुद्ध एक मामला भी दाखिल किया गया था जिसमें अंतिम आदेश परिवादी के विरूद्ध दिया गया था। फिर भी जब परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 सारे मामलों में हार गया तब उसने वर्तमान परिवाद मामला दाखिल किया जिससे यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है यह याचीगण को झूठा फँसा कर कम्पनी पर अनुचित दबाव डालने के आशय से किया गया है जो टिस्को लि॰ के कर्मचारी है और जिनकी परिवादी से कोई निजी शिकायत अथवा दुश्मनी नहीं है।

7. विरोधी पक्षकार सं० 2 की ओर से तर्क किया गया है कि चूँकि अभियुक्तों के उन्मोचन का प्रावधान समन विचारण मामले में उपलब्ध नहीं है, अत: विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन याचीगण की ओर से दाखिल याचिका को खारिज किया जाना न्यायोचित था जिसे अपर सत्र न्यायाधीश-IX धनबाद द्वारा सही तौर पर मान्य ठहराया गया है और संपुष्ट किया गया है और इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने एक समन मामले, **ए० आई० आर० 1992 एस० सी० 2206 में प्रकाशित (के० एम० मैथ्यू बनाम केरल राज्य)** के मामले में कार्यवाही समाप्त करने अथवा प्रक्रिया विखंडित करने की विधि की समुचित व्याख्या की है और अभिनिर्धारित किया:–

> *''उच्च न्यायालय इस संबंध में कुछ ज्यादा ही तकनीकी प्रतीत होता है। यदि समन मामलों के विचारण से संबंधित प्रावधानों को सावधानीपूर्वक पढ़ा जाता है, तब दंडाधिकारी को अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही समाप्त करने की शक्ति होने से इन्कार नहीं किया जा सकता है। संहिता की धारा 204 दर्शाती है कि संज्ञान लेने और अभियुक्तों को सम्मन जारी करने के बाद मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही प्रारंभ होती है। जब अभियुक्त सम्मन के जवाब में उपस्थित होता है तब मजिस्ट्रेट को संहिता के अध्याय XX के अधीन कार्यवाही करनी होगी लेकिन अभियुक्तों के विचारण की आवश्यकता तब उत्पन्न होती है जब परिवाद में आरोप हो कि अभियुक्तों ने अपराध किया है। यदि परिवाद में अभियुक्त को अपराध, करने में अंतर्ग्रस्त होने का आरोप नहीं है तब यह अंतर्निहित है कि मजिस्ट्रेट को अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने की अधिकारिता नहीं है।.......*
>
> *अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष यह अभिवाक् करने का हक है कि उसके विरुद्ध प्रक्रिया जारी नहीं की जानी चाहिए थी। मजिस्ट्रेट परिवाद पर पुनर्विचार करके, यदि वह इस बात से संतुष्ट है, तो कार्यवाही समाप्त कर सकता है कि ऐसा कोई अपराध नहीं है जिसके लिए अभियुक्त का विचारण किया जा सके। यह उसका न्यायिक स्वविवेक है। कार्यवाही समाप्त करने अथवा प्रक्रिया को विखंडित करने के लिए मजिस्ट्रेट के लिए कोई विशेष प्रावधान अक्षेपित नहीं है। प्रक्रिया जारी करने का आदेश एक अंतरिम आदेश है, न कि एक निर्णय। इसे फेरफार किया अथवा वापस लिया जा सकता है। यह तथ्य कि प्रक्रिया पहले ही जारी की जा चुकी है, कार्यवाही छोड़ने का वर्जन नहीं है यदि प्रतिवाद स्पष्ट रूप से अभियुक्त के विरुद्ध कोई अपराध प्रकट नहीं करता है।''*

8. यहां इसमें निर्दिष्ट निर्णय कायम रहता है क्योंकि पश्चातवर्ती निर्णय द्वारा इसे उलटा नहीं गया है। उक्त चर्चा की दृष्टि में और ऊपर निर्दिष्ट निर्णय पर विश्वास प्रकट करते हुए मैं पाता हूँ कि क्रमवार अवर न्यायालय **के० एम० मैथ्यू मामले (ऊपर)** में प्रतिपोषित विधि की प्रतिपादना को विचार में लेने में विफल रहे हैं और मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में मैं पाता हूँ कि भा० दं० सं० की धारा 147/448/504 के अधीन अभिकथित अपराध याचीगण के विरुद्ध निर्मित नहीं होते हैं और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की ये धाराएँ विधि में सिद्ध नहीं किए जा सकते हैं। चूँकि परिवादी-वि० प० सं० 2 के अधिवक्ता और साथ-साथ ए० पी० पी० यहाँ ऊपर में चर्चा किए गए सामग्रियों से परे याची के विरुद्ध नयी सामग्री दर्शाने में विफल रहे हैं, दण्ड प्रक्रिया संहिता अभियुक्त के अभियोजन को निर्बधित करता है यद्यपि समन विचारण मामले में उन्मोचन का कोई अभिव्यक्त प्रावधान संहिताबद्ध नहीं किया गया है। लेकिन इसी समय इस प्रतिपादना द्वारा विधि अधिकथित की गयी है कि ऐसी स्थिति में अभियुक्त का दांडिक अभियोजन छोड़ दिया जाए जब उसके विरुद्ध कार्यवाही करने की कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं है।

9. तद्नुसार, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा दिनांक 17.8.2001 को पारित आक्षेपित आदेश और दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 51 वर्ष 2001 में उक्त आदेश को मान्य ठहराता दिनांक 20.8.2005 को अपर सत्र न्यायाधीश, IX, धनबाद द्वारा अभिलिखित पश्चातवर्ती आदेश अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के समक्ष लंबित परिवाद केस सं॰ 748 वर्ष 1996 से उद्भूत याचीगण की दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

यूनाइटेड इंडिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

बनाम

सिलवन्ती लकड़ा एवं अन्य

M.A. No. 104 of 2000. Decided on 4th November, 2009.

एम॰ जे॰ सी॰ केस सं॰ 20/1995 में प्रथम अपर जिला न्यायाधीश सह मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, गुमला द्वारा दिनांक 12.5.2000 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय (अधिनिर्णय दिनांक 17.5.2000 को मुहरबंद एवं हस्तान्तरित) के विरुद्ध।

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 149(2) एवं 168—दुर्घटना में मृत्यु–ये अभिनिर्धारित करने के बावजूद कि मृतक यात्री के तौर पर सामान ढोने वाले वाहन (ट्रक) में यात्रा कर रहा था, अधिकरण ने अपीलार्थी बीमा कम्पनी को मुआवजा देने का निर्देश दिया–प्रत्यर्थी-स्वामी की ओर से ऐसा कोई अभिवाक् नहीं कि मृतक मजदूर के तौर पर न कि यात्री के तौर पर, याात्रा कर रहा था–सिर्फ इसलिए कि वाहन व्यापक रूप से बीमाकृत था, यह यात्री के तौर पर सामान ढोने वाले वाहन में यात्रा कर रहे व्यक्ति के जोखिम को आच्छादित नहीं कर सकता है–अधिकरण द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण कि बीमा कम्पनी मुआवजा देने की जिम्मेवार है क्योंकि वाहन व्यापकतापूर्वक बीमाकृत था, विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है–आक्षेपित आदेश और डिक्री अपास्त–स्वामी को मुआवजा राशि देने का जिम्मेवार अभिनिर्धारित किया गया। (पैरा 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Alok Lal, For the Appellant; Mr. Sunil Kumar, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी-बीमा कम्पनी द्वारा दाखिल यह अपील एम॰ जे॰ सी॰ केस सं॰ 20/95 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, गुमला द्वारा पारित दिनांक 12.5.2000 के निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध है जिसके द्वारा उन्होंने अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी-बीमा कम्पनी मुआवजे की राशि के भुगतान की जिम्मेवार है।

2. मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:-

दावेदार-प्रत्यर्थीगण ने एक मोटर वाहन दुर्घटना में मृतक की मृत्यु के आधार पर मुआवजा भुगतान के लिए दावा याचिका दाखिल किया। दावेदारों का मामला यह है कि दिनांक 30.11.1994 को मृतक ट्रक पर यात्रा कर रहा था और चालक द्वारा ट्रक को उपेक्षापूर्वक और बेहिसाब गति से चलाए जाने के कारण दुर्घटना हुई जिसके परिणामस्वरुप मृतक सहित अनेक व्यक्ति घायल हो गए। विष्णुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 59/94 नामक एक अपराधिक दांडिक मामला, संस्थापित किया गया था। ट्रक का प्रत्यर्थी-स्वामी न तो उपस्थित हुआ न ही मामले का प्रतिवाद किया। अपीलार्थी बीमा कम्पनी ने अनेक आधारों सहित इस आधार पर कि प्रश्नगत ट्रक सामान ढोने वाला वाहन है लेकिन प्रासंगिक समय पर

यह यात्रीयों को ढो रहा था जब अन्य व्यक्तियों के साथ मृतक यात्री के तौर पर यात्रा कर रहा था मामले का प्रतिवाद किया।

3. दावेदारों द्वारा साक्ष्य दिए गए थे और साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् अधिकरण इस निष्कर्ष पर आया कि उस विशेष तिथि पर ट्रक बॉक्साइट चढ़ाने-उतारने में नहीं लगा हुआ था और मृतक श्रमिक के तौर पर सेवारत नहीं था। अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि मृतक यात्री के तौर पर ट्रक पर यात्रा कर रहा था। लेकिन, अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि बीमा कम्पनी मुआवजा देने की जिम्मेवार है।

4. बेहतर सराहना हेतु, अधिकरण द्वारा पारित निर्णय का पैरा 8, 9 एवं 10 यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किए जाने योग्य है:—

> *"8. वि० प० सं० 3 की ओर से तर्क किया गया है कि दावेदार की ओर से दिए गए साक्ष्य और दावा याचिका के मुताबिक मृतक बॉक्साइट लादने के लिए ट्रक में मजदूर के तौर पर सेवारत था जो सत्य नहीं है और न ही इसे पक्के तौर पर सिद्ध किया गया है। APW 1 से 3 अभिकथित तौर पर दुर्घटना के चश्मदीद गवाह है लेकिन वे चश्मदीद गवाह नहीं है और APW 3 के अलावा वे इस घटना के चार्जशीटेड गवाह नहीं है। लगभग सारे गवाहों ने कहा है कि यह ट्रक लोहरदग्गा की ओर गया था और ट्रक खाली था और यात्रीगण लादे थें गवाहों ने स्वीकार किया है कि बॉक्साइट खदान नेतरहाट की ओर डूमरपट पर है और डूमरपट में लादे जाने के बाद इसे चंदवा में उतार दिया गया था। यह सारा स्पष्ट दर्शाता है कि ट्रक खाली था और खान की दिशा में नहीं जा रहा था बल्कि विपरीत दिशा में जा रहा था जहाँ बॉक्साइट को उतारा जाता था। अतः उस विशेष तिथि पर मृतक ट्रक में मजदूर के तौर पर सेवारत नहीं था। दूसरी ओर, प्राथमिकी प्रदर्श-4 और आरोप-पत्र प्रदर्श-5 स्पष्ट दर्शाते हैं कि ट्रक गुमला जा रहा था, यात्रियों को लादे हुए जो झारखंड मुक्ति मोर्चा की रैली में भाग लेने जा रहे थे। APW 3 पिटर ओराओं, इस दुर्घटना का सूचक जिसने प्राथमिकी दर्ज कराई है, बिल्कुल विश्वसनीय नहीं है और पूर्णतया त्याग करने योग्य है क्योंकि उसने प्राथमिकी में स्वयं अपने फर्दबयान का खंडन किया है। दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श-4 की उपस्थिति में, अन्य गवाहों का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है और गवाहों ने दावेदार की प्रेरणा पर झूठा अभिसाक्ष्य दिया है। अतः उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता है। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन से और उपर की गयी चर्चा से स्पष्ट है कि उस विशेष तिथि पर न तो ट्रक बॉक्साइट चढ़ाने-उतारने के काम में लगा हुआ था और न ही मृतक मजदूर के तौर पर सेवारत था और ट्रक यात्रियों को लादे हुये था जो झारखंड रैली में भाग लेने गुमला जा रहे थे और प्रासंगिक तिथि और समय पर मृतक ऐसा ही एक यात्री था। जहाँ तक मृतक की आय का प्रश्न है, सभी गवाहों ने उसकी मासिक आय के बारे में एक ही बात कही है। APW 1 और 2 ने वही बात दुहरायी है जो APW 5 सिलबन्ती लकड़ा, आवेदक ने कही है। लगभग सारे गवाहों ने कथन किया है कि मृतक को कृषि से 700/- रुपये और मजदूरी से 900/- रुपये की आय थी। उन्होंने यह नहीं कहा है कि यह आय लगभग है बल्कि नियत आँकड़ा दिया है जो दावा में दिया गया है और दावेदार द्वारा कहा गया हैं इस तरह वे दावा याचिका में दिए गए आँकड़ों को तोते की तरह दुहराने वाले सिखाए गए गवाह है और विश्वसनीय नहीं है। इसके अलावा, साक्ष्य के अनुसार, मृतक*

अपनी-जमीन पर सब्जियाँ उगाता था और धान की खेती करता था। सब्जियाँ उगाने में लगे व्यक्ति, जिससे उसे पूरे साल 700/- रुपये की मासिक आय होती थी, को पूरे समय तक खेत में काम करना पड़ता है। उसे दूसरी जगह मजदूर के तौर पर काम करने का समय नहीं होता है। दोनों काम किसी एक व्यक्ति (पुरुष) द्वारा संभव नहीं है। यदि ऐसा हो भी तो अधिक से अधिक, महीने के दौरान कुछ दिनों के लिए मजदूर के तौर पर काम में लगा रह सकता था।

9. जहाँ तक बीमा कम्पनी की जिम्मेवारी का प्रश्न है और लिखित बयान में आपत्ति की गयी है कि घटना के प्रासंगिक समय एवं तिथि पर ट्रक यात्री ढो रहा था जो विधि के साथ-साथ बीमा पॉलिसी शर्त का भी उल्लंघन है। इस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के अधीन आवेदक की ओर से उद्धृत विनिर्णय लागू नहीं होते हैं जिसमें विनिर्णय किया गया है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अनुसार तीसरा पक्ष बीमा निःशुल्क यात्रियों को भी आच्छादित करता है। लेकिन यह निर्णय किसी भी प्रकार से दावेदार के मामले का समर्थन नहीं करता है क्योंकि दावेदार का मामला यह है कि उस विशेष दिन पर मृतक मजदूर के तौर पर ट्रक में काम पर लगा हुआ था। इस प्रकार, दावेदार के अनुसार मृतक निःशुल्क यात्री नहीं था। इसके अतिरिक्त, यात्री को आच्छादित करने की जिम्मेवारी एक पृथक संविदा है जिसके लिए बीमाकर्ता को अलग से प्रतियात्री 110/- रुपये का प्रीमियम देना पड़ता है जैसा वर्तमान मामले में नहीं किया गया है। बीमा अधिनियम की धारा 64VB कोई भी जोखिम, जिसके लिए पहले ही प्रीमियम प्राप्त नहीं किया गया है, उठाने का निषेध करती है। उक्त चर्चा की दृष्टि में, यह स्पष्ट है कि बीमा कम्पनी जिम्मेवार नहीं है और स्वामी ही मुआवजा देने का जिम्मेवार है।

10. मृतक की उम्र और दुर्घटना से इन्कार नहीं किया गया है और इसे अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक साक्ष्य के साथ-साथ दस्तावेजी साक्ष्य से भी सिद्ध किया गया है। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि दुर्घटना के प्रासंगिक दिन और समय पर वाहन बीमाकृत था। पॉलिसी व्यापक थी। अतः आवेदक को दिए गए किसी मुआवजे के लिए बीमा कम्पनी जिम्मेवार है। जहाँ तक किसी दस्तावेज और ट्रक के नियोजक के परीक्षणों की अनुपस्थिति में कि मृतक उक्त ट्रक का कर्मचारी नहीं था, और वाहन खाली था और यात्रीगण के साथ लोहरदग्गा जा रहा था और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से, यह धारित करना मुश्किल है कि मृतक ट्रक पर सेवारत था और मजदूर के तौर पर 900/- रुपया कमा रहा था और यह सुरक्षा पूर्वक धारित किया जा सकता है कि दुर्घटना के प्रासंगिक दिन और समय पर मृतक उक्त ट्रक का कर्मचारी नहीं था। लेकिन वि० प० सं० 3 द्वारा खेती से होनेवाली उसकी 700/- रुपये की आय को चुनौती नहीं दी गयी है और इंकार नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त वह कहीं और मजदूर के तौर पर कमा सकता है जो 500/- प्रतिमाह होता है और यह मृतक निःशुल्क यात्री था। हरेक प्रकार से, आवेदक की ओर से उद्धृत विनिर्णय इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह लागू होते है और उक्त विनिर्णय के आलोक में वि० प० 3 द्वारा किया गया तर्क टिकाऊ नहीं है।"

5. अपीलार्थी-बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री आलोक लाल ने विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण होने के नाते आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधिकरण द्वारा इस निश्चायक निष्कर्ष कि यात्री निःशुल्क यात्री के तौर पर यात्रा कर रहा था, पर आने के बाद बीमा कम्पनी को मुआवजा देने का जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-दावेदारगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री सुनील कुमार ने निवेदन किया कि अपने मामले के समर्थन में कि यात्री मजदूर के तौर पर, न कि यात्री के तौर पर यात्रा कर रहा था, दावेदारों द्वारा पर्याप्त साक्ष्य दिया गया है और इसलिए बीमा कम्पनी मुआवजे के भुगतान की जिम्मेवारी से मुकर नहीं सकती है। वैकल्पिक रूप से, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पॉलिसी के व्यापक पॉलिसी होने के नाते, ऐसे मामले में भी जहाँ व्यक्ति याचीगण के तौर पर यात्रा कर रहे हों, बीमा कम्पनी मुआवजा राशि देने की जिम्मेवार है। अंत में विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह एक उपयुक्त मामला है जहाँ बीमा कम्पनी को मुआवजा राशि देनी चाहिए और इसे वाहन के स्वामी से वसूल करना चाहिए।

7. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, ट्रक का प्रत्यर्थी-स्वामी न तो उपस्थित हुआ है और न ही प्रतिवाद किया है। प्रत्यर्थी-स्वामी की ओर से ऐसा कोई भी अभिवाक् नहीं है कि मृतक मजदूर के तौर पर, न कि यात्री के तौर पर, यात्रा कर रहा था। प्राथमिकी और आरोप पत्र सहित साक्ष्य पर विचार करने पर अधिकरण ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि दुर्घटना की प्रासंगिक तिथि पर वाहन यात्री ढो रहा था। अधिकरण द्वारा दर्ज निष्कर्ष कि मृतक यात्री के तौर पर वाहन पर यात्रा कर रहा था, को किसी विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में छेड़ा नहीं जा सकता है।

8. अब प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी व्यक्ति, जो सामान ढोने वाले वाहन में यात्री जैसा यात्रा कर रहा था, की मृत्यु के संबंध में बीमा कम्पनी मुआवजा के भुगतान की जिम्मेवार अभिनिर्धारित की जा सकती है। उत्तर नकारात्मक होगा। अधिकरण द्वारा अभिव्यक्त यह दृष्टिकोण कि बीमा कम्पनी मुआवजा देने की जिम्मेवार है क्योंकि वाहन व्यापकतापूर्वक बीमाकृत था, विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है। मेरे विचार में, सिर्फ इसलिए कि वाहन व्यापकतापूर्वक बीमाकृत है, यह सामान ढोनेवाले वाहन में किसी व्यक्ति के यात्री के तौर पर यात्रा करने के जोखिम को आच्छादित नहीं करता है। वर्तमान मामले में अधिकरण द्वारा दर्ज निष्कर्ष यह है कि मृतक सामान ढोने वाले वाहन में यात्री के तौर पर यात्रा कर रहा था, अतः इसलिए बीमा कम्पनी को मुआवजा देने का जिम्मेवार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है।

9. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, वाहन का स्वामी अपनी जिम्मेवारी अस्वीकार करते हुए सामने नहीं आया है। ऐसी परिस्थितियों में बीमा कम्पनी को मुआवजा राशि देने और इसे वाहन स्वामी से वसूल करने का निर्देश देना समुचित नहीं होगा। बीमा कम्पनी को मुआवजा की राशि देने का निर्देश देते हुए अधिकरण द्वारा पारित निर्णय और अधिनिर्णय को विधि में पोषित नहीं किया जा सकता है। यह सुरक्षित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि वाहन का प्रत्यर्थी-स्वामी मुआवजा राशि देने का जिम्मेवार है।

10. पूर्वोक्त कारणों से, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और अधिकरण द्वारा पारित निर्णय एवं अधिनिर्णय, जहाँ तक उन्होंने बीमा कम्पनी को मुआवजा राशि देने का निर्देश दिया, अपास्त किया जाता है। यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि दावेदार-प्रत्यर्थीगण वाहन के प्रत्यर्थी-स्वामी से मुआवजा राशि वसूल करने के हकदार हैं।

जया रॉय, न्यायमूर्ति.-मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

नूर मोहम्मद अंसारी एवं अन्य

बनाम

मो॰ जाफर इकबाल एवं अन्य

W.P. (S) No. 6259 of 2005. Decided on 19th December 2009.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 1—लिखित कथन–विलम्ब के आधार पर लिखित कथन को स्वीकारने से इनकार–आदेश 8 नियम 1 का प्रावधान उसके अधीन उल्लिखित अवधि के भीतर अपना-अपना लिखित कथन दाखिल करने के लिए बचाव पक्ष के लिए प्रक्रिया के तौर पर मार्गदर्शक सिद्धान्त अधिकथित करता है–लेकिन सिर्फ प्रक्रिया अथवा मार्गदर्शक सिद्धान्त होने के नाते यह विचारण न्यायालय को देर से भी दाखिल किए गए लिखित कथनों को स्वीकार और ग्रहण करने की इसकी शक्ति अथवा स्वविवेक से वंचित नहीं करता है जो इस शर्त के अधीन है कि विलम्ब का कारण संतोषजनक तरीके से स्पष्ट किया गया हो और विलम्ब के कारण दूसरे पक्ष को हुई क्षति की पूर्ति व्यय अधिरोपित करके संभवत: की जा सकती है–विचारण न्यायालय द्वारा इस बात का कोई कारण नहीं दिया गया है कि क्यों उसे आक्षेपित आदेश को पारित करने में एक वर्ष से अधिक समय लगा है–आक्षेपित आदेश अपास्त–नया आदेश पारित करने हेतु विचारण न्यायालय को निर्देश। (पैरा 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–M/s S. Thakur, Ranjan Pd. Sinha, For the Petitioners; M/s Satish Kr. Keshri, Amit Kr., Rishi Pallava, For the Respondents.

आदेश

प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 10 तक का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री सतीश कुमार केशरी प्रारंभ में ही निवेदन करते हैं कि इस मामले में प्रत्यर्थीगण को प्रति शपथ-पत्र दाखिल करने की आवश्यकता नहीं है और उनका प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों के उत्तर में, यदि आवश्यक हो, अपना तर्क प्रस्तुत करेंगे।

2. अभिधान वाद सं॰ 4 वर्ष 2004 में श्री के॰ के॰ झा, अपर मुंसिफ, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 25.8.2005 के आदेश को इस रिट याचिका में चुनौती दी गयी है जिसके द्वारा विद्वान मुंसिफ, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 18.6.2004 के पूर्व आदेश, जिसके अधीन प्रत्यर्थीगण को अपने-अपने लिखित कथनों को दाखिल करने से विवर्जित कर दिया गया था, को वापस लिए जाने से इनकार कर दिया गया है और याचीगण के लिखित कथनों को स्वीकार नहीं किया गया है।

3. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

4. संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थीगण/वादीगण द्वारा दाखिल किए गए टाइटल सूट में दिनांक 17.3.2004 को वर्तमान याचीगण/प्रतिवादीगण उपस्थित हुए हैं। लेकिन सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 8 नियम 1 के अधीन उल्लिखित अवधि के भीतर उनकी ओर से कोई लिखित कथन दाखिल नहीं किया गया था। लिखित कथनों को दाखिल किए जाने की प्रतीक्षा करने के पश्चात् 120 दिनों से अधिक समय बीत जाने पर भी जब लिखित कथन नहीं दाखिल किया गया, विद्वान अवर न्यायालय दिनांक 18.6.2004 का अपना आदेश दर्ज करने की ओर अग्रसर हुआ जिसके द्वारा प्रतिवादीगण अपने-अपने लिखित कथन दाखिल करने से वर्जित कर दिए गए थे।

प्रतिवादीगण/याचीगण ने दिनांक 18.6.2004 के पूर्व आदेश को वापस लिए जाने के लिए और दिनांक 9.8.2004 को उनके द्वारा दाखिल किए गए लिखित कथनों को स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करते हुए दिनांक 25.8.2004 को अवर न्यायालय के समक्ष याचिका दाखिल की। दिनांक 25.8.2005 के अपने आक्षेपित आदेश द्वारा अवर न्यायालय द्वारा प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी।

दिनांक 25.8.2005 के आदेश से व्यथित होकर याचीगण ने दिनांक 23.11.2005 को यह रिट याचिका दाखिल की है।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का इस आधार पर आलोचना किया है कि विद्वान अवर न्यायालय लिखित कथनों को दाखिल करने में विलम्ब के लिए याचीगण द्वारा दिए गए कारणों पर विचार करने में विफल रहा है और यह निर्वचन करके सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 8 नियम 1 के प्रावधानों के भाव का गलत अर्थ लगया है कि इसका प्रावधान परिसीमा की एक आज्ञापक अवधि विहित करता है, और यथोचित मामलों में अवधि का विस्तार करने के लिए अवर न्यायालय को विवेकाधिकार प्रदान नहीं करता है। आगे यह निवेदन किया गया है कि अन्यथा भी अवर न्यायालय ने याचीगण द्वारा दिनांक 25.8.2004 को दाखिल याचिका पर अपना आक्षेपित आदेश पारित करने में एक वर्ष से अधिक समय लिया है और इस बीच वादी को साक्ष्य पेश करने और वाद में आगे की कार्यवाही करने की अनुमति दी है। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते है कि याचीगण पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा यदि उनके लिखित कथनों को स्वीकार नहीं किया जाता है और अपने मामले का बचाव करने के लिए युक्तियुक्त और पर्याप्त अवसर अनुज्ञात नहीं किया जाता है।

6. दूसरी ओर प्रत्यर्थीगण/वादीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि स्वीकृत तौर पर याचीगण ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 8, नियम 1 के प्रावधानों के अधीन उल्लिखित अवधि के भीतर अपने-अपने लिखित कथनों को दाखिल नहीं किया है। अतः विचारण न्यायालय ने वाद में कोई भी लिखित कथन दाखिल करने से प्रतिवादीगण को रोकते हुए दिनांक 18.6.2004 को सही प्रकार से आदेश पारित किया है। विद्वान अधिवक्ता आगे जोड़ते हैं कि याचीगण लिखित कथनों को दाखिल करने में विलम्ब के लिए अपने-अपने स्पष्टीकरण से संबंधित अपने-अपने दृष्टिकोण में संगत नहीं प्रतीत होते हैं। लेकिन, विद्वान अधिवक्ता स्वीकार करते हैं कि दिनांक 25.8.2004 को याचीगण द्वारा दाखिल रिकॉल की याचिका पर विचारण न्यायालय द्वारा लगभग एक साल बाद आक्षेपित आदेश पारित किया गया था और इस बीच, अवर न्यायालय के समक्ष की जा रही कार्यवाहियों में बहुत प्रगति हुई थी।

7. परस्पर विरोधी निवेदनों को सुनने और अवर न्यायालय के आक्षेपित आदेश और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि दिनांक 18.6.2004 का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याचीगण को अपने-अपने लिखित कथनों को दाखिल करने से विवर्जित कर दिया गया था, इस तथ्य के अनुचिन्तन पर था कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 8, नियम 1 के प्रावधानों के अधीन उल्लिखित परिसीमा की अवधि के भीतर याचीगण ने कोई लिखित कथन दाखिल करने का प्रयास नहीं किया था। लेकिन, यह प्रतीत होता है कि दिनांक 18.6.2004 के पूर्व आदेश को रिकॉल करने की प्रार्थना पर, विचारण न्यायालय ने एक वर्ष से अधिक समय तक कोई आदेश पारित नहीं किया था। आक्षेपित आदेश सुझाता है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 8, नियम 1 के प्रावधानों से संबंधित विचारण न्यायालय की अवधारण ये है कि यह परिसीमा की आज्ञापक अवधि अधिकथित करता है। यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 8 नियम 1 के अधीन प्रावधान इसमें उल्लिखित अवधि के भीतर प्रतिवादीगण के लिए अपने अपने लिखित कथन दाखिल करने हेतु प्रक्रिया के रूप में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करता है, लेकिन यह केवल एक प्रक्रिया अथवा मार्गदर्शक सिद्धांत होने के नाते, इस शर्त के अधीन कि विलम्ब के कारणों का संतोषजनक स्पष्टीकरण दिया गया है और विलम्ब के कारण दूसरे पक्ष को हुए अहित की व्यय अधिरोपित करके पर्याप्त रूप से संभवतः क्षतिपूर्ति की जा सकती है, देर से दाखिल किए गए लिखित कथनों को ग्रहन करने और स्वीकार करने की इसकी शक्ति अथवा स्वविवेक से विचारण न्यायालय को वंचित नहीं करता है। यह भी प्रकट है कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई भी कारण नहीं बताया गया है कि क्यों इसने दिनांक 25.8.2004 को दाखिल याचीगण की याचिका पर आक्षेपित आदेश पारित करने में एक साल से अधिक का समय लिया है।

8. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, मैं इस रिट याचिका में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, इसे अनुज्ञात किया जाता है। दिनांक 25.8.2005 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। विचारण न्यायालय को दिनांक 18.6.2004 के इसके पूर्व आदेश को वापस लेने के लिए दिनांक 25.8.2004 की याचीगण की याचिका पर विचार करना होगा और नया आदेश पारित करना होगा। यदि लिखित कथनों को दाखिल करने में हुए विलम्ब के लिए याचीगण के स्पष्टीकरण से विचारण न्यायालय संतुष्ट है, विचारण न्यायालय समुचित आदेशों को पारित कर सकता है और विलम्ब के कारण वादीगण द्वारा सहे गए अहित की क्षतिपूर्ति के लिए याची पर युक्तियुक्त व्यय अधिरोपित कर सकता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

अनिंद्य कुमार गोस्वामी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2832 of 2003. Decided on 9th December, 2009.

सेवा विधि–प्रोन्नति–वर्ष 2001 में सेवा से निवृत्त हो जाने के बाद भी प्रथम कालबद्ध प्रोन्नति के लाभों का नहीं दिया जाना–प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथ पत्र ने अस्पष्ट कथन किया कि याची को प्रथम कालबद्ध प्रोन्नति दिए जाने का मामला सक्रिय रूप से विचाराधीन है–यद्यपि पाँच वर्ष से अधिक समय पहले ही बीत गए हैं, लेकिन याची की शिकायत को अभी भी दूर नहीं किया गया है–याची को कालबद्ध प्रोन्नति के लाभों और ए॰ सी॰ पी॰, इत्यादि देने हेतु प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया गया–5000/- रुपये के व्यय के साथ याचिका अनुज्ञात।
(पैरा 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeeva Sharma, For the Petitioner; G.P.-III, For the Respondents.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. यह एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण मामला है जिसमें याची, जो दिनांक 30.11.2001 को राज्य सरकार की सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है, को अभी तक प्रथम कालबद्ध प्रोन्नति के लाभों का भुगतान नहीं किया गया है जिसका वह अपनी सेवा के दस वर्ष पूरा हो जाने पर अर्थात् दिनांक 1.7.1984 से हकदार था और इस तथ्य के संबंध में कि इस रिट याचिका के लम्बित रहने के दौरान उपकमिश्नर-सह-जिला रजिस्ट्रार, पाकुर ने अपने पत्र सं॰ 140 दिनांक 1.9.2004 (परिशिष्ट-14) द्वारा उप-सचिव, रजिस्ट्रेशन विभाग, झारखंड राज्य, राँची को याची को प्रथम कालबद्ध प्रोन्नति का लाभ और ए॰ सी॰ पी॰, इत्यादि देने के लिए लिखा था और सारे प्रासंगिक कागजात उक्त पत्र के साथ उप-कमिश्नर द्वारा भेजे गए थे लेकिन, दुर्भाग्यवश, झारखंड सरकार मामले पर सो रही है और याची को पूर्वोक्त लाभ नहीं दिया गया है।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 2 से 5 द्वारा दाखिल किए गए प्रति शपथ पत्र में यह बहुत अस्पष्ट रूप से कथन किया गया है कि याची को प्रथम समयबद्ध प्रोन्नति देने का मामला सक्रिय विचाराधीन है। उक्त प्रति शपथ पत्र वर्ष 2004 में दाखिल किया गया था, और यद्यपि, पाँच वर्ष से अधिक समय बीत चुके हैं, लेकिन फिर भी याची की शिकायत को दूर नहीं किया गया है।

4. उक्त कथित तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है, और प्रत्यर्थीगण विशेषत: प्रत्यर्थी सं० 2 को एतद्द्वारा निर्देश दिया जाता है कि पूरक शपथपत्र के परिशिष्ट-14 में अंतर्विष्ट उप-कमिश्नर, पाकुड़ द्वारा भेजे गए पत्र सं० 140 दिनांक 1.9.2004 की दृष्टि में, इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर उस तिथि से जब से याची प्रथम कालबद्ध प्रोन्नति के लाभ और अन्य पारिणामिक लाभों को पाने का हकदार था भुगतान की तिथि तक 10 प्रतिशत प्रति वर्ष ब्याज की दर पर के साथ-साथ आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर कालबद्ध प्रोन्नति के लाभ और ए० सी० पी०, इत्यादि याची को प्रदान करे।

5. इस तथ्य की दृष्टि में कि याची को उसकी सेवानिवृत्ति के बाद भी अनावश्यक मुकदमा प्रारंभ करने हेतु विवश किया गया है, इसलिए वह व्यय पाने का भी हकदार है। तद्नुसार जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है, याची को देय योग्य राशि के साथ-साथ 5000/- रुपये के व्यय के भुगतान के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी० जी० आर० पटनायक, न्यायमूर्ति

बहादुर राम

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 6158 of 2007. Decided on 6th November, 2009.

सेवा विधि–प्रोन्नति–बिहार पंचायत समिति एवं जिला परिषद् (सेवा शर्तें) नियमावली, 1964 के नियम 8 (3) एवं 9—जिला परिषद् के चतुर्थवर्गीय कर्मचारी राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू सेवा शर्त के समान लाभों को पाने के हकदार है–याची चतुर्थवर्गीय पद पर अपनी नियुक्ति की तिथि से नियमित सेवा में होने के नाते उच्चतर ग्रेड में प्रोन्नति के सारे लाभों का हकदार होगा और उसे इन लाभों को देने से इंकार नहीं किया जा सकता है–याची को उसके वर्तमान वेतनमान पर वेतन के साथ-साथ उस अवधि, जिसमें रोलर चालक के तौर पर उसकी सेवाएँ ली गयी है, के लिए स्थानापन्न वेतन देने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया गया। (पैरा 12, 13, 15, 17, 18 और 19)

निर्णयज विधि.–2007 (2) JLJR 471—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. Rupesh Singh, For the Petitioner; J.C. to G.P.-III, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. याची बहादुर राम को जिला परिषद्, दुमका में 155-160/- रुपये वेतनमान में दिनांक 1.7.1974 को माली के तौर पर एक चतुर्थवर्गीय पद पर नियुक्त किया गया था और चपरासी, माली एवं कार्यालय अर्दली के तौर पर काम सौंपा गया था। बाद में उसकी सेवाएँ देवघर स्थानांतरित कर दी गयी थी।

3. यह प्रकट है कि इस तथ्य कि उसके पास हल्के मोटर वाहन/मध्यम वाहन/भारी माल वाहन/रोड रॉलर की अनुज्ञप्ति है, पर विचार करके आरंभ में रॉलर खलासी के तौर पर और फिर दिनांक 20.11.1990

से रॉलर चालक के तौर पर उसकी सेवाएँ ली गयीं थी। विभिन्न स्थानों पर पथ निर्माण कार्य के दौरान कार्यालय में उसके उच्चतर अधिकारी के आदेश द्वारा समय-समय पर ऐसी सेवाएँ ली जाती थी।

4. तत्पश्चात् याची ने कार्यालय में अपने उच्चतर अधिकारियों से रॉलर चालक के पद पर प्रोन्नति देने का निवेदन किया।

5. तत्पश्चात् याची को 375-480/- रुपये वेतनमान पर दिनांक 1.7.1984 से प्रभावी कनीय चयन श्रेणी के लाभ दिए गए थे लेकिन 20 वर्षों से अधिक की सेवा के बाद भी उसे वरीय चयन श्रेणी नहीं दी गयी थी।

याची ने दिनांक 11.12.2004 को और फिर दिनांक 27.9.2004 को उसे वरीय चयन श्रेणी देने के लिए और रॉलर चालक के पद पर उसे प्रोन्नत किए जाने के लिए भी और आगे छठे वेतन पुनरीक्षण कमिटी की अनुशंसाओं के लाभों को दिए जाने के लिए इस आधार पर अपना प्रतिवेदन दिया कि बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद् (सेवा शर्त) नियमावली, 1964 के नियम 8 (3) एवं नियम 9 के प्रावधानों के अधीन जिला परिषद्/जिला बोर्ड के चतुर्थवर्गीय कर्मचारीगण उन्हीं सेवा शर्तों, जो राज्य सरकार के अन्य चतुर्थवर्गीय कर्मचारियों पर लागू है, के द्वारा शासित होते है और उनके हकदार है।

याची के अनेक प्रतिवेदनों का कोई सकारात्मक परिणाम नहीं मिलने पर, उसने उसे छठे वेतन पुनरीक्षण कमिटी की अनुशंसाओं के लाभों, वरीय चयन श्रेणी के लाभों, रॉलर चालक के पद पर प्रोन्नति और रॉलर चालक के वेतनमान में वेतन का बकाया देने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिए जाने की प्रार्थना के साथ वर्तमान रिट याचिका दाखिल किया है।

6. याची द्वारा दावा किए गए अनुतोष प्रारंभिक रूप से निम्नलिखित आधारों पर आधारित है:–

(i) बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद् (सेवा शर्त) नियमावली, 1964 के नियम 8(3) एवं नियम 9 के प्रावधानों के अधीन याची वेतन पुनरीक्षण के लाभों और उच्चतर पदों पर प्रोन्नति सहित उन्हीं सेवा शर्तों, जो राज्य सरकार के चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों पर लागू है, से शासित होता है।

(ii) चूँकि वर्ष 1990 से अनेक अवसरों पर रॉलर चालक का काम लिया गया था, वह न सिर्फ रॉलर चालक का वेतनमान पाने का हकदार है, बल्कि अपेक्षित अर्हताओं जो उसके पास हैं के आधार पर रॉलर चालक के पद पर प्रोन्नति पाने का भी हकदार है।

7. प्रत्यर्थीगण की ओर से एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है। यह तथ्य स्वीकार करते हुए कि दिनांक 1.7.1974 को सहायक विकास कमिश्नर सह-उप मुख्य कार्यपालक अधिकारी, जिला बोर्ड, दुमका के आदेश द्वारा माली के तौर पर याची को नियुक्त किया गया था प्रत्यर्थीगण यह स्पष्ट करना इप्सित करते हैं कि याची की ऐसी नियुक्ति इस तथ्य की दृष्टि में अनुकम्पा के आधार पर की गयी थी क्योंकि उसका भाई भूषण राम, जो भी प्रत्यर्थीगण के अधीन सेवारत था, वर्ष 1973 में मर गया था और मृतक की विधवा अर्थात् सुदामा देवी ने चूँकि उसका पुत्र समय के उस बिन्दु पर अवयस्क था अपने देवर अर्थात् वर्तमान याची को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्त करने के लिए आवेदन दिया था। लेकिन नियुक्ति इस शर्त पर की गयी कि याची विधवा और उसकी अवयस्क पुत्र का भरण-पोषण करेगा।

अपनी नियुक्ति प्राप्त करने के बाद, यद्यपि याची ने अपनी विधवा भाभी और अवयस्क भतीजे का भरण-पोषण करने के शर्त का पालन किया था, लेकिन बाद में उसने उनका भरण-पोषण रोक दिया।

परिणामस्वरुप, विधवा ने अपनी शिकायत प्रस्तुत की थी और ऐसी शिकायत प्रस्तुत किए जाने और यह देखते हुए कि याची ने नियुक्ति की शर्तों को पूरा नहीं किया था, दिनांक 22.12.1991 को उप-विकास कमिश्नर के आदेश द्वारा उसे निलंबित कर दिया गया था और एक विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी।

आगे यह स्पष्ट किया गया है कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग द्वारा जारी दिनांक 5.10.1991 परिपत्र, जो इस संबंध में सारी पूर्व की अधिसूचनाओं को अधिक्रमित करता था, के मुताबिक राज्य सरकार के परिपत्र में अंतर्निहित अनुदेशों की दृष्टि में अनुकम्पा के आधार पर याची की नियुक्ति को ही अनियमित पाया गया था। परिपत्र पक्के तौर पर उल्लिखित करता है कि अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति मृत जनसेवक के निम्नलिखित उत्तराधिकारियों में से एक को दी जानी चाहिए:–

(i) मृत सरकारी सेवक की पत्नी,

(ii) पुत्र,

(iii) अविवाहित पुत्री,

(iv) मृत सरकारी सेवक के पुत्र की विधवा।

यह कथन किया गया है कि चूँकि मृत सरकारी सेवक के वैध उत्तराधिकारियों की पूर्वोल्लिखित श्रेणियों में से किसी में भी याची नहीं आता है अत: उसकी नियुक्ति ही अनियमित थी और सरकारी अधिसूचना के विपरीत थी।

8. प्रत्यर्थीगण का अगला दृष्टिकोण यह है कि जिला परिषद् एक स्वशासी निकाय है और इस प्रकार, इसका कोई भी कर्मचारी राज्य सरकार के कर्मचारियों को दिए गए लाभों के समतुल्य लाभों का दावा नहीं कर सकता है।

आगे यह कथन किया गया है कि दिनांक 15.3.1991 के मेमो के तहत पंचायती राज निदेशालय द्वारा जारी परिपत्र के मुताबिक राज्य सरकार की पूर्वानुमति के बिना तृतीय और चतुर्थ वर्गीय पदों पर कोई नियुक्ति नहीं की जा सकती है और पुन: देवघर जिला परिषद् के कर्मचारियों को वेतन भुगतान हेतु कोष आबंटन और अन्य स्रोतों की अनुपस्थिति में याची को चयन श्रेणी प्रोन्नति के लाभों की मंजूरी नहीं दी जा सकती थी।

याची के इस दावे कि उसकी सेवाएँ रॉलर चालक के तौर पर ली जा रही थी, के संबंध में जिला अभियन्ता द्वारा तात्पर्यित रूप से की गयी ऐसी व्यवस्था प्रत्यर्थीगण पर बाध्यकारी नहीं है क्योंकि सक्षम प्राधिकारी अर्थात् उप विकास कमिश्नर सह-मुख्य कार्यपालक अधिकारी, जिला परिषद् देवघर द्वारा जिला अभियन्ता में ऐसी कोई शक्ति निहित नहीं की गयी थी।

कनीय अभियन्ता, जिला बोर्ड, देवघर द्वारा रॉलर चालक के तौर पर उसे लगाए जाने वाले आदेश (परिशिष्ट-5) के आधार पर तात्पर्यित अधिकार के याची के दावे के संबंध में यह कथन किया गया है कि कनीय अभियन्ता का काम पर लगाए जाने का ऐसा आदेश प्रत्यर्थीगण पर बाध्यकारी नहीं हो सकता है क्योंकि कनीय अभियन्ता, जो स्वयं एक दैनिक मजदूर है, में याची को रॉलर चालक के तौर पर लगाए जाने का ऐसा आदेश जारी करने का प्राधिकार निहित नहीं किया गया था और इसी तरह जिला अभियन्ता, जिला बोर्ड, देवघर (परिशिष्ट-6) अथवा निदेशक, जिला ग्रामीण अभियंत्रण संगठन, देवघर (परिशिष्ट-7) के समरुप तात्पर्यित आदेश भी इन्हीं आधारों पर प्रत्यर्थीगण पर बाध्यकारी नहीं है।

रॉलर चालक के पद पर उसकी प्रोन्नति के लिए याची के दावे के संबंध में यह कथन किया गया है कि रॉलर चालक के किसी पद को मंजूरी नहीं दी गयी है और न ही रॉलर चालक के तौर पर काम करने के लिए याची के पक्ष में किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई आदेश पारित किया गया है। इस प्रकार, रॉलर चालक को दिए जाने वाले वेतन के भुगतान अथवा रॉलर चालक के पद पर उसे प्रोन्नत करने का प्रश्न ही नहीं उद्भूत होता है।

छठे वेतन पुनरीक्षण कमिटी की अनुशंसाओं के आधार पर उसके वेतनमान के पुनरीक्षण के लिए और चयन श्रेणी देने के लिए याची के दावे के संबंध में यह कथन किया गया है कि याची सरकारी सेवक के समतुल्य लाभों का दावा नहीं कर सकता है और सिर्फ राज्य सरकार को ही इस पर निर्णय लेना होगा और प्रस्तावित वेतनमान पर वेतन के भुगतान हेतु निधि आबंटित करनी होगी। यदि, जैसा कि याची द्वारा दावा किया गया है, जब किसी जिले का उप विकास कमिश्नर-सह-मुख्य कार्यपालक अधिकारी जिला परिषद् के मानकों के अधीन विहित सीमाओं से परे पुनरीक्षित वेतनमान के मुताबिक अपने कर्मचारियों को भुगतान कर रहा है, तब ऐसे भुगतान गैर कानूनी हैं और ऐसे उप-विकास कमिश्नर पर अपने प्राधिकार के परे जाने के लिए स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने की जिम्मेवारी होगी।

9. परस्पर विरोधी निवेदनों से उद्भूत मुख्य बिंदु निम्नांकित प्रतीत होते हैं:–

(i) याची को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था यद्यपि ऐसा अनुकम्पा आधारित नियुक्ति, प्रत्यर्थीगण के मुताबिक, इस तथ्य की दृष्टि में कि वह मृत सरकारी सेवक के वैध उत्तराधिकारियों के किसी भी श्रेणी के अधीन नहीं आता था जो सरकारी परिपत्र के मुताबिक अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति हेतु हकदार हो सकते है।

(ii) याची को चतुर्थवर्गीय पद पर नियुक्त किया गया था, यद्यपि प्रारंभ में माली के तौर पर लेकिन चपरासी, कार्यालय अर्दली, रॉलर खलासी और कभी-कभार रॉलर चालक के तौर पर काम सहित विभिन्न प्रकृति के कामों में उसकी सेवाओं का प्रयोग किया जाता था।

(iii) सक्षम प्राधिकारी अर्थात् उप-विकास कमिश्नर-सह-मुख्य कार्यपालक अधिकारी के आदेश द्वारा रॉलर चालक के तौर पर याची को कभी नियुक्त नहीं किया गया था।

10. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, याची द्वारा दावा किए गए राहत इस विवाद्यक के इर्द-गिर्द घूमते हैं कि क्या वह जिला परिषद् का कर्मचारी होने के नाते राज्य सरकार के चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों की सेवा शर्तो के साथ समतुल्यता का दावा करने का हकदार है। ऐसा दावा बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद् (सेवा शर्त) नियमावली, 1964 के नियम 8 (3) और नियम 9 के प्रावधानों पर आधारित है।

11. रघुनाथ पूर्ती बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6466 वर्ष 2005 मामले और सदृश मामलों में इस न्यायालय के एकल पीठ के समक्ष विचार करने हेतु ऐसा ही विवाद्यक आया था। पूर्वोल्लिखित मामलों में अंतर्ग्रस्त विवाद्यक वही थे अर्थात् क्या जिला परिषद् के कर्मचारियों की सेवा शर्तें राज्य सरकार के चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों के लिए प्रवृत्त नियम द्वारा मार्गदर्शित की जाएँगी और इस संदर्भ में, क्या सरकारी कर्मचारियों की अधिवर्षिता आयु में बढ़ोत्तरी जिला परिषदों के चतुर्थवर्गीय कर्मचारियों पर भी लागू होंगी।

12. उक्त विवाद्यक पर एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष है कि जिला परिषद् का चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले सेवा शर्त के समान लाभों को पाने के हकदार है। यह निष्कर्ष बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद् (सेवा शर्त) नियमावली, 1964 के नियम 8(3) और नियम 9 के प्रावधानों के आधार पर निकाले गए थे और एकल न्यायाधीश के उक्त निष्कर्ष को **रघुनाथ पूर्ती एवं एक अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** 2007(2) JLJR 471, में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा अभिपुष्ट किया गया था।

13. स्वीकृत तौर पर याची, जिला परिषद् का कर्मचारी होने के नाते, बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद् (सेवा शर्त) नियमावली, 1964 द्वारा मार्गदर्शित होता है जो चपरासी और समरुप अन्य कर्मचारियों सहित चतुर्थवर्गीय कर्मचारियों की सेवा शर्तों को शासित करता है।

14. रघुनाथ पूर्ती (ऊपर) मामले में निर्णीत निर्णयाधार वर्तमान मामले के तथ्यों पर बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद् (सेवा शर्त) नियमावली, 1964 के नियम 8 के उपनियम 3 और नियम 9 के प्रावधानों के प्रकाश में भी पूरी तरह लागू होता है।

15. ऐसी परिस्थितियों में, चतुर्थ वर्गीय पद पर अपनी नियुक्ति की तिथि से ही नियमित सेवा में रहने के नाते याची उच्चतर श्रेणियों में प्रोन्नति के सारे लाभों का हकदार होगा और प्रत्यर्थीगण द्वारा उसे इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। वस्तुत: इस अधिकार की प्रकट मान्यता में याची को स्वीकृत तौर पर उसकी नियुक्ति की तिथि से उसकी सेवा के दस वर्षो के पश्चात् दिनांक 1.7.1984 से प्रभावी कनीय चयन श्रेणी भी दी गयी थी। अत: नियमावली, जो उसकी सेवा शर्तों को मार्ग दर्शित करती है, के अनुसार वरीय चयन श्रेणी पाने का वह हकदार होगा।

16. प्रत्यर्थीगण के इस प्रतिवाद की याची की प्रारंभिक नियुक्ति स्वयं अवैध थी के संबंध में, यह ध्यान में लिया जाना चाहिए कि प्रत्यर्थीगण ने वर्ष 1991 के तात्पर्यित परिपत्र के तत्सम किसी ऐसे अधिसूचना/परिपत्र को इंगित नहीं किया है जिसके द्वारा अनुकम्पा आधारित नियुक्ति की पात्रता मृत सरकारी सेवकों के वैध उत्तराधिकारियों के विशेष वर्ग तक सीमित कर दी गयी है। इसके अलावा, ऐसी तात्पर्यित अनियमितता के बावजूद, प्रत्यर्थीगण ने उसकी सेवा समाप्ति द्वारा सेवा से अलग करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है। अत: यह माना जाएगा कि तात्पर्यित अनियमितता के बावजूद याची के साथ जिला परिषद् के स्थायी कर्मचारी के जैसा बर्ताव किया गया है और इसलिए वह एक स्थायी कर्मचारी को मिलने वाले सारे लाभों का हकदार है।

17. रॉलर चालक के वेतनमान पर वेतन हेतु और ऐसे वेतनमान पर वेतन के बकाए के लिए याची के दावे के संबंध में, यह ध्यान में लिया जाना होगा कि यद्यपि याची की सेवाएँ कभी-कभार रॉलर चालक के तौर पर ली गयी थी, लेकिन उसकी मूल नियुक्ति चतुर्थवर्गीय पद पर बनी हुई है और उसे कभी रॉलर चालक के पद पर नियुक्त नहीं किया गया था। आगे और भी, रॉलर चालक के मंजूर पद की अनुपस्थिति में, जैसा प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रतिवाद किया गया है, और दिनांक 16.3.1991 के परिपत्र (परिशिष्ट-सी॰) के तहत रॉलर चालक के पद पर नियुक्ति के लिए राज्य सरकार द्वारा अधिकथित प्रक्रिया का अनुपालन किए बिना याची संभवत: रॉलर चालक के पद पर अपनी नियुक्ति/प्रोन्नति का दावा नहीं कर सकता है और याची को ऐसे लाभ देने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

18. छठें वेतन पुनरीक्षण कमिटी की अनुशंसाओं के आधार पर पुनरीक्षित वेतनमान के लिए याची के दावे के संबंध में, प्रत्यर्थीगण का प्रतिवाद है कि स्वशासी निकाय होने के नाते इसके स्रोत सीमित है क्योंकि राज्य सरकार द्वारा सीमित निधि मंजूर की जाती है और आबंटित की जाती है और अपने कर्मचारियों को भुगतान करने के लिए जिला परिषद् स्वयं अपना कोष जमा करने को बाध्य है। आगे, जिला परिषद् के वार्षिक बजट के आधार पर कोष का एक भाग राज्य सरकार द्वारा दिया जाता है, जिला परिषद् के कर्मचारियों के संबंध में छठें वेतन पुनरीक्षण कमिटी की अनुशंसा को लागू करने का निर्णय और पुनरीक्षित वेतनमान के आधार पर कर्मचारियों को वेतन भुगतान हेतु अतिरिक्त निधि के आबंटन का निर्णय राज्य सरकार को उसी तरीके से लेना होगा जैसा चतुर्थ और पंचम वेतन पुनरीक्षण कमिटी की अनुशंसाओं परिशिष्ट-सी॰ में उपदर्शित, को लागू करने के लिए निर्देश राज्य सरकार ने पूर्व में लिया था।

19. उक्त निवेदनों पर विचार करते हुए और उक्त चर्चा के आलोक में, यह रिट याचिका निम्नलिखित संप्रेक्षणों के साथ निपटायी जाती है:–

(i) इस आदेश की तिथि से दो महीने के भीतर प्रत्यर्थीगण को याची की सेवा शर्त से संबंधित नियमावली के प्रकाश में वरीय चयन श्रेणी देने के लिए याची के दावे पर विचार करना होगा और इस पर निर्णय लेना होगा।

(ii) चूँकि रॉलर चालक का काम उच्चतर वेतनमान के साथ उच्चतर पद से जुड़ा है, प्रत्यर्थीगण को उसके वर्तमान नियमित वेतनमान पर उसके वेतन के अतिरिक्त उस अवधि, जिसके लिए रॉलर चालक के तौर पर उसकी सेवाएँ ली गयी है, के लिए स्थानापन्न वेतन याची को देना होगा। लेकिन ऐसा भुगतान भविष्यलक्षी प्रभाव से किया जाएगा।

(iii) प्रत्यर्थी राज्य सरकार को छठें वेतन पुनरीक्षण कमिटी की अनुशंसाओं के लाभों को देने के लिए याची और प्रत्यर्थी जिला परिषद् के अन्य कर्मचारियों के दावे पर विचार करना होगा और इस आदेश की तिथि से संभवतः चार महीने के भीतर इस पर समुचित निर्णय लेना होगा।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

बिनोद साव

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 173 of 2009. Decided on 19th December, 2009.

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धाराएँ 3, 6-A एवं 7–याचीगण के घर से बरामद 40 क्विंटल चावल की जब्ती–याची जन वितरण प्रणाली के अधीन एक डीलर नहीं है–इस प्रकार, उस मात्रा के चावल का कब्जा जिसे राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा नियत भंडारण सीमा की अनुपस्थिति में अभिग्रहित किया गया था, आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन अधिहरण का विषयवस्तु नहीं हो सकता है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने

धारा 3 के अधीन किसी आदेश के प्रावधान का उल्लंघन किया है–धारा 6-A के अधीन कार्यवाही प्रारंभ करने की अधिकारिता कलक्टर/जिलाधिकारी को तभी मिलती है जब धारा 3 के अधीन किसी आदेश का उल्लंघन होता है–अधिहरण कार्यवाही का प्रारंभ किया जाना ही बिना अधिकारिता के है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याची के पक्ष में चावल निर्मुक्त किया जाना है। (पैरा 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr.Atanu Banerjee, For the Petitioner; Mr. R.K.Singh, For the State.

आदेश

यह रिट याचिका अधिहरण मामला सं॰ 25 वर्ष 2008 में कलक्टर सह-जिलाधिकारी, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 25.11.2008 के उस आदेश के विरुद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा और जिसके अन्तर्गत याची के घर से पाये गए 40 क्विंटल चावल के 80 बोरे अधिहृत कर लिए गए थे।

2. इस याचिका को उद्भूत करते तथ्य ये हैं कि दिनांक 26.4.2008 को जब एक गुप्त सूचना प्राप्त की गयी थी कि डीलर राज कुमार साव द्वारा कार्डधारियों को वितरित किए जाने वाले चावल के 80 बोरे इस याची के घर में रखे हुए हैं, सूचक प्रखंड विकास पदाधिकारी और अन्य पदधारियों ने याची के घर पर छापा मारा और चावल के 80 बोरे बरामद किया। जिस पर, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन एक मामला दर्ज किया गया। तदुपरि, जिलाधिकारी, बोकारो ने अनुमंडलाधिकारी, बेरमो, तेनूघाट द्वारा भेजी गयी, रिपोर्ट प्राप्त करने पर याची के घर से अधिग्रहित किए गए चावल के 80 बोरों को अधिहृत करने के लिए आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6ए॰ के अधीन कार्यवाही प्रारंभ की। तद्नुसार, याची और उक्त अभियुक्त राजकुमार साव, जनवितरण प्रणाली के अधीन डीलर, को इसका कारण बताने कि क्यों नहीं उक्त चावल अधिहृत कर लिया जाए, के लिए नोटिस जारी की गयी। उसके अनुसरण में याची द्वारा उसमें यह कथन करते हुए कारण बताओ प्रस्तुत किया गया था कि आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन अपराध निर्मित नहीं होता है क्योंकि चावल के 80 बोरों को कब्जे में रखना आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन अपराध नहीं है चूँकि उस दिन, जब छापामारी की गयी थी, विक्रय के प्रतिषेध, स्टॉक के क्रय इत्यादि से संबंधित आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किया गया कोई आदेश प्रभाव में नहीं था और इस प्रकार अधिहरण कार्यवाही का प्रारंभ किया जाना ही दोषपूर्ण है। ठीक इसी समय, अन्य अभियुक्त डीलर, ने उसमें यह कथन करते हुए कारण बताओ प्रस्तुत किया कि दुकान के स्टॉक का सत्यापन किए बिना यह अभिकथित किया गया है कि चावल जिसे याची के घर से बरामद किया गया है, उसका है और इस प्रकार सिर्फ यह कहना की चावल उसका है, अभियोजन एजेन्सी का अटकल और अनुमान है।

3. लेकिन जिलाधिकारी, बोकारो ने यही अभिनिर्धारित किया कि चावल, जिसे याची के घर से बरामद किया गया था, राज कुमार साव, जनवितरण प्रणाली डीलर, द्वारा कार्डधारियों को वितरित किया जाने वाला था और इसलिए इसके अधिहरण के लिए एक आदेश पारित किया गया था।

4. उस आदेश से व्यथित होकर, यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

5. एक प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें यह कथन किया गया है कि मामला दर्ज करने के बाद इसे अन्वेषित किया गया था और अन्वेषण अधिकारी ने साक्ष्य संग्रहित करने के बाद यह अभिकथन कि चावल जन वितरण प्रणाली डीलर राज कुमार साव का है जिसने इसे याची के पास रखा है, को सत्य पाए जाने पर आरोप-पत्र दाखिल किया था।

6. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, यह प्रकट है कि याची, जो जनवितरण प्रणाली के अधीन डीलर नहीं है, को चावल के 80 बोरों को कब्जे में रखा हुआ पाया गया था लेकिन विक्रय के प्रतिषेध चावल के स्टॉक के क्रय से संबंधित आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किसी आदेश की अनुपस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि याची ने आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किसी आदेश के प्रावधान का उल्लंघन किया है। परिणामस्वरूप, यह कहा जा सकता है कि राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा नियत किसी स्टॉक परिसीमा की अनुपस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी ने आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन अपराध किया है। फिर भी, इस मामले में कार्यवाही प्रारंभ की हुई प्रतीत होती है क्योंकि यह अभिकथन किया गया है कि चावल, जिसे याची के घर पर पाया गया था, जन वितरण प्रणाली के अधीन डीलर राजकुमार साव का है लेकिन उसने कलक्टर के समक्ष स्वयं यह कथन किया है कि यह कभी उसकी नहीं है और कि प्राधिकारियों ने उसकी दुकान का सत्यापन नहीं किया है, फिर भी कलक्टर ने अपने आदेश में यह अभिनिर्धारित किया कि चावल जनवितरण प्रणाली के डीलर का था, जिस निष्कर्ष को अटकलों और अनुमान पर आधारित कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, याची जनवितरण प्रणाली के अधीन डीलर नहीं है और इस प्रकार, इस मात्रा में चावल का कब्जा, जिसे राज्य सरकार अथवा केंद्र सरकार द्वारा तय भंडारण परिसीमा की अनुपस्थिति में अधिग्रहित किया गया था, आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन अधिहरण का विषय वस्तु नहीं हो सकता है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन किसी आदेश के प्रावधान का उल्लंघन किया है। आगे यह कहा जाना चाहिए कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 ए० के अधीन कार्यवाही प्रारंभ करने की अधिकारिता कलक्टर/जिलाधिकारी को तभी मिलती है जब आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित किसी आदेश का उल्लंघन किया गया है। इस प्रकार अधिहरण कार्यवाही का प्रारंभ किया जाना ही बिना अधिकारिता के प्रतीत होता है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि याची ने आदेश के किसी प्रावधान का उल्लंघन किया है।

7. मामले के इस दृष्टिकोण में कलक्टर-सह-जिलाधिकारी बोकारो द्वारा पारित दिनांक 25.11.2008 का आदेश काफी दोषपूर्ण प्रतीत होता है और इसलिए इसे अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, याची के पक्ष में चावल अथवा चावल के विक्रय से प्राप्त राशि यदि इसे पहले ही नीलामी में बेच दिया गया हो, निर्मुक्त करने का निर्देश कलक्टर-सह-जिलाधिकारी बोकारो को दिया जाता है।

यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

श्रीमती सुरजी देवी एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 1205 of 2004. Decided on 19th December, 2009.

बिहार अभिधृति (अभिलेखों का अनुरक्षण) अधिनियम, 1973—धारा 16—द्वितीय पुनरीक्षण याचिका की पोषणीयता–अधिनियम में संशोधन के पश्चात् द्वितीय पुनरीक्षण याचिका दाखिल नहीं की जा सकती है अथवा कमिश्नर द्वारा ग्रहण नहीं की जा सकती

है–कमिश्नर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त–यदि विवादग्रस्त भूमि पर अधिकार के संबंध में किसी पक्ष को आगे कोई शिकायत बनी रहती है, तो उन्हें उपर्युक्त फोरम के समक्ष उपचार ईप्सित करने की स्वतंत्रता है। (पैरा 11 से 14)

अधिवक्तागण.–M/s Ayush Aditya, Sneh Singh, For the Petitioners; M/s L.K. Lall, Arvind Kr. Mehta, For the Respondents.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. इस मामले को ग्रहण के चरण पर ही निपटाने के लिए लिया जाता है।

3. इस रिट याचिका में याचीगण ने प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा पारित दिनांक 14.10.2003 के उस आदेश (परिशिष्ट-6) के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है जिसके द्वारा और जिसके अंतर्गत निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल पुनरीक्षण याचिका अनुज्ञात कर दी गयी है।

4. रिट याचिका में उठाया गया मुख्य प्रश्न यह है कि क्या बिहार अभिधारियों की धृति (अभिलेखों का अनुरक्षण) अधिनियम के प्रावधानों के अधीन एक द्वितीय पुनरीक्षण याचिका पोषणीय होगा?

5. मामले के तथ्य यह हैं कि जिला हजारीबाग में कोनी गाँव की 8.07 एकड़ क्षेत्र वाली खाता सं० 34 से संबंधित वर्तमान मामले में विवादग्रस्त जमीन किसी त्रिलोकी यादव के नाम पर दर्ज की गयी थी। याचीगण का दावा यह है कि रैयती जमीन की नीलामी की गयी थी और नीलामी की खरीददारी पर भूतपूर्व भूस्वामी बटो क्रिस्टो रॉय ने 2 पाइ (pies), खाता सं० 34 की जमीन के आधे हिस्से का समतुल्य, की बंदोबस्ती महंगू कहार और बरहो कहार, जो याचीगण के दावे के अनुसार हित में उनके पूर्ववर्ती थे, के पक्ष में किया था।

6. तत्पश्चात्, खाता सं० 34 के अधीन भूमि के बन्दोबस्तीदारों ने लगान घटाने के लिए सी० एन० टी० अधिनियम की धारा 33 (ए०) के अधीन संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष एक आवेदन दाखिल किया। तद्नुसार इसे घटाने की अनुसूची यह संपुष्ट करते हुए तैयार की गयी कि तत्कालीन भूस्वामी द्वारा याचीगण के हित में पूर्ववर्ती के पक्ष में बंदोबस्ती किया गया था और तत्पश्चात् खाता सं० 34 की भूमि के आधे हिस्से के संबंध में वे भूतपूर्व भूस्वामी के अधीन रैयत बन गए थे।

7. हित निहित किए जाने पर, वर्ष 1955 से हित में पूर्ववर्ती द्वारा लगान का भुगतान किया जाता था और ऐसे भुगतानों के विरुद्ध रसीद दी जाती थी। चार दशकों से अधिक के बाद, याचीगण के पक्ष में सृजित जमाबन्दी, जो वर्ष 1955-56 से चला आ रहा था, के रद्दकरण हेतु प्रार्थना करते हुए सर्किल अधिकारी के समक्ष प्रत्यर्थीगण ने याचिका दाखिल किया। रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने पर विविध केस सं० 6 वर्ष 1994-95 के तहत भूमि सुधार उप-कलक्टर के समक्ष कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी जिसमें नोटिस तामील किए जाने पर याचीगण उपस्थित हुए थे और निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा रद्दकरण हेतु की गयी प्रार्थना पर अपनी-अपनी आपत्तियाँ दाखिल किये थे और भूमि पर अपने दावे के समर्थन में प्रासंगिक दस्तावेजों को उपाबद्ध किया था। भूमि सुधार उप-कलक्टर, चतरा ने दिनांक 29.2.1996 के आदेश के तहत यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रत्यर्थीगण सिविल न्यायालय के समक्ष उपचार इप्सित कर सकते है, प्रत्यर्थीगण की याचिका के खारिज कर दिया था।

8. तत्पश्चात् प्रत्यर्थीगण ने अनुमंडलाधिकारी चतरा के समक्ष अपील दायर किया जिन्होंने दिनांक 16.1.1997 के अपने आदेश द्वारा भूमि सुधार उप-कलक्टर, चतरा का आदेश अपास्त करने के बाद याचीगण के पक्ष में की गयी जमाबन्दी को रद्दकरण करके अपील अनुज्ञात कर दिया।

9. अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध, अपर कलक्टर चतरा के समक्ष विविध केस सं॰ 179 वर्ष 1997 के तहत याचीगण द्वारा पुनरीक्षण दाखिल किया गया था। पुनरीक्षण याचिका याचीगण के पक्ष में निपटा दी गयी थी।

10. व्यथित होकर प्रत्यर्थीगण ने कमिश्नर (प्रत्यर्थी सं॰ 2) के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया जिसे पुनरीक्षण सं॰ 71 वर्ष 1999 के तौर पर दर्ज किया गया था। दिनांक 14.10.2003 के आक्षेपित आदेश द्वारा कमिश्नर ने पुनरीक्षण अनुज्ञात किया था।

11. याचीगण के अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का इस आधार पर विरोध किया है कि यह पूर्णत: गैरकानूनी है और विधि के प्रावधानों के विरुद्ध है और अभिलेख पर प्रकट रूप से गलती है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि बिहार अभिधारियों की धृति (अभिलेखों का अनुरक्षण) अधिनियम, 1973 के प्रावधानों में संशोधन के बाद, कमिश्नर के समक्ष द्वितीय पुनरीक्षण याचिका दाखिल करने के पूर्व के प्रावधान को मिटा दिया गया है और इस प्रकार याची द्वारा दाखिल पुनरीक्षण याचिका में पारित पूर्व आदेश के विरुद्ध कमिश्नर के समक्ष द्वितीय पुनरीक्षण याचिका दाखिल नहीं की जा सकती है। विद्वान अधिवक्ता यह कथन करते हुए कि आक्षेपित आदेश द्वारा याचीगण के पक्ष में लंबे अरसे से चली आ रही स्थायी जमाबन्दी को रद्द नहीं किया जा सकता था, अन्य आधारों को भी निर्दिष्ट करते है।

12. प्रत्यर्थी–राज्य और निजी प्रत्यर्थीगण के भी अधिवक्ता तर्क करना चाहेंगे कि जहाँ तक इसके समक्ष दाखिल अपील पर आदेश पारित करने की अपीलीय प्राधिकारी की सक्षमता का संबंध है, कोई गलती नहीं हुई है। लेकिन विद्वान अधिवक्ता स्वीकार करते है कि अधिनियम में संशोधन के पश्चात द्वितीय पुनरीक्षण याचिका दाखिल नहीं की जा सकती है अथवा कमिश्नर द्वारा ग्रहण नहीं की जा सकती है।

13. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, कमिश्नर, उत्तरी छोटानागपुर डिविजन, हजारीबाग (प्रत्यर्थी सं॰ 2) द्वारा पारित दिनांक 14.10.2003 के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-6) को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

14. यदि विवादग्रस्त भूमि के ऊपर अधिकार के दावे के संबंध में किसी पक्ष को आगे कोई शिकायत है, तो उन्हें समुचित फोरम के समक्ष उपचार इप्सित करने की स्वतंत्रता है।

इन संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है। इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ आई॰ लोमबार्ड जेनरल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड

बनाम

मौसमी मुखर्जी एवं अन्य

M.A. No. 77 of 2009. Decided on 18th December, 2009.

मोटन यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 एवं 173—घातक दुर्घटना–अधिकरण द्वारा 19, 98,724/- रुपये मुआवजे का अधिनिर्णय–मृतक लगभग चालीस वर्षीय वरीय यांत्रिक अभियन्ता था–14,927/- रुपये मूल वेतन के अतिरिक्त मृतक 2239/- रुपया विशेष भत्ता,

2000/- रुपया आवागमन भत्ता और 1791/- रुपया कम्पनी द्वारा पी॰ एफ॰ हेतु अंशदान पा रहा था–15 का गुणक लेने पर मुआवजा राशि 20,59,920/- रुपया होती है–यह उपधारित करते हुए भी कि इस प्रकार अधिनिर्णीत मुआवजा उच्चतर स्तर पर है, बीमा कम्पनी द्वारा दाखिल अपील में उच्च न्यायालय मुआवजे की मात्रा के प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है–अपील खारिज। (पैरा 4 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Amit Kumar Das, For the Appellant; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondent(s).

आदेश

हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है और उनकी सहमति से यह अपील ग्रहण के चरण पर ही निपटायी जा रही है।

2. अपीलार्थी–आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ आई॰ लोमबार्ड जनरल बीमा कम्पनी ने मुआवजा मामला सं॰ 119 वर्ष 2007 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय का विरोध करते हुए यह याचिका दाखिल की है। उक्त आदेश द्वारा, मृतक की मृत्यु के लिए अधिकरण ने 19,98,724/- रुपया मुआवजा आँका था।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ दास ने आक्षेपित अधिनिर्णय का विरोध सिर्फ इस आधार पर किया है कि अधिकरण द्वारा आकलित मुआवजा की मात्रा अयुक्तियुक्त और अन्यायोचित है। वेतन स्लिप को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि आवागमन, चिकित्सा, भविष्य निधि हेतु कम्पनी अंशदान सहित मृतक 20,957/- रुपया पा रहा था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अधिकरण को सिर्फ 14,927/- रुपये ध्यान में लेना चाहिए था जो मृतक का मूल वेतनमान था। यदि इसे लिया जाता है, मुआवजा अधिकरण द्वारा आकलित राशि से कम होना चाहिए।

4. मृतक चालीस–वर्षीय बिहार स्पॉन्ज आयरन कम्पनी लि॰ में कार्यरत एक वरीय यांत्रिक अभियन्ता था जो अपने पीछे विधवा, माता और अवयस्क पुत्री को छोड़कर मोटर वाहन दुर्घटना में मर गया था। स्वीकृत तौर पर, उल्लंघन करता वाहन अपीलार्थी बीमा कम्पनी द्वारा बीमाकृत किया गया था।

5. हमने वेतन स्लिप का परिशीलन किया है और पाया है कि 14,927/- रुपया मूल वेतन के अतिरिक्त याची 2239/- रुपया विशेष भत्ता, 2000/- रुपया आवागमन भत्ता और 1791/- रुपया पी॰ एफ॰ हेतु कम्पनी अंशदान पा रहा था। यदि मूल वेतन और विशेष भत्ता को ध्यान में रखकर मुआवजा आकलित किया जाए तो मृतक की मासिक आमदनी 20,957/- रुपये के बजाए 17,166/- रुपया आती है। यदि उक्त राशि से एक–तिहाई व्यक्तिगत व्यय की ओर काट लिया जाए, तो मासिक निर्भरता 11,444/- रुपया होता है और वार्षिक निर्भरता 1,37,328/- रुपया होता है।

6. यह विचार में लेते हुए कि मृतक चालीस वर्ष का जवान आदमी था जो अपने पीछे माता, विधवा और अवयस्क पुत्री छोड़कर मर गया, 15 का गुणक लिया जाना होगा और तद्द्वारा मुआवजा की राशि 20,59,920/- रुपया होती है।

7. मामले के इस दृष्टि में, यह उपधारित करते हुए भी कि इस प्रकार अधिनिर्णीत मुआवजा उच्चतर स्तर पर है, मुआवजा की मात्रा से संबंधित प्रश्न पर बीमा कम्पनी द्वारा दाखिल अपील पर यह न्यायालय विचार नहीं कर सकता है।

8. पूर्वोक्त कारणों से, हम इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं। तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी० एन० पटेल एवं प्रदीप कुमार न्यायमूर्तिगण

गेरे गुंडवा (गुन्द्रा) सिरका

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cr. Appeal (DB) No. 259 of 1999(R). Decided on 24th November, 2009.

सत्र विचारण सं० 378 वर्ष 1993 में श्री राम प्रबोध सिंह, विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 16 मार्च, 1999 के निर्णय एवं दोषसिद्धि के आदेश एवं सजा के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–घातक उपहति जिसका परिणाम मृतक की मृत्यु में हुआ सिद्ध करने में अभियोजन विफल रहा–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामले को संपुष्ट नहीं किया गया–चश्मदीद गवाहों का साक्ष्य विश्वास पैदा नहीं करता–गला घोटे जाने के कारण आघात, हेमरेज और दम घुटने के फलस्परूप मृत्यु कारित हुई–गला घोटने के निशान का अभिकथन भी था–अपीलार्थी-अभियुक्त पर अभिकथन नहीं था कि उसने मृतक के उपर गला घोटने की इस उपहति को कारित किया–चिकित्सीय साक्ष्य से एकमात्र चश्मदीद गवाह का अभिसाक्ष्य संपुष्ट नहीं होता है–युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियोजन का मामला सिद्ध नहीं हुआ–इसके अतिरिक्त अपीलार्थी 16 वर्ष की सजा पहले ही पूरा कर चुका है–दोषसिद्धि और सजा अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 5 से 9)

अधिवक्तागण.–Ms. Samita, *Amicus Curiae,* For the Appellant; A.P.P., For the State.

डी० एन० पटेल.–वर्तमान अपील सत्र विचारण सं० 378 वर्ष 1993 में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, चाइबासा द्वारा पारित दिनांक 16 मार्च, 1999 के उस निर्णय एवं दोषसिद्धि और सजा के आदेश दोनों से उद्भूत हुई है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन सजायोग्य अपराध के लिए अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया है और सूचक, जो अ० सा० 6 है, के श्वसुर मधु बोइपाई की हत्या करने के लिए आजीवन सश्रम कारावास की सजा दी गयी है।

2. यदि अभियोजन के मामले को खोला जाए तो मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:–

> *अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 16 सितम्बर, 1993 को लगभग सूर्यास्त के समय जब सूचक रोइबारी कूई (अ० सा० 6) अपने श्वसुर जो मधु बोइपाइ है, के साथ खाना बनाने को लेकर झगड़ा कर रही थी, अपीलार्थी-अभियुक्त उनके घर आया और हँड़िया (चावल की शराब) मांगा जब अ० सा० 6 ने अपीलार्थी को राइस बीयर दिया था, मधु बोइपाइ द्वारा इसका विरोध किया गया था और अंततः अपीलार्थी-अभियुक्त ने दिनांक 16 सितम्बर, 1993 को सायंकाल में लाठी और तत्पश्चात् तीर से मधु बोइपाइ को मारा। तत्पश्चात् दिनांक 17 सितम्बर, 1993 को प्रातः लगभग 4.00 बजे मधु बोइपाइ की मृत्यु हो गयी। अ० सा० 6 रोइबारी कूइ ने दिनांक 16 सितम्बर, 1993 से 17 सितम्बर, 1993 तक किसी को भी सूचना नहीं दी और दिनांक 18 सितम्बर, 1993 को पुलिस को अफवाहों से जानकारी मिली कि एक*

व्यक्ति की हत्या हुई है और वह गाँव लटार-कुन्द्रुजोर आयी और तब उसने दिनांक 18.9.1993 को लगभग सायं 4.30 बजे पूरी घटना की पुलिस को सूचना दी और उसका फर्दबयान प्रदर्श-2 के तौर पर दर्ज किया गया और इस प्रकार प्राथमिकी दर्ज की गयी, अन्वेषण किया गया, गवाहों के बयान दर्ज किए गए, आरोप-पत्र दाखिल किया गया और सत्र विचारण सं० 378 वर्ष 1993 अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध संस्थापित किया गया। साक्ष्यों को दर्ज किए जाने एवं उनकी विवेचना किए जाने पर मधु बोइपाइ की हत्या करने के अपराध के लिए अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन सश्रम कारावास की सजा दी गयी है। दोषसिद्धि और सजा के इस निर्णय और आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

3. हमने अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि अभिकथित चश्मदीद गवाह (अ॰ सा॰ 6) घटना की चश्मदीद गवाह है ही नहीं। उसके अभिसाक्ष्य में अनेक लोप, विरोधाभास ओर संवर्द्धन है और इस कारण अ॰ सा॰ 6 एक विश्वसनीय गवाह नहीं है। विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू की पर्याप्त विवेचना नहीं की गयी है और इस कारण दोषसिद्धि एवं सजा का आक्षेपित निर्णय और आदेश अभिखंडन एवं अपास्त करने योग्य है। अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि यद्यपि घटना 16 सितम्बर, 1993 को सायंकाल में हुई थी और दिनांक 18 सितम्बर, 1993 को सायं लगभग 4.30 बजे प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, तथाकथित चश्मदीद गवाह रोइबारी कूइ अ॰ सा॰ 6 ने गाँव में किसी को भी सूचना कभी नहीं दी थी जबकि मृतक के घर के पास अनेक घर थे। एकमात्र चश्मदीद गवाह का विचित्र व्यवहार उसके साक्ष्य की कहीं ज्यादा संवीक्षण की अपेक्षा करता है और उसका अभिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 4 या अ॰ सा॰ 3, जो चिकित्सीय साक्ष्य है, के साक्ष्यों से संपुष्ट नहीं किया गया है। घटना का कोई अन्य चश्मदीद गवाह नहीं है। अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि तीर का अभिकथित अभिग्रहण गाँव के फुटपाथ से किया गया था जिसका कोई विधिक मूल्य नहीं है अथवा जो अभियुक्त को हत्या के अपराध के साथ संबद्ध नहीं करता है। रक्तरंजित कमीज की अभिकथित बरामदगी भी अभियोजन द्वारा युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध नहीं की गयी है। अभियोजन द्वारा अभिलेख पर रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट भी नहीं लाया गया है। केस डायरी में अभिकथित अभिग्रहण निर्दिष्ट तक नहीं किया गया है, न ही इसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। घटना 16 सितम्बर, 1993 को हुई है और यह संभव नहीं है कि दिनांक 18 सितम्बर 1993 तक अभियुक्त वही रक्तरंजित कमीज पहने रहा हो। अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 3 डॉ॰ जवाहर खान का अभिसाक्ष्य प्रकट करता है कि जहाँ तक कि मृत्यु आघात, हेमरेज और गला घोंटे जाने का संबंध है, अ॰ सा॰ 6 द्वारा ऐसा कोई अभिकथन नहीं है। इस प्रकार एक मुख्य उपहति को स्पष्टीकृत नहीं किया गया है। इस प्रकार आँखोंदेखी साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य के अनुकूल नहीं है। एकमात्र चश्मदीद गवाह दो दिनों तक चुप रहा। चश्मदीद गवाह द्वारा किसी को भी सूचना नहीं दी गयी थी। अभियोजन द्वारा युक्तियुक्त संदेह के परे अभिग्रहण सूची अथवा पंचनामा सिद्ध नहीं किया गया है और यद्यपि अगल-बगल में कई स्वतंत्र गवाह रहते थे, अभियोजन द्वारा किसी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है। विचारण न्यायालय द्वारा मामले का इन पहलूओं का पर्याप्त रूप से विवेचन नहीं किया गया है। अतः विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं सजा का आक्षेपित निर्णय और आदेश अभिखंडन एवं अपास्त किए जाने योग्य है।

4. हमने राज्य की ओर से उपस्थित अपर लोक अभियोजक को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि अभियोजन का मामला एक चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 6 रोइबारी कूइ पर आधारित है। उसके अभिसाक्ष्य को देखते हुए कोई लोप, विरोधाभास अथवा संवर्द्धन नहीं मिलता है यद्यपि उसने लगभग पाँच वर्षों के बाद अभिसाक्ष्य दिया है। अ॰ सा॰ 3, जिसने मृतक का शव परीक्षण किया है, द्वारा दिए गए चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा उसके अभिसाक्ष्य को पर्याप्त रूप से संपुष्ट किया गया है। उपहति की प्रकृति को देखते हुए, तीर और लाठी द्वारा उपहतियाँ हुई है। इस प्रकार अ॰ सा॰ 3 का अभिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 6 के अभिसाक्ष्य द्वारा संपुष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 7, जो अन्वेषण अधिकारी है, के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, अन्वेषण के दौरान रक्तरंजित कमीज और तीर भी बरामद हुए है और चश्मदीद गवाह के अभिसाक्ष्य की संपुष्टि अ॰ सा॰ 4, जो गाँव का 'मुंडा' है, के अभिसाक्ष्य से की गयी है। अपराध स्थल और पुलिस थाना के बीच की दूरी चालीस किलोमीटर है और यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी दर्ज करने में अयुक्तियुक्त विलम्ब हुआ है। मृतक और चश्मदीद गवाह के बीच वैर पूर्ण संबंध है और इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध झूठा साक्ष्य देने का चश्मदीद गवाह के पास कोई कारण नहीं था। विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू की पर्याप्त रूप से विवेचना की गयी है। इस कारण विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश में यह न्यायालय शायद हस्तक्षेप नहीं कर सकता है और अपील को खारिज कर दिया जाना चाहिए।

5. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि सारी घटना दिनांक 16 सितम्बर, 1993 को सायंकाल में हुई जब अ॰ सा॰ 6 रोइबारी कूइ अपने श्वसुर अर्थात् मधु बोइपाइ के साथ खाना बनाने को लेकर झगड़ा कर रही थी जब अपीलार्थी-अभियुक्त उनके घर आया और हंड़िया (राइस बीयर) मांगा। जब रोइबारी कूइ ने अपीलार्थी-अभियुक्त को हँड़िया दी, मधु बोइपाइ द्वारा इसका विरोध किया गया और इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त ने मधु बोइपाइ को लाठी से मारा और उसे (मृतक) उपहतियाँ कारित की। तत्पश्चात् मधु बोइपाइ ने पानी मांगा और अ॰ सा॰ 6 रोईबारी कूई पानी लेने अंदर गयी। उस समय, अपीलार्थी-अभियुक्त ने तीर द्वारा उपहति कारित की जो उनके घर में पड़ा था। तत्पश्चात्, तीर आस-पास फेंक कर अपीलार्थी-अभियुक्त चला गया और अगली सुबह अर्थात् दिनांक 17 सितम्बर, 1993 को मधु बोइपाइ की मृत्यु हो गयी। अ॰ सा॰ 6 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, इस गवाह का व्यवहार विचित्र है क्योंकि दिनांक 16 सितम्बर, 1993 के सायंकाल से ही, यद्यपि अ॰ सा॰ 6 की उपस्थिति में अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा लाठी और तीर से प्रहार किया गया था, उसने गाँव में किसी को भी सूचना नहीं दी थी। अ॰ सा॰ 6 द्वारा कथन किया गया है कि वह शोर मचायी जब अभियुक्त मृतक के घर से बाहर भागा लेकिन अभियोजन किसी अन्य गवाह का परीक्षण करने में विफल रहा है। यह अ॰ सा॰ 6, जो एकमात्र चश्मदीद गवाह है, ने न तो गाँव के प्रधान को सूचित किया और न ही किसी पड़ोसी को सूचित किया और वह दिनांक 18 सितम्बर, 1993 के सायंकाल 4.30 बजे तक चुप रही अर्थात् तब तक जब पुलिस गाँव आयी और घटना के बारे में उससे पूछा। एकमात्र चश्मदीद गवाह का यह विचित्र व्यवहार उसके साक्ष्य की सूक्ष्म संवीक्षा करने हेतु इस न्यायालय को बाध्य करता है। उसके अभिसाक्ष्य को सूक्ष्मता से देखते हुए यह प्रकट है कि उसका अभिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 3 द्वारा दिए गए चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्ट नहीं होता है। डॉ॰ जवाहर खान, जो अ॰ सा॰ 3 है, द्वारा दिया गया मृत्यु का कारण अ॰ सा॰ 6 द्वारा दिए गए घटना की कहानी से मिलता नहीं हैं मृत्यु आघात, हेमरेज और गला

घोटने से दम घुटने के कारण हुई थी और जहाँ तक गला घोटने का संबंध है, इस चश्मदीद गवाह द्वारा ऐसा कोई अभिकथन नहीं किया गया है। मृतक को किसने यह घातक उपहति, कारित की स्पष्टीकरण नहीं किया गया है और अभियोजन इस महत्वपूर्ण उपहति, जिसका परिणाम मृतक की मृत्यु में हुआ, को सिद्ध करने विफल रहा है। अपीलार्थी-अभियुक्त पर गला घोटने के अभिकथन की अनुपस्थिति में और इस अभिकथित तथाकथित चश्मदीद गवाह के विचित्र व्यवहार को देखते हुए, वह विश्वास उत्पन्न नहीं करती है और हम पाते है कि वह विश्वसनीय गवाह नहीं है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 6, जो घटना की एक मात्र चश्मदीद गवाह है, को अभिसाक्ष्य को देखते हुए, अपीलार्थी-अभियुक्त तीर द्वारा उपहतियाँ कारित करने के बाद घर से चला गया था। अ॰ सा॰ 6 के अभिसाक्ष्य के मुताबिक तीर वहीं पर फेंका गया था। अ॰ सा॰ 7, जो अन्वेषण अधिकारी है के अभिसाक्ष्य के मुताबिक, अपीलार्थी-अभियुक्त के घर के निकट फुटपाथ से रक्त रंजित तीर पाया गया था और अधिग्रहण सूची प्रदर्श-6 के तौर पर पेश किया गया है जबकि अ॰ सा॰ 4, जो मुंडा सिंगराय बोइपाई है, के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, तीर अपीलार्थी-अभियुक्त के घर से बरामद किया गया था और पुलिस के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, यह अधिग्रहण केस डायरी में निर्दिष्ट तक नहीं किया गया था और न ही इसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और इस प्रकार तीर की बरामदगी, जो हत्यारे को हत्या से जोड़ती है, को अभियोजन द्वारा युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध नहीं किया गया है।

6. अ॰ सा॰ 3 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, निम्नलिखित उपहतियाँ है जो उसके द्वारा दिनांक 19 सितम्बर, 1993 को सायं लगभग 4.00 बजे किए गए शव-परीक्षण के दौरान पायी गयी थी जो प्रदर्श-3 है।

> *"(i) 1/2" x 1/2" x अस्थि गहराई तक की बाए पेरोटिड क्षेत्र पर तीन गहरे घाव।*
>
> *(ii) बांए पिन्ना को कटा पाया गया।*
>
> *मृत शरीर का चीर-फाड़ करने पर गर्दन की मांसपेशी बुरी तरह विदीर्ण पायी गयी। ट्रेकियल रिंगस टूटा पाया गया था। हाइऑयड हड्डी भी टूटी हुई थी। अस्थि का बांया मेन्डीब्यूलर हिस्सा भी टूटा हुआ था। थोरेसिक कैविटी खून के थक्कों से भरा था। दाएँ ओर की पसली टूटी हुई थी। वांयी ओर की दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवी पसली भी टूटी हुई थी। फेफड़े पंचर थे। हृदय में रक्त नहीं था। जिगर सही सलामत था। पेट खाली था। यूरीनरी ब्लैडर भी खाली था। प्रकृति के सामान्यक्रम में पूर्वोक्त बाहरी और भीतरी उपहतियाँ मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त थी। बाहरी उपहति तेजधार नुकीले हथियार जैसे बाण से कारित की गयी थी। भीतरी उपहति भी लाठी की तरह कड़े और भोथरे वस्तु द्वारा कारित की गयी पायी गयी थी। शव-परीक्षण के वक्त तक व्यतीत समय मृत्यु के समय से 48 घंटे के भीतर था। आघात, हेमरेज और दम घुटने से मृत्यु हुई।''*

इस प्रकार, इस अ॰ सा॰ 3 डॉ॰ जवाहर खान के पूर्वोक्त अभिसाक्ष्य से प्रकट है कि मृत्यु का कारण आघात, हेमरेज और गला घोटने से दम घुटने के कारण मृत्यु हुई। गला घोटने के निशान का भी अभिकथन है। अपीलार्थी-अभियुक्त पर यह अभिकथन नहीं है कि उसने मृतक पर गला घोटने की उपहति कारित की थी। एक मात्र चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 6 ने अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा गला घोटने के बारे में कुछ भी कथन नहीं किया है। इस प्रकार एकमात्र चश्मदीद गवाह का अभिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 3 के चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा संपुष्ट नहीं होता है।

7. अन्य अभियोजन गवाहों विशेषत: अ॰ सा॰ 4 जो गाँव का प्रमुख है, द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्यों पर गौर करते हुए, उसने भी अपने अभिसाक्ष्य में कथन किया है कि उसे मृतक की मृत्यु की जानकारी अफवाहों के जरिए हुई। इस प्रकार, एकमात्र चश्मदीद गवाह दिनांक 18 [sic ?] सितम्बर, 1993 की घटना के सायंकाल से 18 सितम्बर, 1993 के 4.30 बजे सायं तक मौन है। तथाकथित एकल चश्मदीद गवाह द्वारा न तो अ॰ सा॰ 4 को सूचना दी गयी और न ही अन्य सह-ग्रामीणों को सूचित किया गया था। चिकित्सीय साक्ष्य भी उसके अभिसाक्ष्य से मेल नहीं खाता है। रक्तरंजित कमीज और तीर की अभिकथित बरामदगी अभियोजन द्वारा युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध नहीं किया गया है। अपीलार्थी-अभियुक्त वर्ष 1993 से जेल में है और अब तक सोलह वर्ष पूरे हो गए है।

8. इन साक्ष्यों के संचयी प्रभाव के चलते, अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में विफल रहा है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने मृतक मधु बोइपाइ की हत्या की है। मामले के इस पहलू की विचारण न्यायालय द्वारा समुचित रूप से विवेचना नहीं की गयी है विशेषत: एकमात्र चश्मदीद गवाह का विचित्र व्यवहार जो चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा संपुष्ट नहीं हो रहा है और अधिग्रहण सूची अथवा पंचनामा भी अभियोजन द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है और न ही केस डायरी तक में इस अधिग्रहण को निर्दिष्ट किया गया है। परिस्थितियों के ऐसे समूह में, सत्र विचारण सं॰ 378 वर्ष 1993 में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 16 मार्च, 1999 के दोषसिद्धि एवं सजा के निर्णय और आदेश को हम अभिखंडित करते है और अपास्त करते है। अपीलार्थी-अभियुक्त को अभिरक्षा से तुरंत निर्मुक्त करने का आदेश दिया जाता है, यदि किन्हीं अन्य अपराधों में उसकी न्यायिक अभिरक्षा की अपेक्षा नहीं है।

9. अपील अनुज्ञात की जाती है।

10. मिस समिता न्याय-मित्र के तौर पर उपस्थित हुई है और न्यायालय की सहायता की है। हम पूर्वोक्त निष्कर्ष पर आने के लिए उनके द्वारा दी गयी बहुमूल्य सेवाओं की सराहना करते है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

उमा शंकर उपाध्याय एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

LPA No. 132 of 2009. Decided on 16th December, 2009.

विश्वविद्यालय विधि-नियमितीकरण-एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका इस आधार पर खारिज कर दी गयी कि अभिलेख पर लाए गए दस्तावेज ये नहीं दर्शाते थे कि याचीगण संपुष्ट किए गए थे और स्थायी शिक्षक थे-अपने-अपने मामलों के समर्थन में याचीगण द्वारा दाखिल किए गए दस्तावेजों पर विचार किए बिना और बयानों का प्रतिवाद करने हेतु राज्य अधिवक्ता से पूछे बिना पहली तिथि पर ही रिट याचिका निपटा दी गयी थी-आक्षेपित आदेश अस्पष्ट प्रतीत होता है-रिट याचिका को खारिज करते हुए कोई कारण नहीं बताया गया है-मामले को फिर से सुना जाना चाहिए-आक्षेपित आदेश अपास्त-अपील अनुज्ञात।

(पैरा 2 से 5)

निर्णयज विधि.-WP(S) No. 48 of 2009—Set aside.

अधिवक्तागण.–Mr. S.K. Pandey, For the Appellants; M/s M. Sohail Anwar, Ruby Parween, Rajesh Kr., For the Respondents.

आदेश

पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और उनकी सहमति से ग्रहण के चरण पर ही यह अपील निपटायी जाती है।

2. डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) 48 वर्ष 2009 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को अपीलार्थीगण ने चुनौती दी है। दिनांक 16.1.2009 के आक्षेपित आदेश के बेहतर मूल्यांकन के लिए इसे नीचे उद्धृत किया जाता है:–

वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के लिए दाखिल की गयी है:–

(a) इस तथ्य की दृष्टि में कि वे पूर्वोक्त महाविद्यालय के स्थायी शिक्षक है जिनका नाम अभी तक झारखंड एकेडेमिक काउँसिल को नहीं भेजा गया है, उनकी सेवाओं के आमेलन और नियमितीकरण के लिए झारखंड एकेडेमिक काउँसिल में पूर्वोक्त महाविद्यालय के इतिहास विभाग को याचीगण का नाम भेजने के लिए प्रत्यर्थीगण पर समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए;

(b) यद्यपि याचीगण नियमित रूप से अपने कर्तव्यों के निर्वहन हेतु महाविद्यालय जा रहे है फिर भी पूर्वोक्त महाविद्यालय के संबंधित प्राधिकारियों विशेषतः शासकीय निकाय के अध्यक्ष, सचिव और प्राचार्य को उनके द्वारा बार-बार लिखित निवेदन और अभ्यावेदन दिए जाने के बाद भी सौहार्दपूर्ण वातावरण में पूर्वोक्त महाविद्यालय में याचीगण को व्याख्याता के तौर पर काम करने, जिसमें उन्हें निरन्तर बाधित किया जा रहा है, रोका जा रहा है और जबरन वंचित किया जा रहा है, को सुकर बनाने हेतु समुचित कदम उठाने के लिए प्रत्यर्थीगण पर समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए;

(c) पूर्वोक्त महाविद्यालय, जिसके जी० बी० और प्राधिकारियों ने झारखंड एकेडेमिक काउँसिल, राँची की सम्यक्-प्रक्रिया, नियमों और विनियमनों का उल्लंघन करके और पूर्वोक्त महाविद्यालय के पुरानी संस्थापक शिक्षकों, जो याचीगण है, को रोकने और उन्हें बाहर निकालने की कोशिश करके कुछ अपात्र शिक्षकों, जो महाविद्यालय के प्राधिकारियों के निकट संबंधी और चहेते है, को नियुक्त किया है, में की जा रही गड़बड़ियों की उच्च स्तरीय समुचित जाँच सर्तकता/सी० बी० आई० के माध्यम से प्रत्यर्थी सं० 1 और 2 द्वारा कराए जाने के लिए प्रत्यर्थीगण पर समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए;

(d) याचीगण के वेतन और अन्य पारिणामिक लाभों, जिनसे उन्हें वंचित किया गया है, के भुगतान के लिए समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए;

(e) सरकारी नियमों और झारखंड एकेडेमिक काउँसिल के नियमों और विनियमनों, तथ्य और संविधियों के इसके असद्‌भावपूर्वक उल्लंघन, मनमानेपन, सनकीपन, गड़बड़ियों के लिए प्रत्यर्थी सं० 3 के पथ भ्रष्ट प्राधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने के लिए प्रत्यर्थी सं० 1 और 2 पर समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए।

कुछ तर्कों के बाद याचीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि वह सिर्फ एक प्रार्थना पर जोर दे रहे है और शेष प्रार्थना को अनदेखा किया जा सकता है।

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य प्रतिवाद यह है कि वे संपुष्ट किए गए और स्थायी शिक्षक हैं और इस कारण आमेलन/नियमितीकरण के हकदार है। लेकिन वह अपने दावे को न्यायोचित सिद्ध करने में सफल नहीं हुए हैं क्योंकि अभिलेख पर लाया गया कोई भी दस्तावेज नहीं दर्शाता है कि याचीगण संपुष्ट किए गए और स्थायी शिक्षक हैं और बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग की अनुशंसाएँ भी आज की तिथि पर परिणामविहीन हैं।

मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थिति पर विचार करते हुए, मैं रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार बिना किसी व्यय के आदेश के यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

3. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थीगण के मामले के समर्थन में सारे दस्तावेज रिट याचिका के साथ परिशिष्ट के तौर पर दाखिल किए गए थे जो पर्याप्त रूप से स्थापित करेगा कि अपीलार्थीगण की नियुक्ति अनुमोदित की गयी थी लेकिन उन दस्तावेजों पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार नहीं किया गया है।

4. स्वीकृत तौर पर, राज्य अधिवक्ता को बयानों पर प्रतिवाद करने हेतु पूछे बिना और अपने मामलों के समर्थन में याचीगण द्वारा दाखिल किए गए दस्तावेजों पर विचार किए बिना पहली तिथि पर ही रिट याचिका निपटा दी गयी थी। इसके अतिरिक्त, आक्षेपित आदेश अस्पष्ट प्रतीत होता है और रिट याचिका खारिज करते हुए कोई कारण भी नहीं दिया गया है।

5. हमारे दृष्टिकोण में, मामले को फिर से सुना जाना चाहिए। अत: हम यह अपील अनुज्ञात करते हैं और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त करते है और पुन: सुनवाई के लिए और विधि सम्मत समुचित आदेश पारित करने के लिए समुचित पीठ के समक्ष मामला वापस भेजते हैं।

6. यह स्पष्ट किया जाता है कि अपील के गुणागुण के संबंध में हमने विचार नहीं किया है। विद्वान एकल न्यायाधीश इस पर विचार करेंगे और इस पर निर्णय करेंगे।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

प्रबल कुमार गुप्ता

बनाम

श्री संजीव कुमार सिंह एवं अन्य

WP(C) No. 184 of 2008. Decided on 17th December, 2009.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VI, नियम 17—दावा याचिका का संशोधन—मूल दावेदार द्वारा दाखिल की गयी संशोधन याचिका अधिकरण द्वारा खारिज और दावा याचिका में संशोधन अनुज्ञात करना चाहिए या नहीं इस पर निर्णय करने के बजाए याची के दावा का संशोधन गुणा-गुणों पर निर्णय किया गया—संशोधन के चरण पर, अधिकरण मूल दावेदार के मामले के गुणागुण पर विचार नहीं कर सकता है—जब कोई पक्ष वाहन दुर्घटना दावा याचिका के लम्बित रहने के दौरान चिकित्सीय व्यय के तहत अतिरिक्त व्यय उपगत करता है और संशोधन याचिका द्वारा अधिकरण के ध्यान में लाया जाता है, अधिकरण को इसे अनुज्ञात करना चाहिए—आक्षेपित आदेश अपास्त—गुणागुण पर याची के दावे पर निर्णय करने का अधिकरण को निर्देश। (पैरा 2, 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—Ms. Niyati, For the Petitioner; Mr. Alok Lal, For the State.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन मुआवजा केस सं० 91 वर्ष 2004 (परिशिष्ट-3) में मोटर दुर्घटना दावा, अधिकरण, राँची द्वारा दिनांक 22.9.2007 को पारित उस आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अधिकरण ने मूल दावेदार द्वारा दाखिल संशोधन याचिका को खारिज कर दिया है और संशोधन याचिका में संशोधन अनुज्ञात करना चाहिए या नहीं, इस पर निर्णय करने की बजाय याची के दावे का संशोधन गुणा गुणों पर निर्णीत किया है।

2. मैंने याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री नियति को सुना है जिन्होंने जोरदार निवेदन किया है कि गुणागुणों पर संशोधन निर्णीत करने में अधिकरण ने विधि में भारी गलती की है। अधिकरण को यह निर्णय करना चाहिए था कि मोटर दुर्घटना दावा याचिका में संशोधन अनुज्ञात करना चाहिए या नहीं, लेकिन इस चरण पर गुणागुणों पर विचार नहीं किया जा सकता है। मूल याची द्वारा उपगत अतिरिक्त व्यय को मूल दावेंदार ने जोड़ा है क्योंकि मूल याची का इलाज चल रहा था और इसलिए चिकित्सीय व्यय उपगत किए जाने के चलते 5,03,000/- रुपये की अतिरिक्त राशि मांगी गयी थी। संशोधन के चरण पर मूल याची के मामले के गुणागुण पर अधिकरण विचार नहीं कर सकता है। अंतिम सुनवाई के लिए इस ऊर्जा को संरक्षित किया जाना है। यह अभिलेख पर प्रकट गलती है और इसलिए परिशिष्ट-3 पर आक्षेपित आदेश अभिखंडन करने और अपास्त करने योग्य है।

3. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक लाल ने निवेदन किया कि मूल दावेदार द्वारा उपगत व्यय के मद्देनजर अधिकरण को अन्यथा भी मूल दावेंदार के दावें में फेरफार करने की शक्ति है और इसलिए इस चरण पर संशोधन की आवश्यकता नहीं है और इस कारण संशोधन याचिका को अस्वीकार करने वाले आक्षेपित आदेश सत्य, सही, विधिक और विधि के तथ्यों के अनुकूल है।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों के मद्देनजर मैं एतद् द्वारा निम्नलिखित तथ्यों और कारणों के आधार पर मुआवजा मामला सं० 91 वर्ष 2007 (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-3) में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 22.9.2007 के आदेश को अभिखंडित करता हूँ और अपास्त करता हूँ।

(i) याची मूल दावेंदार है जिसने स्वयं को हुई उपहतियों के लिए अनेक मद के अधीन मुआवजे के लिए मोटर दुर्घटना मुआवजा मामला सं० 91 वर्ष 2004 दाखिल किया था।

(ii) यह प्रकट है कि इस रिट याचिका के लम्बित रहने के दौरान चिकित्सीय व्यय के तौर पर अतिरिक्त व्यय उपगत किया गया है जैसा संशोधन याचिका में कथित है और इसलिए मूल दावे का दावा संशोधित करने के लिए दिनांक 22 सितम्बर, 2007 को संशोधन याचिका दाखिल की गयी थी। यह कथन किया गया है कि चिकित्सीय व्यय की मद में 5,03,000/- रुपया उपगत किया गया है। अधिकरण ने समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया है कि जब संशोधन याचिका दाखिल की जाती है, संशोधन के गुणागुणों पर विचार नहीं किया जा सकता है लेकिन अधिकरण को यह अधिमूल्यन तो करना ही चाहिए था कि क्या संशोधन मोटर वाहन दुर्घटना दावा याचिका में लगाए गए मूल अभिकथनों के अनुकूल है। मामले के इस पहलू पर विचार करने के बजाए अधिकरण ने मूल दावेदार की याचिका को खारिज कर दिया है और गुणागुणों पर निर्णय किया है कि ऐसा दावा इस चरण पर मान्य नहीं है। अभिलेख में यह गलती प्रकट दीखती है।

(iii) जब मोटर दुर्घटना दावा याचिका के लम्बित रहने के दौरान कोई पक्ष चिकित्सा व्यय की मद में उपगत अतिरिक्त व्यय सहन करता है और संशोधन याचिका द्वारा ऐसा दावा अधिकरण के ध्यान में लाया जाता है, इसे अधिकरण द्वारा अनुज्ञात किया जाना चाहिए, ताकि अंतिम सुनवाई के दौरान पूरी सावधानीपूर्वक और शुद्धता के साथ मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा दावा का निर्णय किया जा सके। पक्षों के मध्य विवाद शुद्धतापूर्वक निर्णय करने में इस प्रकार के संशोधन विचारण न्यायालय को सहायता देते है। अधिकरण द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

5. तथ्य की इस दृष्टि में मैं एतद् द्वारा मुआवजा मामला सं० 91 वर्ष 2004 में पारित दिनांक 22.9.2007 के आक्षेपित आदेश को अपास्त करता हूँ और मैं एतद् द्वारा यह संशोधन याचिका अनुज्ञात करता हूँ और अधिकरण को वर्तमान याची अर्थात् मूल दावेंदार के दावे पर अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश और इस आदेश से भी प्रभावित हुए बिना निर्णय करने का निर्देश देता हूँ।

6. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय एम० वाई० इकबाल, न्यायमूर्ति

संजीव कुमार सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 241 of 2007. Decided on 18th December, 2009.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 451—वाहन की निर्मुक्ति–वित्तदाता के पक्ष में वाहन निर्मुक्ति का निर्देश–प्रश्नगत वाहन को भाड़े पर लेने-खरीदने के करार के तहत याची को दिया गया था–वाहन का संपूर्ण मूल्य जो किस्तों में भुगतान योग्य था, वित्तदाता को भुगतान नहीं किया गया–याची ने वाहन किसी और को अंतरित कर दिया–विचारण की समाप्ति तक वाहन को ठिकाने नहीं लगाने के निर्देश के साथ वाहन की अंतरिम अभिरक्षा वित्तदाता को देते हुए सत्र न्यायाधीश का आदेश पूर्णतः विधिक और न्यायोचित है–याचिका खारिज (पैरा 3 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s. S.P. Roy, Ranjit Kumar, For the Petitioner; M/s A.P.P., Abhay Kr. Mishra, For the Opp. Parties.

एम० वाई० इकबाल, न्यायमूर्ति.–पक्षों को सुना गया।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस याचिका द्वारा याची ने दांडिक पुनरीक्षण सं० 46 वर्ष 2006 और 48 वर्ष 2006 में सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 25.1.2007 के उस सम्मिलित आदेश के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है, जिसके द्वारा उन्होंने जी० आर० केस सं० 840/06 (टी० आर० केस सं० 2084/06) में दं० प्र० सं० की धारा 451 के अधीन एस० डी० जे० एम०, दुमका द्वारा पारित 7.10.2006 के आदेश को अपास्त कर दिया था और वित्तदाता मेसर्स अशोक ली लैण्ड फिनान्स लि० के पक्ष में वाहन की निर्मुक्ति का निर्देश दिया था। यह प्रतीत होता है कि प्रश्नगत वाहन के लिए याची संजीव कुमार सिंह के पक्ष में अशोक ली लैण्ड फिनान्स लि० द्वारा वित्त प्रदान किया गया था। घटना के समय वाहन ड्राइवर अर्थात् मुन्ना मंडल के कब्जे में था और किसी मदन कुमार मंडल, जिसने वाहन का स्वामी होने का दावा किया, द्वारा ड्राइवर के कब्जे में दिया गया था। यह अभिकथन किया गया था कि घटना के समय, याची संजीव कुमार सिंह ने मुन्ना मंडल से वाहन छीन लिया था

जिसके लिए एक दांडिक मामला संस्थापित किया गया था। पुलिस ने याची संजीव कुमार सिंह के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया। अन्वेषण के दौरान प्रकट हुआ था कि याची संजीव कुमार सिंह ने अशोक ली लैण्ड फिनान्स लि॰ से भाड़े पर लेने-खरीदने के करार के तहत वाहन लिया था और भाड़े पर लेने-खरीदने के करार के मुताबिक याची को वाहन का मूल्य किस्तों में चुकाना था। समय क्रम में याची ने वाहन को मदन कुमार मंडल के पक्ष में अंतरित कर दिया।

3. आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद संज्ञान लिया गया था। तत्पश्चात्, वाहन की निर्मुक्ति के लिए संजीव कुमार सिंह और मदन कुमार मंडल दोनों द्वारा और वित्तदाता द्वारा भी याचिकाएँ दाखिल की गयी थी। तीनों याचिकाओं को एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, दुमका द्वारा सुना गया था जिन्होंने याची संजीव कुमार सिंह के पक्ष में वाहन की निर्मुक्ति का आदेश पारित किया। एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध मदन कुमार मंडल और अशोक ली लैण्ड फिनान्स लि॰ दोनों के द्वारा दांडिक पुनरीक्षण, दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 46 वर्ष 2006 और 48 वर्ष 2006 दाखिल किया गया था। मामले के सारे तथ्यों पर विचार करने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश ने एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया और अभिनिर्धारित किया कि मेसर्स अशोक ली लैण्ड फिनान्स लि॰ जब्त वाहन की अंतरिम अभिरक्षा पाने का हकदार है।

4. तथ्य जो विवाद में नहीं हैं वे ये हैं कि प्रश्नगत वाहन भाड़े पर लेने-खरीदने के करार के तहत मेसर्स अशोक ली लैण्ड फिनान्स लि॰ द्वारा याची को दिया गया था। याची संजीव कुमार सिंह ने वाहन को मदन कुमार मंडल को अंतरित कर दिया। यह भी विवाद में नहीं है कि वाहन का समूचा कीमत, जो किस्तों में भुगतानयोग्य थी, का वित्तदाता को भुगतान नहीं किया गया है।

5. पूर्वोक्त आधारों पर, इस निर्देश कि विचारण की समाप्ति तक वाहन को ठिकाने नहीं लगाया जाए, के साथ वाहन की अंतरिम अभिरक्षा वित्तदाता को देते हुए सत्र न्यायाधीश का आदेश पूर्णत: विधिक और न्यायोचित है। सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित उक्त आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

6. पूर्वोक्त कारणों से, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

संतलाल साहनी

बनाम

बिहार राज्य विद्युत बोर्ड, पटना एवं अन्य

WP(S) No. 1952 of 2003. Decided on 9th December, 2009.

बिहार पेंशन नियमावली, 1950—नियम 43(b)–वेतन आधिक्य की वसूली और पेंशन का काटा जाना–सरकारी सेवा से निवृत्त होने के बाद नियोक्ता और कर्मचारी का संबंध समाप्त हो जाता है और सरकारी सेवक नियंत्रण के परे चला जाता है–नियम 43 (बी॰) के अधीन कार्रवाई किए बिना उसकी सेवानिवृत्ति के बाद सरकारी सेवक को किए गए भुगतान आधिक्य की वसूली के लिए आदेश पारित नहीं किया जा सकता है–याची बिहार राज्य विद्युत बोर्ड की सेवा से सेवानिवृत्त हुआ–बिहार/झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड के कर्मचारियों के संबंध में बिहार पेंशन नियमावली लागू होती है–याची के विरुद्ध नियम 43 बी॰ के अधीन कार्यवाही प्रारंभ नहीं की गयी–आक्षेपित संकल्प अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 7 से 10)

निर्णयज विधि.–(2000)10 SCC 99; 2007(4) JLJR 466(FB); 200(4) JLJR 451(FB)—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Sahani, P.S. Ghosh, For the Petitioner; Mr. Manoj Tandon, For the B.S.E.B.; Mr. A.K. Pandey, For the J.S.E.B.

आदेश

रिट याचिका के परिशिष्ट-2 में अंतर्विष्ट दिनांक 26.8.2000 के संकल्प के साथ-साथ परिशिष्ट-8 में अंतर्विष्ट दिनांक 13.12.2002 के बिहार राज्य विद्युत बोर्ड के संकल्प से याची व्यथित है।

2. दिनांक 26.8.2000 (परिशिष्ट-2) के संकल्प द्वारा उसकी सेवा पुस्तिका में भर्त्सना की प्रविष्टि का और एक वार्षिक वेतनवृद्धि रोकने का शास्ति अधिरोपित किया गया था जबकि दिनांक 13.12.2002 के संकल्प द्वारा दिनांक 1.2.1999 से 15.9.2000 तक की अवधि के लिए वेतन के तौर पर याची द्वारा प्राप्त की गयी राशि की वसूली के लिए और उसके पेंशन से 5% काटने के लिए एक निर्णय लिया गया था।

3. संक्षेप में तथ्य, ये हैं कि याची विद्युत आपूर्ति खंड गिरीडीह, से कनीय विद्युत अभियन्ता के तौर पर सेवानिवृत्त हुआ। प्रत्यर्थी विद्युत बोर्ड के अनुसार याची को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर दिनांक 31.1.1999 को सेवानिवृत्त होना था लेकिन अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि जानने के बावजूद, याची सेवा में बना रहा और अंतत: परिशिष्ट-1 में अंतर्विष्ट दिनांक 15.9.2000 को पत्र जारी करके उसे काम रोकने को कहकर सेवानिवृत्त कर दिया गया था।

4. तत्पश्चात, अपनी सेवानिवृत्ति की वास्तविक तिथि के बाद भी सेवा में उसकी अभिकथित निरन्तरता के लिए परिशिष्ट-3 में अंतर्विष्ट दिनांक 29.11.2000 के आरोप पत्र को याची पर तामीला किया गया था। यह कहते हुए कि उसने कभी दुर्व्यपदेशन नहीं किया था और न ही कोई धोखाधड़ी की है और दिनांक 1.2.1999 से 15.9.2000 तक की अवधि के दौरान उसके द्वारा किए गए काम के बदले में उसे भुगतान किया गया था।

याची को जाँच रिपोर्ट के साथ द्वितीय कारण बताओ नोटिस तामील किया गया था और दिनांक 1.2.1999 से 15.9.2000 तक की अवधि के दौरान उसको भुगतान किए गये वेतन की वसूली और उसके पेंशन से 5% काटने की सजा प्रस्तावित की गयी थी। तत्पश्चात्, दिनांक 8.3.2003 को पत्र जारी करके प्रत्यर्थी सं॰ 3, अर्थात् वित्त नियंत्रक, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड ने प्रत्यर्थी सं॰ 4 लेखा उपनिदेशक, बी॰ एस॰ ई॰ बी॰ को याची को भुगतान योग्य 96,135/- रुपए के उपदान राशि में से 89,565/- रुपये की राशि काटने का निर्देश दिया।

5. याची की ओर से प्रतिवाद किया गया है कि चूँकि वह प्रत्यर्थीगण के मुताबिक, पहले ही दिनांक 15.9.2000 को सेवा से निवृत्त हो चुका था, अत: बिहार पेंशन नियमावली के प्रावधान के अधीन कोई कार्यवाही प्रारंभ किए बिना उसपर ऐसी सजा अधिरोपित नहीं की जा सकती थी। बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन उसपर कोई नोटिस तामील नहीं किया गया था, अत: सजा प्रस्तावित करता दिनांक 5.11.2002 का परिशिष्ट-5 अर्थात् द्वितीय कारण बताओ नोटिस का जारी किया जाना और साथ-साथ दिनांक 1.2.1999 से दिनांक 15.9.2000 तक की अवधि के दौरान याची को भुगतान की गयी वेतन की राशि की वसूली और उसके पेंशन का 5% काटने के लिए सजा अधिरोपित करने हेतु दिनांक 13.12.2002 का संकल्प, परिशिष्ट-8 जारी किया जाना, पूर्णत: गैर-कानूनी और बिना अधिकारिता के है।

6. प्रत्यर्थीगण बिहार राज्य विद्युत बोर्ड के अनुसार, याची की सेवाशर्त बिहार राज्य विद्युत बोर्ड सेवा विनियम, 1976 द्वारा शासित होती थी और विनियम-78 के मुताबिक उस तिथि को जब एक

कर्मचारी अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करता है उसे बिना कहे गए अथवा निर्देश दिए गए स्वयं अपने पदभार से मुक्त होना चाहिए और अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर पदभार से विमुक्त होने में विफलता किसी कर्मचारी को अधिवर्षिता की तिथि के परे वेतन और भत्ते का हकदार नहीं बनाती है और इस कारण याची को दिनांक 31.1.1999 को अपना पद छोड़ देना चाहिए था और ऐसा नहीं करने पर अनुशासनिक कार्यवाही का जिम्मेवार था और दिनांक 31.1.1999 से परे वेतन और भत्ता पाने का हकदार नहीं था।

7. इस तथ्य पर विवाद नहीं है कि बिहार/झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड के कर्मचारियों के संबंध में बिहार पेंशन नियमावली लागू होती है।

8. यह एक सुनिश्चित विधि है कि जब सरकारी सेवक सेवा से सेवानिवृत्त हो जाता है, नियोक्ता और कर्मचारी का संबंध समाप्त हो जाता है और सरकारी सेवक सरकार के अनुशासनिक नियंत्रण के परे चला जाता है। यदि उक्त सेवानिवृत्त सेवक के विरुद्ध कार्रवाई करनी है तो इसे केवल बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन किया जा सकता है। यह भी सुस्थापित विधि है कि सरकारी सेवक को किए गए अतिरिक्त भुगतान के लिए उसकी सेवानिवृत्ति के उपरांत बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन कोई कार्रवाई किए बिना कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। इस मामले में ''**श्रीमती नोरमी टोपनो बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** 2007 (4) JLJR 466 (FB) में प्रकाशित, '**झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम पद्मलोचन कालिन्दी एवं एक अन्य,** 2007 (4) JLJR 451 (FB) में प्रकाशित और ''**बी॰ एस॰ इ॰ वी॰ एवं एक अन्य बनाम विजय बहादुर एवं एक अन्य, (2000)10 SCC 99** में प्रकाशित मामलों में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णयों को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

9. वर्तमान मामले में, याची के विरुद्ध पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन कार्यवाही प्रारंभ नहीं की गयी थी और दिनांक 29.11.2000 का आरोप-पत्र और परिशिष्ट-8 में अंतर्विष्ट अधिक दी गयी राशि की वसूली और उसके पेंशन का 5% रोकने के लिए आदेश का तामिला दिनांक 13.12.2002 को किया गया था जब दिनांक 15.9.2000 को याची सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका था। अत: दिनांक 29.11.2000 के आरोप पत्र (परिशिष्ट-3) के साथ-साथ परिशिष्ट-8 में अंतर्विष्ट दिनांक 13.12.2002 का संकल्प सहित याची की सेवानिवृत्ति के बाद प्रत्यर्थीगण द्वारा की गई ऐसी सारी कार्रवाई गैरकानूनी और बिना अधिकारिता के अभिनिर्धारित की जाती है।

10. परिणामस्वरूप, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और परिशिष्ट-8 में अंतर्विष्ट दिनांक 13.12.2002 का संकल्प अभिखंडित किया जाता है और दिनांक 1.2.1999 से 15.9.2000 तक की अवधि के दौरान वेतन और भत्ते के तौर पर याची को पहले ही दी जा चुकी राशि की वसूली या कटौती से प्रत्यर्थीगण बी॰ एस॰ इ॰ बी॰ और जे॰ एस॰ इ॰ बी॰ को अवरुद्ध किया जाता है। लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में व्यय को लेकर आदेश नहीं होगा।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

सुबोध कुमार गुप्ता उर्फ सुबोध प्रसाद गुप्ता

बनाम

झारखंड राज्य (सतर्कता)

B.A. No. 7461 of 2009. Decided on 21st December, 2009.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420/467/468/469/471/120B/109/201/423/424/477-A सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13(1)(d) एवं 13(2)—जमाबंदी खोलने से संबंधित मामला–याची एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ है–जाँच रिपोर्ट में अभिकथित प्रक्षेप–मामले के गुणागुण पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उसके माध्यम से अभिलेख के तौर पर भेजे गए नामांतरण हेतु याचिका पर आदेश पारित करने का याची अंतिम प्राधिकारी नहीं था–याची को इन शर्तों के अधीन जमानत दिया गया कि जमानतदार याची के निकट संबंधी होंगे, और वह अवर न्यायालय में नियमित रूप से उपस्थित होगा।

(पैरा 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar, For the Petitioner; Mr. A.K. Kashyap, For the State (Vigilance).

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–विशेष न्यायाधीश (सतर्कता), राँची के समक्ष लंबित सतर्कता पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2000 (विशेष केस सं॰ 13 वर्ष 2000) से उद्भूत भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 420/467/468/471/120B/109/201/423/424/477A के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन भी अनेक अभिकथित अपराधों के लिए दिनांक 30.9.2009 से याची अभिरक्षा में है।

2. सतर्कता अन्वेषण ब्यूरो द्वारा की गयी प्रारंभिक जाँच के अनुसार, अभियोजन मामला यह था कि टीम ने परिवाद के आधार पर कार्यवाही की जो राँची नगर सर्किल के अंतर्गत मौजा बरगाइ के 13.5 एकड़ वाले क्षेत्र के खाता सं॰ 140, प्लॉट सं॰ 1114 से संबंधित गैरमजरूआ खास भूमि के संबंध में 20 व्यक्तियों के नाम में जमाबन्दी खोलने से संबंधित थी। यह कथन किया गया था कि तत्कालीन अपर कलक्टर, श्री एम॰ पी॰ अजमेरा ने विविध केस सं॰ 90 वर्ष 1992-93 में 103.84 एकड़ भूमि की जमाबन्दी रद्द कर दी थी और भूमि वापस दिलाने और त्रुटि करने वाले अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए भी निर्देश दिया था लेकिन उक्त निर्देश के अनुसरण में कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी थी। लेकिन, प्रारंभिक जाँच के दौरान पाया गया था कि खाता सं॰ 140, प्लॉट सं॰ 1114, 113.5 एकड़ क्षेत्र वाली उपर्युक्त भूमि सर्वे खतियान में गैरमजरुआ मालिक के तौर पर दर्ज की गयी थी और 7.5 एकड़ क्षेत्र के लिए किसी कृष्णान्चल गृह निर्माण सहकारी समिति के क्रमांक संख्या 7 पर 20 व्यक्तियों का नाम रजिस्टर-II में लिखा था। पूर्वोक्त 20 व्यक्तियों के कब्जे में कुल क्षेत्र 103.84 एकड़ था और क्रमांक सं॰ 9 से 20 तक दर्ज व्यक्तियों के नाम पर प्रत्येक को 1 एकड़ जमीन व्यवस्थापित की गयी थी। प्रारंभिक जाँच के दौरान आगे यह पाया गया था कि कृष्णान्चल गृह निर्माण सहकारी समिति (यहाँ इसमें इसके बाद संक्षिप्तता हेतु समिति के तौर पर निर्दिष्ट) का नाम भी 7.5 एकड़ क्षेत्र के लिए रजिस्टर-II में दर्ज किया गया था और दिखाया गया था कि प्रत्येक पंजीकरण हेतु 45,000/- के भुगतान पर, प्रत्येक 2.5 एकड़ के लिए, वर्ष 1984 में विभिन्न तिथियों पर तीन पंजीकृत विक्रय विलेखों द्वारा किसी मो॰ सुलेमान से उक्त समिति ने भूमि खरीदी थी और समिति की ओर से नामान्तरण हेतु आवेदन दिया गया था जिसे नामान्तरण केस सं॰ 292 वर्ष 1984-85 में तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा इस निर्देश के साथ कि प्रथम क्रेता के नाम पर जमाबन्दी खोलने के लिए कार्यवाही प्रारंभ की जाए और इसके बाद ही समिति के नामान्तरण पर विचार किया जा सकता है, अंततः खारिज कर दिया गया था। यह अभिकथन किया गया था कि एस॰ डी॰ ओ॰ श्री पी॰ एन॰ राय के स्थानान्तरण के बाद उक्त कमिटी के सदस्य और सचिव ने समिति के पक्ष में जमाबन्दी खोल कर नामान्तरण के लिए पुनः आवेदन दिया था। यद्यपि उन्होंने पूर्व एस॰ डी॰ ओ॰ के आदेश को उल्लिखित किया था लेकिन विविध केस सं॰ 16 वर्ष 1986-87 नगर सर्किल, राँची में प्रारंभ किया गया था। जाँच के बाद हल्का कर्मचारी ने समिति

के पक्ष में रिपोर्ट प्रस्तुत किया जिस पर सर्किल निरीक्षक राजदेव दूबे ने भी सहमति जतायी थी और जिन्होंने, समिति के पक्ष में जमाबन्दी खोलने की अनुशंसा की थी यद्यपि पहले उसने उक्त समिति के पक्ष में जमाबन्दी खोलने से इन्कार कर दिया था। एस॰ डी॰ ओ॰, सदर, राँची ने याची सुबोध कुमार गुप्ता उर्फ सुबोध प्रसाद गुप्ता, जो तत्कालीन उप-कलक्टर भूमि सुधार, राँची थे, के माध्यम से सर्किल अधिकारी से रिपोर्ट मंगायी थी। याची के विरुद्ध अभिकथन था कि उन्होंने नोट में अनुमोदित किया था कि भूतपूर्व एस॰ डी॰ ओ॰, राँची ने दिनांक 20.10.1986 के आदेश द्वारा जमाबन्दी खोलने के लिए पहले ही निर्देश दिया था, अत: ''आदेश के लिए एस॰ डी॰ ओ॰ राँची के समक्ष अभिलेख रखे जाएँ।'' यह विनिर्दिष्ट तौर पर इंगित किया गया था कि पृष्ठांकन अनुमोदन को हटा दिया गया और याची की प्रेरणा पर 'आदेश हेतु' शब्द द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था और अभिलेख को एस॰ डी॰ ओ॰ के समक्ष प्रस्तुत किया गया था क्योंकि वह चाहते थे कि कमिटी के पक्ष में आदेश पारित किया जाना चाहिए। उस आदेश के अनुसरण में, एस॰ डी॰ ओ॰ ने जमाबन्दी खोलने के लिए आदेश पारित किया जो याची का आपराधिक आशय दर्शाता है।

3. विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार ने निवेदन किया कि हस्ताक्षर जिसे नामान्तरण अभिलेख के आदेश-पत्र दिनांक 19.7.1990 में दिखाया गया था, जैसा श्री रामानन्द प्रसाद सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया है, याची का हस्ताक्षर प्रतीत नहीं होता है, बल्कि यह कूटरचित और जाली था क्योंकि याची ने दिनांक 19.7.1990 को एस॰ डी॰ ओ॰ को कोई भी अनुशंसा नहीं की थी। विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ सदर, राँची द्वारा पारित दिनांक 27.7.1988 के आदेश से यह प्रकट होगा कि रिपोर्ट सर्किल अधिकारी, राँची नगर अंचल से मांगी गयी थी और उक्त रिपोर्ट एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ के माध्यम से अग्रसर की जानी थी क्योंकि आदेश पारित करने अथवा जाँच करने के लिए याची एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ के पास कोई प्राधिकार नहीं था क्योंकि उससे अपेक्षा की गयी थी कि वह अपना नोट देकर समस्त तथ्य को एस॰ डी॰ ओ॰ के पास भेज दे जो इस संबंध में निर्णय लेने का सक्षम प्राधिकारी थे और तद्द्वारा उसने एस॰ डी॰ ओ॰ को रिपोर्ट केवल अग्रसारित किया था। याची को वर्तमान मामले में आलिप्त किया गया था और दिनांक 27.7.1988 के आदेश के कारण ही वह सामने आया। दिनांक 7.4.1991 के आदेश-पत्र पर अभिकथित तौर पर प्रकट याची के हस्ताक्षर जो स्वीकृत हस्ताक्षर है, का कोरा परिशीलन और ऐसा बचाव अधिकारी श्री रामानन्द प्रसाद सिंह, तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ के आचरण पर स्पष्ट संदेह उत्पन्न करता है। याची दिनांक 12.8.1989 से 11.7.1993 तक एल॰ आर॰ डी॰ सी॰, सदर, राँची के तौर पर पदस्थापित था और बेदाग कैरियर वाला था, जो हृदय रोग से पीड़ित है तथा दिनांक 30.9.2009 से अभिरक्षा में है और उसका इलाज सी॰ एम॰ सी॰, वेल्लोर और सागर अस्पताल, जयनगर, बंगलोर में चल रहा था। उसने दिनांक 31.1.2004 को अपनी सेवा से अधिवर्षिता प्राप्त की और अब बिना अपने किसी दोष के कैद में है, अत: उसकी जमानत याचिका पर विचार किया जाना चाहिए।

4. विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री कश्यप ने जमानत का विरोध किया और निवेदन किया कि उसके विरुद्ध तात्विक अभिकथनों से याची की सह-अपराधिता प्रकट है क्योंकि वह अपने पद के छद्म प्रयोग से समिति के पक्ष में गैरमजरुआ खास भूमि की जमाबन्दी खुलवाने में सहायक रहा है।

5. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, तथ्यों एवं परिस्थितियों और उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की प्रकृति पर दृढ़ विचार लेते हुए और साथ-साथ याची की ओर से प्रस्तुत निवेदनो कि वह उसके माध्यम से भेजे गए अभिलेख के अतिरिक्त, नामान्तरण हेतु याचिका पर आदेश

पारित करने वाला अंतिम प्राधिकारी नहीं था, इस मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, याची सुबोध कुमार गुप्ता उर्फ सुबोध प्रसाद गुप्ता को सतर्कता पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2000 (विशेष केस सं॰ 13 वर्ष 2000) में विशेष न्यायाधीश (सतर्कता), राँची की संतुष्टि पर समान राशि की दो प्रतिभूओं के साथ 20,000/- रुपये का जमानत पत्र निष्पादित करने पर निर्मुक्त करने का निर्देश इन शर्तों के साथ दिया जाता है कि जमानतदार उसके निकट संबंधी होंगे और वह नियमित रूप से अवर न्यायालय में उपस्थित होगा।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

संतोख सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 351 of 2005. Decided on 2nd December 2009.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A एवं 406 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 177 एवं 178—क्रूरता–दहेज की मांग–मोटरसाइकिल और 1,00,000/- रुपयों की अभिकथित मांग पूरी न किए जाने पर यातना–एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ जमशेदपुर द्वारा सम्मन जारी–क्रूरता के सारे कृत्य पश्चिम बंगाल के वर्द्धमान जिला के अंतर्गत दुर्गापुर में किए गए–अस्पष्ट संक्षिप्त दूरभाषिक वार्तालाप के आधार पर क्षेत्रीय अधिकारिता न्यायालय में निहित नहीं की जा सकती है–चूँकि क्रूरता का कोई अंश जमशेदपुर में नहीं हुआ है, एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ जमशेदपुर को परिवाद याचिका में किए गए अभिकथनों की जाँच-पड़ताल करने की अधिकारिता नहीं है–समस्त कार्यवाही अभिखंडित। (पैरा 8 से 13)

निर्णयज विधि.–(2004)8 SCC 100—Followed.

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Opp. Parties.

आदेश

सी॰–1 केस सं॰ 710 वर्ष 2004 में एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 20.9.2004 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन वह इस निष्कर्ष पर आए कि याची और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 सह-पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 498(A) एवं 406 के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध बनता है। तद्नुसार, उन्होंने उनके विरुद्ध सम्मन जारी करने का निर्देश दिया।

2. परिवादी/विरोधी पक्षकार सं॰ 2 हरबिन्दर कौर उर्फ बबन द्वारा दाखिल परिवाद के आधार पर याची और छः अन्यों के विरुद्ध पूर्वोक्त परिवाद मामला संस्थापित किया गया है। यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 5.12.1993 को जमशेदपुर में सिख रीति-रिवाजों के अनुरुप विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने अभियुक्त दलविन्दर सिंह (याची का पुत्र) के साथ विवाह किया। आगे यह अभिकथन किया गया है कि विवाह के दौरान विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के माता-पिता ने उपहारस्वरुप आभूषण एवं अन्य सामान दिया था। आगे यह अभिकथन किया गया है कि विवाह के पश्चात विरोधी पक्षकार सं॰ 2 पश्चिम बंगाल के बर्द्धवान जिला में गुरुद्वारा पथ, बेनोचिति, दुर्गापुर स्थित दांपत्य निवास चली गयी। आगे यह

अभिकथन किया गया है कि लगभग एक माह उसने अपने दांपत्य निवास में शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत किया। तत्पश्चात् दलविन्दर सिंह एवं अन्य अभियुक्तगण ने परिवादी/विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को अपने पिता से एक लाख रुपया और मोटरसाइकिल मांगने के लिए कहा। यह अभिकथन किया गया है कि उसके ऐसा करने से मना करने पर अभियुक्तगण ने विभिन्न अवसरों पर उसे कई तरीके से यातना दी। यह कथन किया गया है कि दिनांक 27.8.1995 को विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने एक लड़के को जन्म दिया लेकिन इसके बावजूद दहेज की मांग हेतु उसके साथ बुरा व्यवहार किया गया और यातना दी गयी। यह कथन किया गया है कि अंततः दिनांक 14.9.2000 को उसे अपने दांपत्य निवास से भगा दिया गया और तत्पश्चात् वह जमशेदपुर आ गयी और अपने माता-पिता के साथ रहने लगी। आगे यह अभिकथन किया गया है कि अभियुक्तगण ने इस बहाने पर कि उसके पुत्र को उसके मायके (ननिहाल) भेज दिया जाएगा उसे बिना अपने पुत्र के अपने दांपत्य निवास से जाने के लिए मजबूर कर दिया था। लेकिन अभियुक्तगण ने उसका पुत्र वापस नहीं लौटाया और तद्द्वारा याची सहित अभियुक्तगण द्वारा उसे मानसिक यातना दी जा रही है। आगे यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 11.7.2004 को अभियुक्त सं॰ 1, 4 और 5 ने परिवादी को टेलीफोन किया और धमकाया कि यदि परिवादी उनके घर आने का प्रयास करती है तो उसे जिन्दा जला दिया जाएगा। यह भी अभिकथन किया गया है कि उसके विवाह के दौरान उनलोगों द्वारा प्राप्त किए गए उपहारों को अभियुक्तगण ने नहीं लौटाया था और इन्हें अभियुक्तगण द्वारा दुर्विनियोजित कर लिया गया है।

3. यह प्रकट है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 192 के अधीन विरोधी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल परिवाद याचिका को जाँच के लिए एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया है। तब यह प्रकट होता है कि विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर ने सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर विरोधी पक्षकार सं॰ 2 का बयान लिया है और परिवाद मामले के समर्थन में दो गवाहों का भी परीक्षण किया था। अभिलेख आगे प्रकट करते हैं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करने के बाद दिनांक 20.9.2004 के आदेश के तहत विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर ने निष्कर्षित किया कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498(A), 406 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन याची सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार है। तद्नुसार एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 204 (1) के अधीन याची और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध सम्मन जारी करने का निर्देश दिया। इस आदेश के विरुद्ध वर्तमान याचिका दाखिल की गयी है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा द्वारा निवेदन किया गया है कि उसकी ओर से परीक्षित अन्य गवाहों और परिवादी के कथन के साथ-साथ परिवाद याचिका के परिशीलन से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि क्रूरता के सारे कृत्य पश्चिम बंगाल के वर्द्धवान जिला के दुर्गापुर में किए गए थे। आगे यह निवेदन किया गया है कि समस्त परिवाद याचिका में ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि क्रूरता का कोई अंश जमशेदपुर में किया गया था। इस प्रकार, जमशेदपुर में मामले का विचारण एवं/या जाँच करने की क्षेत्रीय अधिकारिता विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर को नहीं है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि परिवाद केस सं॰ 710 वर्ष 2004 से संबंधित समस्त कार्यवाही बिना अधिकारिता के की जा रही है। अतः आक्षेपित आदेश न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

5. दूसरी ओर विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता, आनन्द सेन निवेदन करते हैं कि दिनांक 11.7.2004 को अभियुक्त सं॰ 1, 4 और 5 ने परिवादी को टेलीफोन पर धमकाया था कि यदि वह उनके घर आने का प्रयास करेगी तो उसे जिन्दा जला दिया जाएगा। पूर्वोक्त धमकी ने परिवादी को मानसिक चिन्ता कारित की है क्योंकि उसे अपने पुत्र से मिलने से वंचित कर दिया गया है। यह निवेदन

किया गया है कि चूँकि पूर्वोक्त टेलीफोन से दी गयी धमकी परिवादी द्वारा जमशेदपुर में प्राप्त की गयी है, इसलिए, जमशेदपुर न्यायालय को मामले का जाँच और विचारण करने की अधिकारिता है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि याची के विद्वान अधिवक्ता का परिवाद बेबुनियाद और इस मामले के तथ्यों के विरुद्ध है। यह निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं है, अतः इसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं की जाती है।

6. निवेदनों को सुनने के बाद, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 177 निम्नलिखित है:–

*"177. **जाँच और विचारण का साधारण स्थान.**-प्रत्येक अपराध उस न्यायालय, जिसकी अधिकारिता के अंतर्गत इसे किया गया था, द्वारा साधारणतः जाँच किया जाएगा और विचारण किया जाएगा।''*

7. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 178, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 177 के अधीन प्रदत्त पूर्वोक्त सामान्य नियम के कुछ अपवाद प्रदान करती है जो निम्नलिखित है:-

*"178. **जाँच अथवा विचारण का स्थान.**-(a) जब यह अनिश्चित है कि अनेक स्थानीय क्षेत्रों में से किसमें अपराध किया गया था अथवा*

(b) जहाँ अपराध अंशतः एक क्षेत्र में और अंशतः दूसरे क्षेत्र में किया गया है, अथवा

(c) जहाँ अपराध एक चालू रहने वाला अपराध है और एक से अधिक स्थानीय क्षेत्रों में लगातार किया जा रहा है, अथवा

(d) जहाँ यह विभिन्न स्थानीय क्षेत्रों में किए गए अनेक कृत्यों से मिलकर बनता है, ऐसे स्थानीय क्षेत्रों में से किसी पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय द्वारा इसकी जाँच की जा सकती है अथवा विचारण किया जा सकता है।''

8. इस प्रकार, उक्त दोनों प्रावधानों के परिशीलन पर, यह प्रकट है कि सामान्य नियम के तौर पर प्रत्येक अपराध उस न्यायालय द्वारा जाँचा जाना चाहिए अथवा विचारण किया जाना चाहिए जिसकी अधिकारिता के अंतर्गत इसे किया गया था। लेकिन, यदि अपराध अनेक स्थानों पर किया गया है अथवा यह एक चालू रहने वाला अपराध है तब दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 178 प्रावधान करती है कि कोई भी न्यायालय, जिसकी अधिकारिता में उक्त घटना का कोई भी अंश घटित हुआ हो, मामले का जाँच और विचारण कर सकता है।

9. वर्तमान मामले में, परिवाद याचिका (परिशिष्ट-1) और सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर विरोधी पक्षकार सं॰ 2/परिवादी के बयान और जाँच के दौरान परिवादी की ओर से परीक्षित परिवाद गवाह सं॰ 1 और 2 के बयान के परिशीलन से मैं, पाता हूँ कि क्रूरता के सारे कृत्य पश्चिम बंगाल के वर्द्धवान जिले के भीतर दुर्गापुर में किए गए थे। परिवाद याचिका में कथन किया गया है कि दिनांक 14.9.2000 को उसे उसके दांपत्य निवास से बाहर निकाल दिया गया था और तत्पश्चात् वह अपने मायके में रहती है। परिवाद में दर्शाने के लिए ऐसा कुछ नहीं है कि दिनांक 14.9.2000 से इस परिवाद याचिका के दाखिल किए जाने की तिथि अर्थात् 19.7.2004 तक याची और अन्य अभियुक्तगण जमशेदपुर आए और परिवादी को यातना दी। परिवाद याचिका के पैराग्राफ सं॰ 13 पर अभिकथन किया गया है कि दिनांक 11.7.2004 को अभियुक्त सं॰ 1, 4 और 5 ने परिवादी को टेलीफोन पर धमकी दी थी कि यदि उसने उनके घर आने का प्रयास किया तो उसे जिन्दा जला दिया जाएगा जिससे परिवादी को मानसिक चिन्ता कारित हुई। इस संबंध में यह उल्लिखित करने योग्य है कि परिवादी/विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने सत्यनिष्ठा से दिए गए प्रतिज्ञान पर अपने बयान में और परिवादी की ओर से परीक्षित

अन्य गवाहों ने पूर्वोक्त अभिकथन के बारे में कुछ भी नहीं कहा था। परिवाद याचिका में यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है कि अपने दांपत्य निवास से बाहर निकाले जाने की तिथि से चार वर्ष बाद क्यों अभियुक्त सं॰ 1, 4 और 5 ने परिवादी से टेलीफोन पर बातचीत किया। अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं है जो दर्शाए कि दिनांक 11.7.2004 के पहले अभियुक्तगण परिवादी से टेलीफोन पर बातचीत करते थे। यह प्रकट है कि परिवाद याचिका में पूर्वोक्त बयान जमशेदपुर में अधिकारिता सृजित करने की दृष्टि से किया गया है जिसे परिवादी और/अथवा उसके गवाहों द्वारा जाँच के दौरान समर्थित नहीं किया गया है। **अजय कुमार जैन बनाम झारखंड राज्य,** 2007(2) JLJR 282 में प्रकाशित, मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि अस्पष्ट संक्षिप्त दूरभाषिक वार्तालाप के आधार पर न्यायालय में क्षेत्रीय अधिकारिता विहित नहीं की जा सकती है।

10. इस प्रकार, वर्तमान मामले में परिवाद याचिका के पैराग्राफ सं॰ 13 पर किए गए अस्पष्ट अभिकथनों के आधार पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि पश्चिम बंगाल के बर्द्धवान जिला के दुर्गापुर में परिवादी पर किए गए क्रूरता के अभिकथन की जाँच और विचारण के लिए एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर को यह क्षेत्रीय अधिकारिता प्रदान करता है।

11. वाई॰ अब्राहम अजिथ एवं अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक/चेन्नई एवं एक अन्य, (2004)8 SCC 100 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि स्थान सी॰ पर, जहाँ वह स्थान एन॰ पर अपने पति का घर छोड़ने के बाद रहने के लिए आयी, और जब सारे अभिकथित अपराध स्थान एन॰ पर किए गए हैं और वाद हेतुक का कोई अंश स्थान सी॰ पर उद्‌भुत नहीं हुआ है, पत्नी द्वारा पति और उसके संबंधियों के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A एवं 406 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन परिवाद दाखिल किया जाता है, तब दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 177 और 178 की दृष्टि में, स्थान सी॰ पर के दंडाधिकारी को मामले पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त विधि की दृष्टि में, चूँकि क्रूरता के कृत्य का कोई अंश जमशेदपुर में नहीं हुआ है, विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ जमशेदपुर को परिवाद याचिका में किए गए अभिकथनों की जाँच करने की अधिकारिता नहीं है।

12. तद्‌नुसार मैं निष्कर्षित करता हूँ कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जमशेदपुर न्यायालय को कोई क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं है। अत: विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर के न्यायालय में लंबित परिवाद केस सं॰ 710 वर्ष 2004 के संबंध में समस्त कार्यवाही बिना अधिकारिता की है और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

13. परिणामस्वरूप, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है वे दिनांक 20.9.2004 के आदेश सहित सी-1 केस संख्या 710 वर्ष 2004 के संबंध में समस्त कार्यवाही एतद्‌द्वारा अभिखंडित की जाती है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

भागवत सिंह

बनाम

सेन्ट्रल कोल फील्ड लिमिटेड एवं अन्य

Writ Petition (Service) No. 2340 of 2002. Decided on 8th December, 2009.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि–सेवानिवृत्ति–जन्म तिथि–मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में जन्म तिथि 21.8.1942 दर्ज की गयी थी लेकिन सेवा अभिलेख में इसे 1.11.1941 गलत दर्ज किया गया था–इसके लिए कोई कारण बताए बिना जन्मतिथि में सुधार के लिए याची का अभ्यावेदन अस्वीकार कर दिया गया–सेवा अभिलेखों में दर्ज याची की जन्मतिथि में काट-पीट और लिप्त लेखन है–जन्म तिथि स्थापित करने का निश्चायक प्रमाण मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र है–अपने मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में दर्ज जन्मतिथि के आधार पर सेवा में बने रहने का याची हकदार है–याचिका 5000/- रुपये के व्यय के साथ अनुज्ञात। (पैरा 7 से 12)

निर्णयज विधि.–2002(2) JCR 48; 2003(4) JCR 602(DB); 2003(2) JCR 663; 2006(1) JCR 297—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. V. N. Jha, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.–इस रिट याचिका को दाखिल करके, याची ने निम्नलिखित अनुतोषों की प्रार्थना की है:–

(i) दिनांक 6.2.2002 के आदेश (परिशिष्ट-6) और दिनांक 8.2.2002 के आदेश (परिशिष्ट-7) जिसके द्वारा जन्मतिथि के सुधार हेतु याची का अभ्यावेदन अस्वीकार कर दिया गया है, को अभिखंडित करने हेतु;

(ii) अपने मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में दर्ज जन्म-तिथि के आधार पर अगस्त, 2002 तक याची को सेवा में बने रहने की अनुमति देने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने हेतु;

(iii) दिनांक 1.11.2001 को और से, याची को अधिवर्षित होने का निर्देश देते हुए दिनांक 19.10.2000 के आदेश अर्थात् परिशिष्ट-2 के अभिखंडन हेतु;

(iv) मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में दर्ज जन्मतिथि के आधार पर उसकी जन्मतिथि 1.11.1941 के स्थान पर सुधार कर 21.8.1942 दर्ज करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने हेतु, और

(v) उसके द्वारा काम की गयी अवधि के लिए दिसम्बर 2001 से वेतन भुगतान हेतु।

2. संक्षेप में, याची का मामला यह है कि आरंभ में उसे पम्प खलासी के पद पर दिनांक 25.11.1959 को नियुक्त किया गया था और वह जिला हजारीबाग में सी॰ सी॰ एल॰ के पिपरवार प्रोजेक्ट में पदस्थापित था। वह वर्ष 1959 में मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ जिसका परिणाम जून 1959 को अर्थात् उसकी आरंभिक नियुक्ति के पूर्व प्रकाशित हुआ था।

3. याची की व्यथा यह है कि यद्यपि उसकी वास्तविक जन्मतिथि 21.8.1942 है जैसा मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में दर्ज है लेकिन सर्विस शीट में उसकी जन्मतिथि 1.11.1941 गलत दर्ज की गयी थी। वर्ष 1987-88 में प्रत्यर्थीगण ने सी॰ सी॰ एल॰ के प्रत्येक कर्मचारी को सर्विस शीट भेजा था और ऐसा ही एक सर्विस शीट याची को भी भेजा गया था जिससे उसे पहली बार पता चला कि उसके सर्विस शीट में उसकी जन्मतिथि 1.11.1941 गलत दर्ज की गयी है। उसने तत्काल आपत्ति उठायी और स्वयं सर्विस शीट में पृष्ठांकृत किया कि जन्मतिथि गलत दर्ज की गयी है, अत: मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र के मुताबिक इसे सुधारा जाना चाहिए। इस रिट याचिका में परिशिष्ट-1 के तौर पर उक्त सर्विस शीट का एक प्रति उपाबद्ध किया गया है। जन्मतिथि के सुधार से संबंधित मामले के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थीगण ने याची को दिनांक 19.10.2000 को नोटिस जारी किया जो इस रिट याचिका में

परिशिष्ट-2 के तौर पर अंतर्विष्ट है और सूचित किया कि वह अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर दिनांक 1.11.2001 के प्रभाव से सेवानिवृत्त हो जाएगा। उक्त नोटिस की प्राप्ति पर याची ने अपने मैट्रिकुलेशन प्रमाण-पत्र के आधार पर जन्मतिथि में सुधार हेतु अभ्यावेदन किया। तत्पश्चात्, दिनांक 30.10.2000 को उसे बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड द्वारा जारी मार्कशीट, प्रवेश पत्र, इत्यादि और साथ-साथ उस सेन्टर, जहाँ से वह उक्त मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उपस्थित हुआ था, का नाम प्रस्तुत करने के लिए कहते हुए परिशिष्ट-3 में अंतर्विष्ट पत्र याची को जारी किया गया था। अपेक्षित विवरणों को याची ने प्रस्तुत किया।

4. आगे, याची का मामला यह है कि याची द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों की वास्तविकता के बारे में बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से भी प्रत्यर्थीगण ने पूछताछ की थी और इसके उत्तर में दिनांक 29.9.2001 को जारी एक पत्र द्वारा बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड ने मुख्य महाप्रबंधक, सी॰ सी॰ एल॰ पीपरवार क्षेत्र के कार्यालय को सूचित किया कि पूछताछ और सत्यापन पर यह पाया गया था कि याची शेरघाटी सेन्टर से उपस्थित हुआ था और वह वर्ष 1959 की वार्षिक परीक्षा में तृतीय श्रेणी में मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था और उसकी दर्ज जन्मतिथि 21.8.1942 थी। उसकी जन्मतिथि 21.8.1942 दर्शाते हुए बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड द्वारा जारी एक डुप्लिकेट मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र याची ने संबंधित प्राधिकारीगण के समक्ष प्रस्तुत किया था।

5. याची की शिकायत यह है कि यद्यपि बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड द्वारा जारी उसके मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में उसकी जन्मतिथि 21.8.1942 दर्ज की गयी थी लेकिन प्रोजेक्ट अधिकारी, बचरा ने रिट याचिका के परिशिष्ट-6 में अंतर्विष्ट दिनांक 6.2.2002 का पत्र जारी करके उसे सूचित किया कि कार्यालय में रखे पी॰ एस॰ 3 और पी॰ एस॰ 4 फार्म के साथ-साथ फार्म 'B' रजिस्टर में भी उल्लिखित उसकी जन्मतिथि 1.11.1941 थी, इस तथ्य की दृष्टि में जन्मतिथि में सुधार हेतु की गयी उसकी प्रार्थना को संबंधित प्राधिकारी ने नामंजूर कर दिया है। तत्पश्चात्, दिनांक 8/9.2.2002 के परिशिष्ट-7 को जारी करके याची को सूचित किया गया था कि दिनांक 18.12.2001 को उसके अभ्यावेदन का परीक्षण किया गया था और पाया गया था कि उसके मामले में गुणागुण नहीं था।

6. याची कथन करता है कि उसने दिनांक 7.2.2002 तक अपनी नियमित कर्तव्य का पालन किया था और दिनांक 8.2.2002 को और से ही उसे काम करने से रोक दिया गया लेकिन नवम्बर, 2001 से 7.2.2002 तक की अवधि के लिए जिसके दौरान वह कार्यरत था, उसे कोई वेतन, भत्ता आदि नहीं दिया गया था। याची की ओर से प्रतिवाद किया गया है कि उसकी जन्मतिथि 1.11.1941 दर्ज करने हेतु प्रत्यर्थीगण के समक्ष कोई सामग्री नहीं थी। वस्तुत: मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र के मुताबिक उसकी जन्मतिथि 21.8.1942 थी। आगे यह प्रतिवाद किया गया है कि प्रत्यर्थीगण की सेवा में आने से पहले याची वर्ष 1959 में मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका था और उसका मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र निश्चित पूर्वक स्थापित करता है कि उसकी जन्मतिथि 21.8.1942 है, अत: जब बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से उसका प्रमाण पत्र प्रत्यर्थीगण ने सत्यापित करवा लिया था, तब पूरी निष्पक्षता से उसके सर्विस शीट में उसकी जन्मतिथि दर्ज कर लेना चाहिए था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि आक्षेपित परिशिष्ट-6 और 7, जिसके द्वारा याची को सूचित किया गया था कि उसके अभ्यावेदन और जन्मतिथि में सुधार हेतु उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है, में इस अस्वीकृति का कोई कारण नहीं बताया गया है और पारित आदेश सकारण आदेश नहीं है।

7. प्रत्यर्थीगण की ओर से एक प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि कम्पनी के अभिलेख में प्रविष्टि के मुताबिक याची की जन्मतिथि 1.11.1941 दर्ज की गयी थी,

तद्नुसार दिनांक 31.10.2001 को याची सेवानिवृत्त हो गया है। अपने सेवानिवृत्ति के बाद, वह वेतन का बकाया, उपदान, आदि सहित समस्त सेवानिवृत्ति लाभों को प्राप्त कर चुका है। प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रति शपथ पत्र में कथन किया गया है कि याची का हस्ताक्षर अंतर्विष्ट करते सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा रखे गए फार्म 'बी' रजिस्टर और साथ-साथ पी॰ एस॰ 1, पी॰ एस॰ 3 और पी॰ एस॰ 4 फार्म दर्शाते है कि उन अभिलेखों में याची की जन्मतिथि 1.11.1941 प्रविष्ट की गयी थी और इस कारण, इन तथ्यों की दृष्टि में, जन्मतिथि में सुधार हेतु याची का दावा ग्रहण योग्य नहीं था और इसलिए इसे अस्वीकार कर दिया गया है। याची के मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र के बारे में, प्रत्यर्थीगण द्वारा अपने प्रति शपथ पत्र में यह कथन किया गया है कि उक्त प्रमाण पत्र न तो याची की नियुक्ति कि तिथि से पहले जारी किया गया था और न ही नियोजन के समय अथवा इसके तुरंत बाद इसे प्रत्यर्थी-कम्पनी के ध्यान में लाया गया था और इसलिए उक्त आधार पर उसकी जन्मतिथि 21.8.1942 नहीं मानी जा सकती है क्योंकि यदि याची की जन्मतिथि स्वीकार की जाती है, तब उस स्थिति में वह उस तिथि पर, जब वह सी॰ सी॰ एल॰ के नियोजन में आया अर्थात् 25.11.1959 को, 18 वर्ष से कम आयु का होगा। कम्पनी के अभिलेखों के मुताबिक नियुक्ति की तिथि को याची वयस्क था और इस कारण कम्पनी के प्रासंगिक अभिलेखों में उसकी जन्मतिथि सही दर्ज की गयी थी। यह दर्शाने के लिए कि याची की जन्मतिथि 1.11.1941 दर्ज की गयी थी और प्रति शपथ पत्र में दिए गए बयानों के समर्थन में सर्विस शीट, मेनियल सर्विस रजिस्टर, फार्म पी॰ एस॰ 1, पी॰ एस॰ 3 और पी॰ एस॰ 4 की प्रतियाँ उपाबद्ध की गयी है।

8. यह विवाद में नहीं है कि उसकी जन्मतिथि 1.11.1941 दर्शाते हुए दिनांक 29.7.1987 को सर्विस शीट अर्थात् परिशिष्ट-1 याची को भेजा गया था। मैं पाता हूँ कि परिशिष्ट-1 अर्थात् सर्विस शीट के पृष्ठ भाग पर याची ने पृष्ठांकन किया था कि उसकी जन्मतिथि गलत दर्ज की गयी थी जिसे सुधारा जाना चाहिए। स्वयं उसी तिथि अर्थात् दिनांक 29.7.1987 को जिस तिथि को याची को सर्विस शीट भेजा गया था, उक्त पृष्ठांकन किया गया था, अत: यह प्रतीत होता है कि अपनी जन्मतिथि गलत दर्ज किए जाने पर याची ने तुरंत आपत्ति की थी। मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र (परिशिष्ट-5) और मुख्य महाप्रबंधक, सी॰ सी॰ एल॰ के कार्यालय को बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड द्वारा भेजे गए दिनांक 29.9.2001 के पत्र (परिशिष्ट-4) से यह प्रकट है कि सत्यापन पर यह पाया गया था कि परीक्षा बोर्ड में रखे अभिलेखों के मुताबिक उसकी जन्मतिथि 21.8.1942 थी। यह भी प्रमाणित किया गया था कि 1959 की वार्षिक परीक्षा में वह तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था।

9. यह भी विवाद में नहीं है कि सी॰ सी॰ एल॰ में नियुक्त होने से पहले ही याची मैट्रिकुलेट हो चुका था। जहाँ तक फार्म पी॰ एस॰ 1, पी॰ एस॰ 3 और पी॰ एस॰ 4 जिन पर यह दर्शाने के लिए कि याची की जन्मतिथि 1.11.1941 दर्ज की गयी थी, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने बहुत विश्वास किया है, का संबंध है, मैं पाता हूँ कि ये फार्म वर्ष 1998 में भरे गए थे अर्थात् अपनी जन्मतिथि गलत दर्ज किए जाने पर याची द्वारा उठायी गयी आपत्ति के काफी समय बाद। पूर्वोक्त तीनों फार्म अर्थात् पी॰ एस॰ 1, पी॰ एस॰ 3 और पी॰ एस॰ 4 से पता चलता है कि उन अभिलेखों में दर्ज याची की जन्मतिथि में काट पीट और लिप्त लेखन किया गया है। अत: उन फार्म अर्थात् पी॰ एस॰ 1, पी॰ एस॰ 3 और पी॰ एस॰ 4 में दर्ज जन्मतिथि विश्वास उत्पन्न नहीं करता है। किसी व्यक्ति की जन्मतिथि

दर्ज करने हेतु मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र सर्वाधिक अधिप्रमाणित दस्तावेज है, अत: प्रत्यर्थी-कम्पनी के अभिलेखों में की गयी प्रविष्टियों, जिनके बारे में संदेह उत्पन्न होता है, पर विश्वास करने के स्थान पर जन्मतिथि के बारे में मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में की गयी प्रविष्टि को मैं स्वीकार करने के पक्ष में हूँ।

10. खंडपीठ सहित इस न्यायालय के अनेक निर्णय हैं जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जन्मतिथि स्थापित करने के लिए मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र निश्चयात्मक प्रमाण है। इस संबंध में, **मैनेजमेन्ट ऑफ हेवी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन लि॰, राँची बनाम श्रीमती सरिता नारायण एवं अन्य, 2003 (4) JCR 602 (D.B.)** में प्रकाशित; **रामजनम राम बनाम मेसर्स भारत कोकिंग कोल लि॰, धनबाद एवं अन्य, 2002 (2) JCR 48** में प्रकाशित; **मेसर्स भारत कोकिंग कोल लि॰ बनाम द्वारिका दुसाध उर्फ द्वारिका राम, 2006 (1) JCR 297** में प्रकाशित; और **श्रीमती सरिता नारायण बनाम एच॰ इ॰ सी॰, अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक मुख्यालय के माध्यम से एवं अन्य, 2003(2) JCR 663** में प्रकाशित मामलों में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

11. उक्त कथित तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद मेरा दृष्टिकोण है कि याची की जन्मतिथि 21.8.1942 है और इसे सर्विस शीट तथा कम्पनी के अन्य प्रासंगिक अभिलेखों में 1.11.1941 गलत दर्ज किया गया है और उसे दिनांक 31.10.2001 से समयपूर्व सेवानिवृत्त किया जाना गलत है। वस्तुत: वह दिनांक 31.8.2002 तक सेवा में बने रहने का हकदार है, उस तिथि जिस को वह 60 वर्ष की आयु पूरी करने पर अधिवर्षित हुआ होता।

12. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और जन्मतिथि के सुधार हेतु याची के अभ्यावेदन को अस्वीकृत करता परिशिष्ट-6 और 7 में अंतर्विष्ट आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है और 1.11.1941 के स्थान पर 21.8.1942 के तौर पर उसके सर्विस रिकार्ड में याची की जन्मतिथि के संबंध में आवश्यक सुधार करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है। चूंकि दिनांक 31.8.2002 को ही याची अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर चुका है, अत: उसे सेवा में वापस लिए जाने का प्रश्न नहीं उत्पन्न होता है। लेकिन चूँकि उसे समयपूर्व सेवानिवृत्त कर दिया गया था, अत: उसे दिनांक 31.8.2002 तक सेवारत मानते हुए उसे समस्त पारिणामिक भुगतान करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है। आज से आठ सप्ताह के भीतर पारिणामिक आदेश पारित करने का निर्देश प्रत्यर्थी-सी॰ सी॰ एल॰ को दिया जाता है। चूँकि याची को समयपूर्व सेवानिवृत्त होने के लिए मजबूर किया गया था और प्रत्यर्थीगण द्वारा मुकदमाबाजी करने हेतु मजबूर किया गया था, अत: पूर्वोक्त अवधि के भीतर याची को 5000/- रुपये भुगतान करने के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

झारखंड राज्य, सूचना प्रौद्योगिकी विभाग एवं अन्य

बनाम

मेसर्स राइट्स लि॰

C.M.P. No. 264 of 2008. Decided on 22nd December, 2009.

माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996—धाराएँ 12 एवं 13 सह-पठित सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 151—मध्यस्थ का परिवर्तन—केवल इस आधार पर ही नहीं कि मध्यस्थ के पास तकनीकी अर्हता नहीं है बल्कि उसकी सत्यनिष्ठा पर लांछन और संदेह के आधार पर भी मध्यस्थ की तब्दीली और/अथवा मध्यस्थ के प्राधिकार के प्रतिसंहरण हेतु प्रार्थना की गयी

है–प्रत्यर्थी राज्य को धारा 12 और 13 के अधीन नियमित याचिका दाखिल करनी होगी–सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 151 के अधीन याचिका दाखिल कर ऐसी प्रार्थना नहीं की जा सकती है–मध्यस्थ के प्राधिकार के प्रतिसंहरण हेतु अथवा मध्यस्थ की तब्दीली हेतु सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 151 के अधीन दाखिल वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है। (पैरा 4, 6, 8 और 9)

निर्णयज विधि.–(2002) 2 SCC 388—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Prasad, For the Petitioners; Mr. Binod Poddar, For the Respondent.

आदेश

आवेदक-राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद और प्रत्यर्थी (ए॰ ए॰ सं॰ 41 वर्ष 2007 में याची) की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री बिनोद पोद्दार को सुना।

2. माध्यस्थम याचिका सं॰ 41 वर्ष 2007 में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 26.7.2008 को पारित आदेश द्वारा नियुक्त माध्यस्थ की तब्दीली के लिए प्रार्थना करते हुए तात्पर्यित रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन आवेदक द्वारा वर्तमान याचिका दाखिल की गयी है। पक्षों के बीच उद्भूत विवाद पर न्यायनिर्णयन हेतु पक्षों की सहमति से इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश, न्यायमूर्ति एस॰ रॉय को मध्यस्थ के तौर पर उक्त आदेश द्वारा नियुक्त किया गया था। आवेदक-राज्य का प्रतिवाद यह है कि माध्यस्थम याचिका में तर्क के दौरान, दो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों अर्थात् न्यायमूर्ति एस॰ रॉय और न्यायमूर्ति एस॰ के॰ चट्टोपाध्याय के नाम सुझाए गए थे। दुर्भाग्यवश, प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता के पास प्रत्यर्थी-राज्य और संबंधित विभाग से परामर्श करने का समय नहीं था और संबंधित विभाग से परामर्श किए बिना राज्य के अधिवक्ता ने न्यायमूर्ति एस॰ रॉय, इस न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश, को मध्यस्थ के तौर पर नियुक्ति के लिए सहमति दे दी। आवेदक के अनुसार न्यायमूर्ति एस॰ रॉय की नियुक्ति पक्षों की सहमति से नहीं हुई है। आवेदक-राज्य ने पूरक शपथपत्र में आगे प्रतिवाद किया कि विवाद के काफी तकनीकी होने के नाते केवल तकनीकी व्यक्ति को नियुक्त किया जाना चाहिए। आवेदक के अनुसार तकनीकी व्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसे अधिक तकनीकी मामले का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया जा सकता है। मध्यस्थ के विरुद्ध अनेक अन्य अभिकथन और आरोप लगाये गए हैं।

3. याची ने प्रतिशपथ पत्र दाखिल कर याचिका का प्रतिवाद किया जिसमें अन्य बातों के साथ कथन किया गया कि ऐसी याचिका पोषणीय नहीं है। यह प्रतिवाद किया गया है कि जब एक बार पक्ष मध्यस्थ की नियुक्ति पर सहमत हो गए थे, कुछ बेबुनियाद आशंकाओं के आधार पर वे इसे चुनौती नहीं दे सकते हैं। आवेदक झारखंड राज्य ने मध्यस्थ के नाम पर सम्यक् रूप से सहमति दी थी और इसलिए अब वे ऐसा नहीं कह सकते हैं कि उन्होंने उक्त नाम पर अपनी सहमति नहीं दी थी। पुनः मध्यस्थ के तौर पर किसी तकनीकी विशेषज्ञ को नियुक्त करने के लिए उस संविदा में कोई शर्त नहीं थी।

4. राज्य द्वारा तात्पर्यित रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन दाखिल की गयी याचिका के परिशीलन से पता चलता है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ इस आधार पर कि उसके स्थान पर किसी तकनीकी विशेषज्ञ को नियुक्त किया जाए मध्यस्थ की तब्दीली हेतु सरल प्रार्थना की गयी है। इसके विपरीत याचिका में आरोपित और कलंकित करने वाले बयान दिए गए हैं। याचिका के पैरा 6 में राज्य द्वारा यह अभिकथन किया गया है कि **मेसर्स वेबेल टेक्नोलॉजी बनाम झारखंड राज्य**

आई॰ टी॰ विभाग के माध्यम से, के बीच माध्यस्थम से संबंधित मामले में न्यायमूर्ति एस॰ रॉय (सेवानिवृत्त) एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किए गए थे जिसमें सुनवाई की समाप्ति के बाद उन्होंने अधिनिर्णय तैयार करने और निर्णय लिखने के लिए दोनों पक्षों में से प्रत्येक को 64,000/- रुपया जमा करने को कहा था जिसके लिए झारखंड राज्य सहमत नहीं हुआ। लेकिन दूसरे पक्ष ने राज्य सरकार के अंश समेत 1,28,000/- रुपये की पूरी राशि का भुगतान किया। आगे अभिकथन किया गया है कि उक्त मामले में एकमात्र मध्यस्थ ने विभाग के प्रतिदावे और बचाव पर विचार नहीं किया था और अधिनिर्णय दिया जो अधीनस्थ न्यायाधीश, राँची के समक्ष विविध केस में चुनौती के अधीन है। पूरक शपथ पत्र में और भी अभिकथन किए गए हैं कि इस याचिका के लम्बित रहने के दौरान, इस तरह नियुक्त एकमात्र मध्यस्थ न्यायमूर्ति एस॰ रॉय ने माध्यस्थम कार्यवाही प्रारंभ की और दो बैठकें हुई, इस तथ्य के बावजूद कि इस याचिका का लम्बित रहने की बात एक मात्र मध्यस्थ के ध्यान में लाया गया था जिन्होंने अभिनिर्धारित किया कि चूँकि मामले को स्थगित नहीं किया गया है, वह माध्यस्थम कार्यवाही जारी रखेंगे।

5. पूर्वोक्त आधारों पर जहाँ मध्यस्थ पर लांछन लगाते हुए आवेदक-राज्य द्वारा मध्यस्थ की तब्दीली के लिए प्रार्थना की गयी है, विचारार्थ प्रश्न ये है कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन यह याचिका पोषणीय है।

6. स्वीकृत तौर पर, संविदा माध्यस्थम खंड अंतर्विष्ट करती है और मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया और मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने की प्रक्रिया माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 में विहित की गयी है। माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 12 का पठन निम्नलिखित है:–

> *''12. **चुनौती के आधार.**-(1) जब किसी व्यक्ति से माध्यस्थ के तौर पर उसकी संभावित नियुक्ति के बारे में पूछा जाता है, तो उसे उसकी स्वतंत्रता अथवा निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेह उत्पन्न करने वाली संभाव्य परिस्थितियों के बारे में लिखित रूप से प्रकट करना चाहिए।*
>
> *(2) मध्यस्थ को, उसकी नियुक्ति के समय से और माध्यस्थम कार्यवाही के शुरू होने से अंत तक बिना विलम्ब के उपधारा (1) में निर्दिष्ट किन्हीं परिस्थितियों के बारे में लिखित रूप से पक्षों को प्रकट करना होगा यदि उन्हें पहले ही उसके द्वारा सूचना न दे दी गयी हो।*
>
> *(3) मध्यस्थ को चुनौती तभी दी जा सकती है यदि-*
>
> *(a) उसकी स्वतंत्रता अथवा निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेह उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ अस्तित्व में हैं, अथवा*
>
> *(b) उसके पास पक्षों द्वारा सहमत अर्हताएँ नहीं है।*
>
> *(4) एक पक्ष उसके द्वारा नियुक्त मध्यस्थ अथवा जिसकी नियुक्ति में उसने भाग लिया है को उन्हीं कारणों से चुनौती दे सकता है जिसकी जानकारी उसे तब हुई जब नियुक्ति की जा चुकी थी।''*

7. पूर्वोक्त प्रावधान के परिशीलन से, प्रकटत: स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 13 (4) के प्रावधान के अधीन मध्यस्थ को चुनौती देने के लिए प्रक्रिया पर सहमत होने के लिए पक्षकारगण स्वतंत्र हैं। अधिनियम की धाराएँ 12, 13 और 16 द्वारा विकसित योजना माध्यस्थम अधिनियम, 1940 में अंतर्विष्ट प्रावधान से पूर्णत: भिन्न हैं।

8. वर्तमान मामले में, चूँकि केवल इस आधार पर ही नहीं कि मध्यस्थ के पास तकनीकी अर्हता नहीं है बल्कि उनकी सत्यनिष्ठा पर लांछन और संदेह के आधार पर भी मध्यस्थ की तब्दीली और/अथवा मध्यस्थ के प्राधिकार के प्रतिसंहरण हेतु प्रार्थना की गयी है, प्रत्यर्थी-राज्य को अधिनियम की धारा 12 और 13 के अधीन नियमित याचिका देनी होगी। मेरी दृष्टि में, धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन याचिका दाखिल करके ऐसी प्रार्थना नहीं की जा सकती है। इस संबंध में, **कोंकण रेलवे निगम लि॰ बनाम रानी कंस्ट्रक्शन प्रा॰ लि॰, (2002)2 SCC 388** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है जिसके पैरा 20 में माननीय न्यायाधीशों ने संप्रेक्षित किया:-

> *"20. संभव है कि यद्यपि मुख्य न्यायाधीश अथवा उसके अभिहित व्यक्ति ने स्वतंत्र और निष्पक्ष मध्यस्थ नामित करने में सारी सावधानियाँ बरती हों, किसी दिए गए मामले में किसी पक्ष को मध्यस्थ की स्वतंत्रता अथवा निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेह हो सकता है। वैसी स्थिति में, धारा 13 के अधीन प्रक्रिया अपनाते हुए, धारा 12 के अधीन नामित मध्यस्थ को चुनौती देने के लिए उस पक्ष को छूट होगी। यह निष्कर्षित करने का कोई कारण नहीं है कि सिर्फ इसलिए कि धारा 11 के अधीन मुख्य न्यायाधीश अथवा उसके अभिहित व्यक्ति द्वारा मध्यस्थ नामित किया गया है, धारा 13 के अधीन चुनौती देने के लिए आधार उपलब्ध नहीं है।''*

9. पूर्वोक्त कारणों से, मध्यस्थ के प्राधिकार के प्रतिसंहरण के लिए अथवा मध्यस्थ की तब्दीली के लिए धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है जिसे, तद्नुसार, अस्वीकृत किया जाता है। लेकिन, विधिसम्मत उपयुक्त याचिका दाखिल करने की स्वतंत्रता प्रत्यर्थी-राज्य को दी जाती है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

अरशद आलम

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(C) No. 3600 of 2008. Decided on 18th December, 2009.

सरकारी संविदा-अनुज्ञप्ति-रद्दकरण-अनुज्ञप्ति की शर्तों के उल्लंघन के आधार पर हॉकर के तौर पर किरासन बेचने की अनुज्ञप्ति रद्द कर दी गयी-कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने अनुज्ञप्ति के स्थान पर किरासन बेचा नहीं था अथवा वितरित नहीं किया था-नगर क्षेत्र से बाहर जाकर ग्रामीण क्षेत्रों में किसी स्थान विशेष पर किरासन तेल बेचने के लिए प्रत्यर्थीगण याची को मजबूर नहीं कर सकते-प्रत्यर्थीगण का निर्देश विधायिका के आशय और नियंत्रण आदेश का उल्लंघन होगा-अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश मान्य नहीं है-आक्षेपित आदेश अभिखंडित-याचिका अनुज्ञात। (पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.-WP(C) 2640 of 2007—Applied.

अधिवक्तागण.-M/s Abhay Kumar Mishra, P.K. Verma, For the Petitioner/Appellant; Mr. Moti Gope, For the Ppposite Parties/Respondents.

आदेश

याची और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याची द्वारा उस आदेश के अभिखंडन हेतु प्रार्थना करते हुए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अनुज्ञापन प्राधिकारी/अनुमंडल अधिकारी, गोड्डा ने किरासन तेल बेचने के लिए याची को दी गयी अनुज्ञप्ति रद्द कर दी थी। दिनांक 26.3.2007 के आदेश (परिशिष्ट-4) के अभिखंडन हेतु भी प्रार्थना की गयी है जिसके द्वारा याची की अनुज्ञप्ति रद्द करने वाले अनुज्ञापन प्राधिकारी के पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी पुनरीक्षण याचिका पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा खारिज कर दी गयी है।

3. संक्षेप में याची का मामला यह है कि गोड्डा नगर क्षेत्र में फेरीवाले की तरह किरासन तेल बेचने हेतु याची को अनुज्ञप्ति दी गयी थी। प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने याची को ग्रामीण क्षेत्र में तेल बेचने का निर्देश दिया और जब याची ने अनुपालन नहीं किया, दिनांक 17.2.2006 को याची को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और याची ने उक्त कारण बताओ का उत्तर दिया। अंतत: इस आधार पर कि याची ने उसको दी गयी अनुज्ञप्ति के आदेश और शर्तों का उल्लंघन किया है, अनुज्ञप्ति रद्द कर दी गयी।

4. प्रत्यर्थीगण 3 से 6 ने प्रति शपथपत्र दाखिल किया है जिसमें कथन किया गया है कि याची और अन्य किरासन तेल वितरक/फेरीवाले अनुज्ञप्ति की शर्तों का उल्लंघन कर रहे थे। आगे अभिकथन किया गया था कि अनुमंडल अधिकारी, गोड्डा द्वारा नामित नियत स्थान पर गोड्डा हाट में याची उपस्थित नहीं हुआ और परिणामस्वरुप याची की अनुज्ञप्ति रद्द कर दी गयी।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि अनुज्ञप्ति (रिट याचिका का परिशिष्ट-1) के अनुसार, गोड्डा शहर में फेरीवाले के तौर पर किरासन तेल बेचने के लिए याची को अनुज्ञप्ति दी गयी थी। प्रत्यर्थीगण के निर्देशानुसार नगर क्षेत्र में फेरीवाले के तौर पर नियमित रूप से वह किरासन तेल बेच रहा था। आगे यह प्रतिवाद किया गया था कि कार्यपालक आदेश कि नगर क्षेत्र के फेरीवाले हाट क्षेत्रों में किरासन तेल बेचेंगे, अनुज्ञप्ति के शर्तों का उल्लंघन होगा। आगे यह प्रतिवाद किया गया था कि याची को दी गयी अनुज्ञप्ति के शर्तों और निबंधनों के साथ-साथ विधि के प्रावधानों को विचार में लिए बिना आक्षेपित आदेश पारित करते हुए अनुज्ञप्ति प्राधिकारी और साथ-साथ पुनरीक्षण प्राधिकारी ने अधिकारिता के बिना गैर-कानूनी कार्रवाई की है और इस प्रकार प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में मान्य नहीं है और अभिखंडित किए जाने योग्य है।

6. अनुज्ञप्ति के परिशीलन से प्रकट है कि याची को फेरीवाले की तरह नगर क्षेत्र में किरासन तेल बेचना था और यह भी प्रतिवाद किया गया है कि उसे अनुज्ञप्ति के खंड 2(a) के अनुसार फेरीवाले के तौर पर किरासन तेल वितरित करने के लिए अनुज्ञप्ति दी गयी है।

7. अनुज्ञप्ति (परिशिष्ट-1) का खंड 2(a) स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि अनुज्ञप्ति का स्थान गोड्डा का नगर क्षेत्र है। कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने नगर क्षेत्र में किरासन बेचा नहीं था अथवा वितरित नहीं किया था। नगर क्षेत्र से बाहर जाकर ग्रामीण क्षेत्रों में एक स्थान विशेष पर किरासन तेल बेचने के लिए प्रत्यर्थीगण याची को मजबूर नहीं कर सकते हैं। प्रत्यर्थीगण का निर्देश विधायिका का आशय और नियंत्रण आदेश का उल्लंघनकारी होगा। अपने प्रति शपथपत्र में प्रत्यर्थीगण ने स्वीकार किया है कि याची नगर क्षेत्र में किरासन तेल बेच रहा था। विधि के प्रवर्तन द्वारा अनुज्ञप्ति के स्थान में परिवर्तन से संबंधित किसी नियम अथवा विधि के प्रावधान को इस न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता प्रदर्शित नहीं कर सके। इस प्रकार अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश विधि में मान्य नहीं

है। इसी प्रकार अन्य किरासन तेल फेरीवाले, जिन्होंने **डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) 2640 वर्ष 2007** में इस न्यायालय की शरण ली थी, से संबंधित विवाद के संबंध में, इस न्यायालय ने अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा पारित समरुप आदेश को अभिखंडित कर दिया है। उक्त निर्णय से यह मामला भी पूरी तरह शासित होता है। मामले की इस दृष्टि में, यह रिट याचिका अनुज्ञात किए जाने योग्य है।

8. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट 2 और 4) एतद् द्वारा अभिखंडित किए जाते हैं। व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

वर्ल्ड बुद्ध फाउन्डेशन, सेन्ट्रल एकेडमी एवं अन्य

बनाम

डिप्टी लेबर कमिश्नर, राँची एवं अन्य

Writ Petition (Labour) No. 3525 of 2001. Decided on 18th December, 2009.

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948—धारा 29(2)—मजदूरी के अंतर के भुगतान का निर्देश—संबंधित प्राधिकारी द्वारा याचिका दायर करने में विलम्ब माफ किया गया था—धार्मिक संस्थानों में रोजगार अनुसूचित नियोजन के क्षेत्र के अधीन आता है—आक्षेपित आदेश पारित करते समय सहायक श्रम कमिश्नर ने प्रत्येक कर्मकार के दावे पर विस्तारपूर्वक चर्चा और विचार किया और तब सामग्रियों पर विचार करते हुए तथ्य के इन निष्कर्षों पर आए कि याची ने सरकार द्वारा तय न्यूनतम मजदूरी का भुगतान मजदूरों को नहीं किया था—रिट अधिकारिता के अन्तर्गत हस्तक्षेप हेतु कोई मामला नहीं बनता है—याचिका खारिज। (पैरा 7 से 12)

अधिवक्तागण.—Mr. S. N. Das, For the Petitioners; J.C. to G.P. - II, For the State.

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.—पक्षों को सुना गया।

2. इस रिट याचिका में याचीगण ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 20(2) के अधीन एम॰ डब्ल्यू॰ केस सं॰ 37/1996 से एम॰ डब्ल्यू॰ केस सं॰ 46/1996 तक दाखिल दस मामलों में सहायक श्रम कमिश्नर, राँची, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन एक प्राधिकारी, द्वारा दिनांक 18.11.1999 को पारित आदेश, जिसके द्वारा याची सं॰ 1 के अधीन कार्यरत 24 कर्मकारों के लिए दिनांक 19.7.1993 से 31.12.1995 तक की अवधि के लिए न्यूनतम मजदूरी के अंतर के तौर पर 3,81,176/- रुपयों की राशि का भुगतान करने का निर्देश याचीगण को दिया था, को अभिपुष्ट करते हुए न्यूनतम मजदूरी अपील सं॰ 7/99 में उप श्रम कमिश्नर द्वारा दिनांक 11.5.2001 को पारित आदेश के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है।

3. संक्षेप में तथ्य ये हैं कि श्रम अधीक्षक, राँची ने दिनांक 19.7.1993 से 31.12.1996 तक की अवधि के लिए भुगतान योग्य मजदूरी के अंतर के भुगतान हेतु 24 कर्मकारों की ओर से न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 20(2) के अधीन याचिकाओं को दाखिल किया था। ये मामलें एम॰ डब्ल्यू॰ केस सं॰ 37/1996 से 46/1996 के तौर पर दर्ज किए गए थे। नोटिस पाने पर, याचीगण उपस्थित हुए और अभिकथनों एवं पूर्वोक्त दावा मामलों के अधीन दावा की गयी राशि के भुगतान की जिम्मेदारी से इन्कार करते हुए कारण बताओ दाखिल किया।

4. याचीगण ने परिसीमा का अभिवाक् भी उठाया और कथन किया कि दावा याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित था और पुन: यह कि याची सं॰ 1 के अधीन रोजगार अनुसूचित नियोजन के क्षेत्र में नहीं आता है और इसलिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 20 के अधीन दावा का विनिश्चय करने की अधिकारिता संबंधित प्राधिकारी को नहीं है।

5. 24 कर्मकारों को भुगतान योग्य मजदूरी के अंतर के तौर पर 3,81,176/- रुपये की कुल राशि जमा करने का निर्देश याचीगण को देते हुए सहायक श्रम कमिश्नर ने दिनांक 18.11.1999 को अपने आदेश द्वारा समस्त दावा मामलों को अनुज्ञात किया था। याचीगण ने तत्पश्चात् डिप्टी लेबर कमिश्नर, राँची अर्थात् न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 20(6) के अधीन अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल किया था जिसे एम॰ डब्ल्यू॰ अपील सं॰ 7/1999 के तौर पर दर्ज किया गया था। अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 11.5.2001 के आदेश, इस रिट याचिका के परिशिष्ट-1 में अंतर्विष्ट, द्वारा सहायक श्रम कमिश्नर द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट करते हुए अपील को खारिज कर दिया जिसे इस रिट याचिका में याची द्वारा चुनौती दी गयी है।

6. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री एस॰ एन॰ दास ने निवेदन किया कि याची द्वारा उठाए गए परिसीमा के बिन्दु कि 24 कर्मकारों की ओर से दाखिल दावा याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित थी, पर न तो सहायक श्रम कमिश्नर और न ही अपीलीय प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया था और इसलिए आक्षेपित आदेश मान्य नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यद्यपि याची ने विनिर्दिष्टत: आपत्ति उठायी है कि कुछ कर्मकार, जिनके लिए दावा याचिका दाखिल की गयी थी, ने याची सं॰ 1 के लिए कभी काम नहीं किया है और उनमें से कुछ ने आंशिक समय के लिए काम किया था लेकिन न तो सहायक श्रम कमिश्नर और न ही अपीलीय प्राधिकारी ने संबंधित कर्मकारों के व्यक्तिगत मामलों का परीक्षण किया था। अत: केवल इस आधार पर ही आक्षेपित आदेश विधि में दोषपूर्ण है।

श्री दास ने अंत में निवेदन किया कि याची द्वारा दिया गया रोजगार अनुसूचित नियोजन के क्षेत्र के अधीन नहीं आता है और इस कारण दावा याचिकाएँ पोषणीय नहीं है।

7. जहाँ तक परिसीमा बिन्दु का संबंध है, आक्षेपित आदेश से यह प्रकट है कि विलम्ब की माफी के लिए याचिका दाखिल की गयी थी और संबंधित प्राधिकारी ने याचिका दायर करने में हुए विलम्ब को माफ भी कर दिया था, अत: याची के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में कोई गुणागुण नहीं है कि दावा समय द्वारा वर्जित था।

जहाँ तक इस बिन्दु कि याची के अधीन रोजगार अनुसूचित नियोजन के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता है, का संबंध है, मेरी दृष्टि में यह बिन्दु भी खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि इसमें भी कोई गुणागुण नहीं है, इस तथ्य की दृष्टि में कि बिहार सरकार द्वारा जोड़ा गया अनुसूचित आइटम सं॰ 48 स्पष्ट कथन करता है कि अनुसूचित नियोजन के पुनर्विलोकन के अधीन धार्मिक संस्थान आते हैं। याची सं॰ 1 द्वारा यह दावा किया गया है कि यह एक धार्मिक संस्थान है एवं, इसलिए, इस संबंध में याची द्वारा दिए गए तर्क में कोई गुणागुण नहीं है।

8. जहाँ तक इस बिन्दु का संबंध है कि संबंधित प्राधिकारी ने कर्मकारों के व्यक्तिगत दावे का परीक्षण और संवीक्षण नहीं किया है, मैं परिशिष्ट-1/A अर्थात् सहायक श्रम कमिश्नर द्वारा पारित आदेश से पाता हूँ कि उसने प्रत्येक कर्मकार के दावे पर विस्तारपूर्वक चर्चा और विचार किया है और तब सामग्रियों पर विचार करके तथ्य के इन निष्कर्षों पर पहुँचा है कि याची ने सरकार द्वारा तय न्यूनतम मजदूरी संबंधित मजदूरों को नहीं दिया है।

9. परिशिष्ट–1 में अंतर्विष्ट अपीलीय प्राधिकारी के आदेश से यह भी प्रकट है कि उसने भी प्रत्येक मजदूर के दावे पर विचार किया है और अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों पर विचार करके यह अभिनिर्धारित करते हुए कि हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है, सहायक श्रम कमिश्नर द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट किया है।

10. आक्षेपित आदेशों से यह प्रकट होगा कि कर्मकारों अर्थात् महेन्द्र महतो, श्रीमती शोभन देवी, सलमी कुमारी, श्रीमती बैसो देवी, जदबे टोप्पो, मेघनाथ महतो, मोहन लाल महतो और श्रीमती मधु देवी के साक्ष्य लिए गए थे और उनका प्रति परीक्षण भी किया गया था। सेन्ट्रल एकेडमी बर्ल्ड फाउंडेशन, बरियातू, राँची के प्रिंसिपल का भी बतौर गवाही सहायक श्रम कमिश्नर के समक्ष परीक्षण किया गया था और अपने साक्ष्य में प्रिंसिपल ने कथन किया कि श्री रवि कुमार प्रामाणिक, कृष्ण चंद्र पोद्दार, तुलसी मुंडा, सुखदेव मुंडा, सनीचरवा मुंडा, किनुलाल महतो और विजय मुंडा ने उस अवधि, जिसके लिए दावा याचिका दाखिल की गयी थी, के दौरान काम किया था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत कर्मकारों के दावों पर विचार किया गया था और आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

11. यहाँ इसमें ऊपर कथित कारणों से रिट अधिकारिता में इस न्यायालय के हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है। दोनों प्राधिकारियों अर्थात् सहायक श्रम कमिश्नर और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से भिन्नता रखने का कोई कारण प्रकट नहीं है।

12. तद्नुसार कोई गुणागुण नहीं पाने पर यह रिट याचिका खारिज की जाती है किन्तु बिना किसी व्यय के चार सप्ताह के भीतर अवर न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों को क्रियान्वित करने का निर्देश याचीगण को दिया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

अर्जुन टोप्पो

बनाम

झारखण्ड राज्य

Criminal Appeal No. 119 of 2009. Decided on 19th November, 2009.

एस॰ टी॰ सं॰ 520 वर्ष 2006 में अपर न्यायिक आयुक्त, फास्ट-ट्रैंक न्यायालय रांची-X, द्वारा पारित दिनांक 4.2.2009 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं 5.2.2009 के दण्डादेश के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग–अभिनिर्धारित, मामले के तथ्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपीलार्थी एवं सूचनादाता के बीच प्रेम थी और अपीलार्थी ने जब किसी न किसी कारण से सूचनादाता से विवाह करने से इन्कार कर दिया, उसने मामला दर्ज कराया, प्रथमतः यह अभिकथित करते हुए कि उसकी सहमति विवाह के प्रलोभन पर ली गई थी और द्वितीयतः धमकी देने पर–चौंकाने वाला तथ्य यह कि अपीलार्थी के इन्कार के उपरांत भी सूचनादाता ने अपनी निकटता बनाए रखा–यह स्पष्ट है कि सूचनादाता ने अपीलार्थी के साथ अपनी युवावस्था का आनन्द प्राप्त किया इस प्रकार कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति सूचनादाता की मनगढंत कहानी पर विश्वास नहीं कर सकता–दोषसिद्धि एवं दण्डादेश निरस्त। (पैरा 14 एवं 15)

अधिवक्तागण.–M/s Nilesh Kumar, Vijayant Verma, For the Appellant; Mr. Jamilur Rahman, For the Informant; Mr. V.S. Sahay, For the State.

निर्णय

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–जी॰ आर॰ केस सं॰ 3593 वर्ष 2005 के तत्सम कांके पुलिस थाना केस सं॰ 85 वर्ष 2005 से उद्भूत होने वाले एस॰ टी॰ सं॰ 502/2006 में अपर न्यायिक आयुक्त, फास्ट-ट्रैक न्यायालय-X, राँची द्वारा पारित दिनांक 4.2.2009 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं 5.2.2009 के दण्डादेश को अपास्त करने के लिए अपीलार्थी ने यह अपील दाखिल किया है। जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि की गई है और सात वर्ष के सश्रम कारावास और 500/- रुपए का एक जुर्माना चुकाने का दण्डादेश किया गया है और व्यतिक्रम में उसे 15 दिनों की एक अतिरिक्त अवधि का कारावास भुगतने का आदेश किया गया है।

2. अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि अरूणा बारा की एक लिखित रिपोर्ट के आधार पर 17.11.2005 को यह मामला संस्थित किया गया था जिसमें उसने कहा था कि वर्ष 1997 में जब वह इण्टरमीडिएट की छात्रा थी, अभियुक्त/अपीलार्थी और उसके बीच प्रेम हो गया था और विवाह के आश्वासन पर उसके साथ शारीरिक संबंध भी स्थापित किया गया था। यह मार्च 2005 तक चलता रहा जो एक काफी लम्बा समय था। तत्पश्चात्, जब उसने विवाह पर जोर दिया, अभियुक्त/अपीलार्थी ने उससे विवाह करने से इन्कार कर दिया। तत्पश्चात्, उसका रिश्तेदार भी उसके पास गया परन्तु उसने उन्हें भी इन्कार कर दिया। अन्तत: उसने इस अभिकथन पर यह मामला दाखिल किया कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने 1997 से मार्च, 2005 तक विवाह के झूठे आश्वासन पर उसका बलात्कार किया और अन्तत: उसके साथ विवाह करने से इनकार कर दिया।

3. अपने मामले को सिद्ध करने के लिए अभियोजन ने सात गवाहों की परीक्षा की है। उनमें से अ॰ सा॰ 1 अनीता गरी है, अ॰ सा॰ 2 शांती लकरा है, अ॰ सा॰ 3 कमला टिर्की है, अ॰ सा॰ 4 अरुण बारा (सूचनादाता) है, अ॰ सा॰ 5 शकुन्तला कच्छप है, अ॰ सा॰ 6 श्रीमती निर्मला बारा है, और अ॰ सा॰ 7 डॉ॰ बीना सिन्हा है और दो दस्तावेजों को प्रदर्शित किया गया था अर्थात् प्रदर्श-1 लिखित रिपोर्ट है और प्रदर्श-2 चिकित्सीय रिपोर्ट है।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री नीलेश कुमार निवेदन करते हैं कि सूचनादाता अ॰ सा॰ 4 का साक्ष्य अति महत्वपूर्ण है जो अभिकथित पीड़िता है। अपने साक्ष्य में उसने कहा है कि वर्ष 1997 में वह संजय गांधी मेमोरियल कॉलेज में इण्टरमीडिएट की छात्रा थी। उसने अभियुक्त/अपीलार्थी के साथ मित्रता कर ली थी और विवाह के प्रलोभन पर, अभियुक्त/अपीलार्थी ने उसके घर जाना प्रारम्भ कर दिया और उसके साथ शारीरिक संबंध भी स्थापित किया और 1997 से मार्च, 2005 तक चलता रहा। परन्तु अपनी प्रति-परीक्षा में उसने विनिदिष्ट रूप से कथन किया था कि उनके एक दूसरे के साथ गहरा प्रेम था और इस लगाव के कारण, वे एक दूसरे के घर आना-जाना किया करते थे और एक बार वे गेंगटोक/सिक्किम भी गए थे और वहाँ दो दिनों तक ठहरे थे जिसके बारे में उसने अपने माता-पिता तक को नहीं बताया था। अपने साक्ष्य में उसने स्वीकार किया है कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने उसके घर से 17.4.2002 को उसके साथ यौन-संबंध स्थापित किया और तत्पश्चात 11.5.2002 को अपने घर में। उसने अपने साक्ष्य के पैरा-22 में इस सीमा तक कथन किया है कि अभियुक्त/अपीलार्थी उसे संतुष्ट किए बिना ही छोड़ कर चला गया। उसने यह भी कहा है कि जब वह उसके घर जाया करती थी, वे सामान्यत: एक साथ खाने के उपरांत वहाँ 5-6 घंटे ठहरा करती थी।

5. सूचनादाता ने अपने कथन के पैरा-10 में साफ तौर पर कथन किया कि वह अभियुक्त/अपीलार्थी के साथ मित्रों और तत्पश्चात् उनके बीच एक गहरा प्रेम विकसित हुआ और वे एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते थे। उसने यह भी स्वीकार किया है कि इस लगाव के कारण, दोनों एक दूसरे के घर जाया करते थे परन्तु उसने अपने परिवार वालों को 2005 से पहले इसके बारे में नहीं बताया था।

6. अगली महत्वपूर्ण गवाह अ० सा० 6 सूचनादाता की माता है और उसने भी गवाही दी है कि सूचनादाता और अभियुक्त के बीच 1997 से प्रेम हो गया था और उनके बीच शारीरिक संबंध भी था। अपने साक्ष्य में उसने यह भी स्वीकार किया है कि सूचनादाता और अभियुक्त/अपीलार्थी कुछ दिनों के लिए गेंगटोक/सिक्किम भी गए थे और वे घर के बाहर भी साथ साथ रहा करते थे परन्तु उन्होंने सूचनादाता की माता अ० सा० 6 को इन तथ्यों के बारे में सूचित नहीं किया था। अपने साक्ष्य में उसने यह भी कहा है कि उसकी पुत्री ने उसे अपने प्रेम-प्रसंग के बारे में पहले सूचित नहीं किया था, गंगटोक/सिक्किम से लौटने के उपरांत ही उसने अपना माता को सूचित किया कि अपीलार्थी अर्जुन टोप्पो ने उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा था परन्तु अब उसने इन्कार कर दिया था। इसपर, अ० सा० 6 अन्य के साथ -साथ अपीलार्थी के पास गई परन्तु अन्ततः उसने सूचनादाता को विवाह करने से इन्कार कर दिया।

7. अ० सा० 2, सूचनादाता की मौसी ने भी कहा है कि सूचनादाता 1997 से एक दूसरे के प्रेम में थी और प्रायः एक-दूसरे के घर आया जाया करते थे। अपने साक्ष्य के पैरा-13 में उसने स्वीकार किया है कि वह और उसकी बहन अरूण बारा का विवाह अर्जुन टोप्पो के साथ तय कराना चाहते थे। परन्तु, जब उसने विवाह करने से इन्कार किया, यह मामला दाखिल किया गया। उसके साक्ष्य के पैरा-11 से यह भी प्रकाश में आया है कि 2006 में भी सूचनादाता और अभियुक्त/अपीलार्थी सिक्किम से लौटने के पश्चात् साथ-साथ घूमा करते थे। उसने यह भी गवाही दी है कि अरुणा काफी बुद्धिमान है और अपना भला-बुरा समझने की उसमें पर्याप्त परिपक्वता है। उसके साक्ष्य से यह भी सामने आया है कि सूचनादाता 2007 (गवाही की तिथि) में 30 वर्ष से अधिक उम्र की थी और अपीलार्थी उससे छोटा है। इस प्रकार यह अति-स्पष्ट है कि वर्ष 1997 में सूचनादता 20 वर्ष से अधिक आयु की थी जब उसे अपीलार्थी के साथ निकटता स्थापित की थी।

8. अ० सा० 1, अनीता गारी एक संस्था **''नेशनल एलाएंस ऑफ वीमेन''** की एक सदस्या है उसने कहा है कि जून, 2005 में सूचनादाता ने उसकी संस्था को अपने यौन शोषण के बारे में मौखिक जानकारी दी। उसने कहा है कि सूचनादाता ने उसे बताया था कि वह और अभियुक्त/अपीलार्थी 1995 में 2005 तक प्रेम करते थे और एक साथ यहाँ-वहाँ जाया करते थे और एकबार वे कुछ दिनों के लिए सिक्किम/गेंगटोक गए थे। उसकी मौखिक सूचना पर अ० सा० 1 ने कुछ पूछताछ के उपरांत, उसने (अ० सा० 1) ने दोनो को **''महिला हेल्पलाइन''** को निर्दिष्ट कर दिया जहाँ दोनो पक्षकार उपस्थित थे और अभियुक्त/अपीलार्थी ने यद्यपि अपने शारीरिक संबंध के बारे में स्वीकार किया परन्तु सूचनादाता से विवाह करने से इन्कार कर दिया। तत्पश्चात्, सूचनादाता को मामला संस्थित करने की सलाह दी गई थी।

9. अ० सा० 3 सूचनादाता का मित्र है। 16.4.2007 को दिया गया अपने साक्ष्य में उसने भी गवाही दी है कि सूचनादाता एवं अभियुक्त अपीलार्थी को वह 1997 से जानती थी। उसने यह भी कहा है कि वे दोनो ही उसके घर साथ आया करते थे। उसकी मित्र (सूचनादाता) ने उसके समक्ष स्वीकार किया कि उसके अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ प्रेम चल रहा था और वे प्रायः मोटर-साईकिल पर घूमना-फिरना किया करते थे। उसने यह भी कहा है कि वे उसके घर में 2-3 घंटे तक रहा करते थे। उसके साक्ष्य (पैरा 1 एवं 2) में यह आया है कि वर्ष 2007 में उसका विवाह सम्पन्न हुआ था और उसके विवाह के पहले और उसके विवाह के उपरांत भी सूचनादाता एवं अभियुक्त-अपीलार्थी उसके घर साथ-साथ आया करते थे। इस प्रकार, यह स्पष्टतया दर्शाता है कि सूचनादाता को यह अभिकथन स्वीकारने के उपरांत कि अभियुक्त ने वर्ष 2005 में उसने विवाह करने से इन्कार किया था परन्तु ऐसे अस्वीकरन के उपरांत भी, वह उसके साथ घूमा-फिरा करती थी।

10. सूचनादाता की एक अन्य मौसी अ॰ सा॰ 5 ने भी कहा है कि सूचनादाता और अभियुक्त-अपीलार्थी के बीच 1997 से प्रेम था और उसे इस तथ्य की जानकारी थी। उसने यह भी कहा है कि वे दोनो प्राय: एकसाथ बाहर जाया करते थे। उसने कहा है कि मार्च, 2005 में उसे सूचनादाता से उसके ओर अभियुक्त-अपीलार्थी के बीच शारीरिक संबंध और अभियुक्त का उससे विवाह करने से इन्कार के बारे में भी जानकारी मिली।

11. श्री निलेश कुमार ने यह भी इंगित किया है कि स्वयं सूचनादाता ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि उसने अपीलार्थी द्वारा दी गई धमकी के बारे में पहली बार न्यायालय में कथन किया था और अपनी लिखित रिपोर्ट में भी उसने उसे अपीलार्थी द्वारा दी गई धमकी के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया था।

12. श्री कुमार ने तर्क दिया है कि सूचनादाता अवयस्क नहीं थी अपितु उसके साक्ष्य के अनुसार वह वर्ष 2007 में 31 वर्ष की थी जब उसने साक्ष्य प्रस्तुत किया था। इससे भी बढ़कर, चिकित्सीय रिपोर्ट (प्रदर्श-2) स्पष्टत: दर्शाती है कि अपनी चिकित्सीय परीक्षण के समय, अर्थात् 23.11.2005 को वह 23 वर्ष से अधिक आयु की थी। अतएव, यह नहीं कहा जा सकता कि वह उस कृत्य की प्रकृति और निहित अर्थ को समझने में अक्षम थी जिसपर उसने सहमती दी थी। उसे कृत्य की नैतिकता के स्तर और उसमें अन्तर्निहित खतरे की पूरी जानकारी थी।

13. सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता, श्री जमिलुर रहमान निवेदन करते हैं कि केवल विवाह के प्रलोभन पर और तत्पश्चात धमकी देकर सूचनादाता की सहमति ली गई थी। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय अर्थात् **(2009)3 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 761** को उद्धृत किया है, मैंने उक्त निर्णय का अवलोकन किया है परन्तु अभियोजन गवाहों के पूर्वोक्त साक्ष्य की परिचर्चा से यथा प्रतीत हुए वर्तमान मामले के तथ्य पूर्णत: भिन्न हैं। वर्तमान मामले में, इसका कोई साक्ष्य नहीं है कि पीड़िता महिला को कभी भी उसकी सहमति के बिना यौन-संबंध के अध्यधीन रखा गया था जो स्वीकार्यत: अभिकथित घटना के समय 20 वर्ष से अधिक आयु की थी। इससे भी बढ़कर, यह साक्ष्य में आया है कि वह 1997 से गहरे प्रेम में थी, इस कारण ही उसके साथ विवाह करने से इन्कार करने के बावजूद अपीलार्थी के साथ उसकी निकटता थी।

14. पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूचनादाता और अपीलार्थी के बीच प्रेम था और जब अपीलार्थी ने किसी-न-किसी कारण से सूचनादाता से विवाह करने से इन्कार कर दिया, उसने यह मामला दर्ज कराया प्रथमत: यह अभिकथित करते हुए कि उसकी अनुमति पहले विवाह के प्रलोभन पर और द्वितीयत: धमकी देकर प्राप्त की गई थी। परन्तु बिल्कुल चौंकाने वाली बात यह है कि उसके अस्वीकरण के उपरांत भी, उसने उसके साथ निकटता बनाए रखी।

15. मेरे विचार और उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि सूचनादाता ने अपीलार्थी के साथ अपनी युवावस्था का आनन्द उठाया। उसने विवाह करने से अपीलार्थी के इन्कार के तुरन्त बाद उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट तक दर्ज नहीं कराई। इस प्रकार, किसी भी कल्पना से यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी बलात्कार का दोषी है। सूचनादाता ने शारीरिक आनन्द के लिए स्वेच्छा से सहमति दी थी अत: अब उसे पलट जाने और अपीलार्थी को बलात्कार के एक मामले में फंसाने का कोई अधिकार नहीं है। एक बुद्धिमान व्यक्ति के लिए उसकी मनगढ़ंत कहानी पर विश्वास करना कठिन है।

16. इन सारी परिस्थितियों पर विचार करके मैं इस अपील को अनुज्ञात करती हूँ और एस॰ टी॰ सं॰ 520 वर्ष 2006 में अपर न्यायिक आयुक्त, फास्ट ट्रैक न्यायालय-X, राँची द्वारा पारित और विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी पर अधिरोपित दिनांक 4.2.2009 एवं 5.2.2009 की दोषसिद्धि का निर्णय और दण्डादेश को अपास्त करती हूँ और उसके जमानत बन्ध-पत्रों की दायिता से उसे उन्मोचित करती हूँ।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

रामजी प्रसाद केशरी एवं अन्य (186, 187 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य (दोनों में)

Cr. M.P. No. 186, 187 of 2007. Decided on 22nd December, 2009.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 147, 323, 427, 504, 379 एवं 452—उपहति एवं दुकान के सामानों की नुकसान–संज्ञान–परिवाद याचिकाओं में अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं किए गए हैं बल्कि केवल बहुप्रयोजनीय अभिकथन किए गए हैं–पूर्व में, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307/34 एवं 498A/34 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन अपराध के लिए परिवादी को दोषसिद्ध किया गया था–अभिरक्षा से उसकी निर्मुक्ति के बाद अभिकथन करना और परिवाद दर्ज करना सिर्फ प्रतिशोध और विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 3 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s P.C. Tripathi, Manjula Upadhyay, For the Petitioners; M/s A.P.P., Vijay Kr. Sharma, R. Mukhopadhyay, For the Opp. Parties.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–चूँकि दोनों याचिकाएँ एक ही घटना से संबंधित संज्ञान के आदेश और दांडिक कार्यवाही को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी हैं, अत: उन्हें साथ सुना जा रहा है और इस सामान्य आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इन याचिकाओं में याचीगण ने परिवाद केस सं॰ 56 वर्ष 2006 और परिवाद केस सं॰ 63 वर्ष 2006 में न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, चतरा द्वारा पारित दिनांक 18.12.2006 के उन आदेशों के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है जिनके द्वारा याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147, 323, 427, 504, 379 एवं 452 के अधीन अपराध के लिए संज्ञान लिया गया है।

3. परिवादी याची सं॰ 1 का दामाद है और याची सं॰ 2 का पति है। अन्य बातों के साथ परिवाद याचिकाओं में अभिकथन यह है कि दिनांक 13.2.2003, 14.2.2003 और 15.2.2003 को अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके दुकान में सामानों को नुकसान पहुँचाना शुरू किया और जब परिवादी ने आपत्ति की, तो अभियुक्तों ने गाली दी और थप्पड़ और मुक्कों से मारा और दुकान से कुछ राशि लूट लिया। आगे यह अभिकथन किया गया है कि परिवादी के पिता से जबरन सादे कागज पर दस्तखत कराया गया था और वे परिवादी की पत्नी, याची सं॰ 2 के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित करने की धमकी दे रहे थे। परिवादी के पिता द्वारा निकाले और रखे गए 2 लाख रुपयों के लॉकर से गायब होने के संबंध में भी अभिकथन किया गया है। अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा बक्से में रखे हुए परिवादी के माता के स्वर्ण और चाँदी के आभूषणों को ले जाने का अभिकथन भी किया गया है।

4. अभिलेख से प्रकट है कि वर्ष 2003 में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307/34 और 498A/34 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन परिवादी को कारित की गयी क्रूरता अभियोजित किया गया था और सत्र विचारण सं॰ 100 वर्ष 2003 में दिनांक 2.5.2005 के निर्णय के निबंधनों में सत्र न्यायालय द्वारा परिवादी को दोषसिद्ध किया गया था और उसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन तीन वर्ष के सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी। तद्नुसार, परिवादी ने सजा पूरी की और अंत में दिनांक 18.1.2008 को निर्मुक्त किया गया था। यद्यपि, घटना दिनांक 13.2.2003 से

ही 15.2.2003 के मध्य हुई थी, लेकिन कोई परिवाद याचिका दाखिल नहीं की गयी थी और दिनांक 24.2.2003 के पूर्व जब परिवादी को अभिरक्षा में लिया गया था, प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। निर्मुक्ति के बाद ही यह अभिकथन करते हुए कि घटना तीन वर्ष पहले हुई थी परिवाद मामले दाखिल किए गए थे। पूर्वोक्त के अतिरिक्त, परिवाद याचिकाओं में अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं किया गया है, बल्कि सिर्फ बहुप्रयोजनीय अभिकथन किया गया है। मामले के इन सारे तथ्यों पर विचार करते हुए, प्रथम दृष्टया, यह प्रतीत होता है कि अभिरक्षा से उसकी निर्मुक्ति के बाद परिवाद दर्ज किया जाना और अभिकथन किया जाना केवल प्रतिशोध है और विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। आक्षेपित आदेशों को पारित करते समय और अपराध का संज्ञान लेते समय दंडाधिकारी द्वारा मामले के इन पहलूओं पर विचार नहीं किया गया है। संज्ञान लेने वाले आक्षेपित आदेशों को विधि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता है।

5. पूर्वोक्त कारणों से, याचिकाएं अनुज्ञात की जाती है और पूर्वोक्त दो परिवाद मामलों में याचीगण के विरुद्ध प्रारंभ की गयी समस्त दांडिक कार्यवाहियों और संज्ञान लेने वाले आदेशों को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

नीलम साहा

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 414 of 2009. Decided on 6th January, 2010.

सेवा विधि–आंगनबाड़ी सेविका के पद से सेवा समाप्ति–अपीलार्थी सहित बाद में नियुक्त किसी को भी प्रभावित नही करने के निर्देश के साथ एकल न्यायाधीश द्वारा आदेश अपास्त कर दिया गया था–अपीलार्थी की नियुक्ति को प्रभावित करने वाला कोई संप्रेक्षण एकल न्यायाधीश ने दर्ज नहीं किया–यदि परिणामस्वरुप अपीलार्थी प्रभावित हुआ है तो यह उसकी सेवा समाप्ति को चुनौती देने के लिए एक नया वाद हेतुक होगा और इसे अपील के तहत स्वीकार नहीं किया जा सकता है–अपील स्वीकार नहीं की जा सकती है–अपील खारिज। (पैरा 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajan Raj, For the Appellant; Mr. Rajesh Shankar, For the Respondents.

आदेश

यह अपील डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 894/2009 में पारित दिनांक 14.5.2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका अनुज्ञात किया था और कम-से-कम नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए और विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए विधि के अनुसार प्रत्यर्थी सं॰ 7 के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करने की वर्तमान प्रत्यर्थी-नियुक्ति प्राधिकारी को स्वतंत्रता देते हुए याची/प्रत्यर्थी सं॰ 7 के सेवा समाप्ति के आदेश को अपास्त कर दिया था।

2. इस आदेश का निहितार्थ पूर्णत: स्पष्ट है क्योंकि यहाँ इसमें याची/प्रत्यर्थी सं॰ 7 ने इस अभिवाक् कि उसे कारण बताओ अथवा सुनवाई का अवसर दिए बिना सेवा से हटा दिया गया था, पर आंगनबाड़ी सेविका के तौर पर सेवा समाप्ति के आदेश को चुनौती दी थी। उसके लिए यही कारण था कि जिसके चलते उसने विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका दाखिल की थी और उसके बाद पद पर नियुक्त व्यक्ति, जो यहाँ इसमें अपीलार्थी है, को भी पक्षकार बनाया गया था। लेकिन,

विद्वान एकल न्यायाधीश ने यद्यपि याची/प्रत्यर्थी सं० 7 की सेवा समाप्ति का आदेश अपास्त कर दिया था, तथापि यहाँ इसमें अपीलार्थी, जो रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं० 7 था, की नियुक्ति से छेड़-छाड़ करने का निर्देश नहीं दिया गया था और यहाँ इसमें अपीलार्थी सहित किसी को भी, जो बाद में नियुक्त किया गया था, प्रभावित करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा कोई निर्देश नहीं दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश का प्रभाव केवल यही था कि प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों को इस अपील में याची/प्रत्यर्थी सं० 7 की सेवाएँ समाप्त नहीं करनी चाहिये थी क्योंकि उसे सेवा से हटाने से पहले सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। इस प्रकार सेवा से उसे हटाए जाने से पहले यहाँ इसमें याची/प्रत्यर्थी सं० 7 को सुनवाई का अवसर देने का आदेश देने मात्र तक ही विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका में हस्तक्षेप किया था।

3. यह अपील उस अपीलार्थी द्वारा दाखिल की गयी है जिसे रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं० 7 के तौर पर पक्षकार बनाया गया है और इस अपील में याची/प्रत्यर्थी सं० 7 के स्थान पर नियुक्त किया गया था। लेकिन, विद्वान एकल न्यायाधीश ने यहाँ इसमें अपीलार्थी/प्रत्यर्थी सं० 7 की नियुक्ति को प्रभावित करता हुआ कोई संप्रेक्षण दर्ज नहीं किया था लेकिन परिणामस्वरुप, यदि यहाँ इसमें अपीलार्थी/प्रत्यर्थी सं० 7 प्रभावित हुआ है, तो यह स्पष्टत: अपनी सेवा समाप्ति को चुनौती देने हेतु उसके लिए एक नया वाद हेतुक होगा और इसे अपील के तहत स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यहाँ इसमें अपीलार्थी/प्रत्यर्थी सं० 7 की नियुक्ति को प्रभावित करता आक्षेपित आदेश में कोई निर्देश नहीं है। अत: अपीलार्थी की प्रेरणा पर, जो रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं० 7 है, इस अपील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

4. इसलिए, अपील खारिज की जाती है।

माननीय एम० वाई० इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

सुबोध कुमार गुप्ता (6, 2, 3, 4, 5, 7 में)

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि०, राँची (135 में)

शाखा प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि०, राँची (303 में)

बनाम

गुरुवारी देवी एवं अन्य (6 में)

कैकेयी देवी एवं अन्य (2 में)

लीलावती देवी एवं अन्य (3 में)

रतिका देवी एवं अन्य (4 में)

दुर्गा देवी एवं अन्य (5 में)

गौरी देवी एवं अन्य (7 में)

श्रीमती सुनैना देवी एवं अन्य (135 में)

सावित्री देवी एवं अन्य (303 में)

M. A. Nos. 6, 2, 3, 4, 5, 7, 135 of 2008 with 303 of 2009 . Decided on 11th January, 2010.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 147 एवं 173—दुर्घटना में मृत्यु-मुआवजे की राशि का भुगतान करने और इसे अपराध करने वाले वाहन के अपीलार्थी-स्वामी से वसूलने का निर्देश मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा बीमा कम्पनी को दिया गया-बीमा कम्पनी इस आधार पर कि दुर्घटना के समय मिनी बस खचाखच भरी थी, अपनी जिम्मेदारी से इंकार कर रही है-दुर्घटना में आठ व्यक्ति मारे गए थे और आठ दावा मामला दाखिल किया गया

था–पॉलिसी के अधीन आच्छादित कम से कम 21 व्यक्तियों की मृत्यु के संबंध में मुआवजा का भुगतान करने की अपनी जिम्मेदारी को बीमा कंपनी अन-अंगीकृत नहीं कर सकती है–वाहन के स्वामी अपीलार्थी से मुआवजा राशि वसूल करने का हक बीमा कम्पनी को देने में अधिकरण ने गलती की–अधिकरण का अधिनिर्णय, जहाँ तक यह वसूली का अधिकार देता है, अपास्त किया जाता है। (पैरा 8 से 11)

निर्णयज विधि.–2007(7) SCC 445—Followed.

अधिवक्तागण.–M/s Nilesh Kumar, For the Appellant; Mr. D.C. Ghosh, For the Ins. Company.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–चूँकि इन सारे अपीलों में विधि और तथ्य के सामान्य प्रश्न अंतर्ग्रस्त है, इन्हें साथ सुना गया है और इस सम्मिलित निर्णय द्वारा निपटाया गया है।

2. एम॰ ए॰ सं॰ 2/2008, 3/2008, 4/2008, 5/2008, 6/2008 एवं 7/2008 मुआवजा केस सं॰ 175, 176, 177, 178, 179 एवं 181 वर्ष 2004 से उद्भुत हुए। ये छ: मुआवजा मामले मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, राँची द्वारा दिनांक 14.8.2007 के सम्मिलित निर्णय द्वारा निपटाए गए हैं जिसके द्वारा दावेदारों-प्रत्यर्थीगण को मुआवजा अधिनिर्णीत किया गया है और बीमा कम्पनी को मुआवजा राशि का भुगतान करने और वाहन के अपीलार्थी–स्वामी से उक्त राशि को वसूल करने का निर्देश दिया गया है। बीमा कंपनी को राशि वसूल करने का उक्त निर्देश दिए जाने से व्यथित होकर अपीलार्थी ने इन अपीलों को दाखिल किया है।

3. एम॰ ए॰ सं॰ 135 वर्ष 2008 और एम॰ ए॰ सं॰ 303 वर्ष 2009 बीमा कंपनी द्वारा दाखिल किया गया है जिसने मुआवजा केस सं॰ 184 वर्ष 2004 और मुआवजा केस सं॰ 36 वर्ष 2005 क्रमश: में पारित निर्णय एवं अधिनिर्णय का विरोध मुख्यत: इस आधार पर किया है कि यद्यपि अपीलार्थी–कंपनी को मुआवजा का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है लेकिन वाहन के स्वामी को मुआवजा राशि वसूल करने का अधिकार नहीं दिया गया है।

4. मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं:-

दिनांक 6.7.2004 को सारे मृत व्यक्ति अन्यों के साथ टाटा 407 मिनी बस में यात्रा कर रहे थे। यह अभिकथन किया गया था कि वाहन का चालक मिनी बस को काफी तेज एवं उपेक्षापूर्वक चला रहा था, जिसके परिणामस्वरूप, जब बिरहोर डेरा धलान के निकट उक्त बस पहुँची, यह सड़क के किनारे पलट गयी। परिणामस्वरूप, अनेक अन्य व्यक्तियों सहित उक्त मिनी बस के सवारियों को गंभीर उपहतियाँ हुई और बाद में, छ: व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी। मुआवजा लेने हेतु मृत व्यक्तियों के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा कुल छ: मुआवजा मामले दाखिल किए गए थे। दावा याचिका में किए गए प्राख्यानों से इंकार करते हुए वाहन के अपीलार्थी–स्वामी ने लिखित बयान दाखिल किया। यह कथन किया गया था कि तात्विक समय पर वाहन प्रत्यर्थी–यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी लि॰ के साथ बीमाकृत था और चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। वाहन के बीमाकर्ता ने भी अपनी जिम्मेदारियों से इस आधार पर इंकार करते हुए लिखित बयान दाखिल किया कि पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन किया गया था क्योंकि दुर्घटना के समय उक्त बस में 50-60 यात्रीगण सवार थे जो काफी भरी और ठूंसी थी। अत: बीमा कंपनी की कोई जिम्मेदारी नहीं है।

5. बीमा कम्पनी की जिम्मेदारी के संबंध में विवाद्यक सहित अन्य विवाद्यकों को अधिकरण ने विनिर्मित किया। अतिभारित करने के विवाद्यक पर, अधिकरण पाया कि 21 यात्रीगण के जोखिम को

आच्छादित करती बीमा पॉलिसी जारी की गयी थी लेकिन दुर्घटना के समय उक्त बस में 50-60 यात्रीगण ढोए जा रहे थे। लेकिन, अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि पॉलिसी द्वारा आच्छादित जोखिम की तुलना में अधिक यात्रीगण को ढोना यद्यपि पॉलिसी को भंग करना है लेकिन बीमा पॉलिसी द्वारा आच्छादित यात्रीगण की संख्या से अधिक व्यक्तियों के संबंध में मुआवजा भुगतान की इसकी जिम्मेदारी से बीमाकर्ता को मुक्त नहीं किया जा सकता है। **गिरिराज प्रसाद अग्रवाल बनाम पार्वती देवी एवं अन्य, 2005 (3) TAC 115** के मामले में झारखंड उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए, अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि बीमा कम्पनी मुआवजा भुगतान की जिम्मेदार है। अधिकरण ने आगे अभिनिर्धारित किया कि पॉलिसी की संविदा को भंग करने के लिए बीमित/स्वामी के विरुद्ध बीमाकर्ता कार्यवाही कर सकता है। अधिकरण ने पुनः अभिनिर्धारित किया कि चूँकि याचीगण ने खचाखच भरी बस में यात्रा करने का जोखिम उठाया, अतः वे उपेक्षा में सहयोग के जिम्मेदार थे। अतः अधिकरण ने मुआवजा का अधिनिर्णय दिया और अभिनिर्धारित किया कि बीमा कंपनी मुआवजा राशि के भुगतान की जिम्मेदार है लेकिन पॉलिसी की शर्तों को भंग करने के लिए वाहन के स्वामी के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार बीमा कंपनी को दिया। अतः अपीलार्थी, जो वाहन का स्वामी है, ने अधिनिर्णय के इस अंश का विरोध किया है।

6. एम० ए० सं० 135/2008 और 303/2009 की अपीलों में बीमा कंपनी ने निर्णय और अधिनिर्णय का विरोध सिर्फ इस आधार पर किया है कि उक्त निर्णय में पॉलिसी के निबंधनों को भंग करने के लिए वाहन के स्वामी के विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्देश बीमा कम्पनी को अधिकरण द्वारा नहीं दिया गया था।

7. विचारार्थ सिर्फ यही प्रश्न रहा कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों में, पॉलिसी के निबंधनों को भंग करने के लिए और मुआवजा राशि की वसूली के लिए स्वामी के विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्देश बीमा कम्पनी को देते हुए अधिकरण विधि में सही था।

8. स्वीकृत तौर पर दुर्घटना की प्रासंगिक तिथि पर, मिनी बस 50-60 यात्रियों को ढो रही थी। यह अभिलेख पर नहीं लाया गया है कि उक्त दुर्घटना के कारण 21 व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी अथवा उन्हें उपहतियाँ हुई। अभिलेखों से परिलक्षित होता है कि उक्त दुर्घटना में 8 व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी और 8 दावा मामले दाखिल किए गए थे। ऐसी परिस्थितियों में पॉलिसी के अधीन आच्छादित कम से कम 21 व्यक्तियों की मृत्यु के संबंध में मुआवजा भुगतान हेतु अपनी जिम्मेदारी से बीमा कम्पनी इनकार नहीं कर सकती है।

9. इस संबंध में, **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि० बनाम अंजना श्याम एवं अन्य, (2007)7 SCC 445** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि सुस्थापित कर दी गयी है। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मामला यह था कि वाहन की भारवहन क्षमता 42 याचीगण की थी और उक्त 42 यात्रीगण के लिए बस बीमाकृत किया गया था। दुर्घटना के दिन बस खचाखच भरी हुई थी। कम से कम 90 यात्रीगण थे। बस रोड के किनारे नाला में गिर गयी जिससे चालक सहित 26 लोगों की मृत्यु हो गयी और 63 व्यक्ति घायल हो गए। बीमा कम्पनी का मुख्य प्रतिवाद था कि बस खचाखच भरी हुई थी और यह प्राधिकृत चालक द्वारा नहीं चलायी जा रही थी। अतः बीमा कम्पनी की कोई जिम्मेदारी नहीं है। अधिकरण ने इन आपत्तियों को ठुकरा दिया और अनेक अधिनिर्णयों को पारित किया जिसे उच्च न्यायालय द्वारा भी अभिपुष्ट किया गया था। मामला सर्वोच्च न्यायालय में आया। अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों और पॉलिसी के निबंधनों एवं शर्तों पर चर्चा करने के बाद माननीय न्यायाधीशों ने संप्रेक्षित किया:—

> *"21. उच्च न्यायालय ने सिर्फ इसी पहलू पर विचार किया है कि क्या वाहन को खचाखच भरकर स्वामी ने वाहन का ऐसा उपयोग किया है जिसकी अनुज्ञा अनुज्ञप्ति, जिसके अधीन वाहन का उपयोग करना है, प्रदान नहीं करती है। यह पहलू अधिनियम की धारा 147(1)(b)(ii) के निबंधनों में बीमाकृत स्टेज कैरेज के यात्रीगण के संबंध में बीमा कम्पनी की जिम्मेदारी की सीमा का विनिश्चय करने के पहलू से*

भिन्न है। हमारा मत है कि केवल यात्रीगण की संख्या, जिनके लिए अधिनियम के अधीन बीमा लिया जा सकता है, और जिनके लिए तथ्यतः बीमा लिया गया है के संबंध में ही, न कि ओवरलोडिंग के मामले में दुर्घटनाग्रस्त अन्य यात्रीगण के संबंध में, बीमा कम्पनी को जिम्मेदार बनाया जा सकता है।

22. तब प्रश्न उठता है कि भुगतानयोग्य मुआवजे का विनिश्चय कैसे किया जाए अथवा कैसे मुआवजे का परिमाण निर्धारित किया जाए क्योंकि यह अभिनिश्चित करने का कोई साधन नहीं है कि ओवरलोडेड यात्रीगण में से कौन-कौन बीमा पॉलिसी द्वारा आच्छादित यात्रीगण गठित करता है जिन्हें स्वयं परमिट द्वारा ढोने की अनुज्ञा दी गयी है। जैसा कि इस न्यायालय ने उपदर्शित किया है, इस अधिनियम का उद्देश्य तीसरे पक्षों को लाभ देना है जो किसी दुर्घटना में मारे गए हैं अथवा घायल हुए हैं। यह एक सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करता है। इसको ध्यान में रखते हुए, हम समझते हैं कि व्यावहारिक और समुचित अनुक्रम यह अभिनिर्धारित करना होगा कि ऐसे मामले में बीमा कम्पनी अनेक अधिनिर्णयों के उच्चतर को आच्छादित करने हेतु बाध्य होगी और बीमा पॉलिसी द्वारा आच्छादित यात्रीगण की संख्या की सीमा तक अधिनिर्णीत मुआवजा राशि का उच्चतर जमा करने के लिए बाध्य होगी।''

10. अभिलेख पर लाए गए तथ्यों और साक्ष्य पर विचार करने के बाद और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुस्थापित विधि के आलोक में, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वाहन के अपीलार्थी-स्वामी से मुआवजा राशि वसूल करने का अधिकार बीमा कम्पनी को देते हुए अधिकरण ने विधि में गलती की है।

11. पूर्वोक्त कारणों से, एम॰ ए॰ सं॰ 2/2008, 3/2008, 4/2008, 5/2008, 6/2008 और 7/2008 अनुज्ञात किए जाते है और अधिकरण का अधिनिर्णय, जहाँ तक यह वसूली का अधिकार देता है, अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, बीमा कम्पनी द्वारा दाखिल एम॰ ए॰ सं॰ 135 वर्ष 2008 और एम॰ ए॰ सं॰ 303 वर्ष 2009 खारिज किए जाते है।

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.—मैं सहमत हूँ।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

धनेश्वर गोप एवं अन्य (624 में)

इन्दर गोप (646 में)

बनाम

झारखंड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal (S.J.) Nos. 624, 646 of 2004. Decided on 23rd December, 2009.

एस॰ टी॰ सं॰ 76 वर्ष 2002/126 वर्ष 2003 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰-II, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 26.3.2004 एवं 29.3.2004 क्रमशः के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 147, 448, 342, 323, 307 एवं 149— हत्या का प्रयास-दोषसिद्धि और दंड-पीड़ित घटना का एकमात्र गवाह है-यद्यपि अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा हथियार धारण करने और घटना के तरीके के संबंध में विरोधाभास है किन्तु उसने सिद्ध किया है कि उसे अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा सह-अभियुक्त के घर ले जाया गया था और उसका एक हाथ काट दिया गया था-चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा उपहति की पुष्टि-उपहति की प्रकृति गंभीर थी और जीवन के प्रति खतरनाक-विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को सही रूप से दोषसिद्ध किया गया-लेकिन, घटना स्थल पर एक अपीलार्थी की उपस्थिति सिद्ध नहीं की

गयी–वह दोषमुक्ति का हकदार है–दंड में उपान्तरण के साथ दोषसिद्धि और दंड को अंशतः अभिपुष्ट किया गया। **(पैरा 11 से 19)**

निर्णयज विधि.–(2009)4 SCC 26—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s B. M. Tripathy, G. P. Roy, Nutan Sharma, Naveen Kumar Jaiswal, For the Appellants; Mr. R. C. P. Sah, For the Informant; Mr. Md. Hatim, For the State.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–श्री जयप्रकाश नारायण पांडे, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰–II, बोकारो द्वारा एस॰ टी॰ सं॰ 76 वर्ष 2002/126 वर्ष 2003 में पारित दिनांक 26.3.2004 के उस निर्णय और दिनांक 29.3.2004 के दंड के विरुद्ध पूर्वोक्त पाँच अपीलार्थीगण द्वारा दांडिक अपील सं॰ 624 वर्ष 2004 दाखिल किया गया है जिसके द्वारा धारा 147/448/342/323/307/149 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन उन्हें दोषसिद्ध किया गया था और धारा 147 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष के सश्रम कारावास, धारा 448 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष के सश्रम कारावास, धारा 323 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए छः माह के सश्रम कारावास, धारा 342 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए छः माह के सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी और धारा 307/149 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए सात वर्ष के सश्रम कारावास की सजा भी उन्हें दी गयी थी। प्रत्येक को 1000/- रुपयों का जुर्माना देने की सजा भी उन्हें दी गयी थी, जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में, उन्हें एक माह के सरल कारावास काटने का निर्देश दिया गया था। सारी सजाएँ साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. पूर्वोक्त निर्णय के विरुद्ध अपीलार्थी इंदर गोप ने दांडिक अपील सं॰ 646 वर्ष 2006 दाखिल किया है जिसके द्वारा धारा 148/448/326 और 307 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन उसे दोषसिद्ध किया गया है और धारा 307 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए दस वर्षों के सश्रम कारावास, धारा 148 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए दो वर्ष के सश्रम कारावास और धारा 448 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा उसे दी गयी है। धारा 326 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए अलग से सजा नहीं दी गयी है। उसे 2000/- रुपये जुर्माना भरने की सजा भी दी गयी है, और जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में, उसे दो माह के सरल कारावास की सजा दी गयी है। सारी सजाओं को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया है।

3. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि सूचक, जो स्वयं पीड़ित अर्थात् अनिल गोस्वामी है, का फर्दबयान नीलम नर्सिंग होम, जोडाडीह मोड़, चास में दर्ज किया गया था जिसमें उसने कथन किया है कि जब वह लक्ष्मीपूजन करने के बाद दिनांक 13.10.2000 को सायं 5.30 बजे अपने घर आया, उस समय अभियुक्तगण अर्थात् इंदर गोप, धनेश्वर गोप, खारु गोप, गौतम गोप, जंगरु गोप, हारु गोप, अचानक उसके घर में घुसे, उसे पकड़ा अपने घर घसीटते हुए जबरन लाए और उसके बाद धनेश्वर गोप, गौतम गोप, जंगरु गोप, खारु गोप और हरि गोप ने उसे पकड़ा और हत्या के आशय से इंदर गोप ने कटरा (एक तेज धार वाला हथियार) से उस पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरुप उसका बाया हाथ पूरी तरह कट गया और सिर्फ त्वचा सलामत रही जिससे हाथ झूल रहा था। सूचक सहायता के लिए चिल्लाया और उसके परिवार के सदस्य उसे बचाना चाहते थे लेकिन अभियुक्तों द्वारा उन्हें गंभीर परिणाम की धमकी दी गयी थी। इस फर्दबयान पर पूर्वोक्त अभियुक्तों के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था और अन्वेषण के बाद उन सभी के विरुद्ध पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल किया। तत्पश्चात् धारा 148/323/307/448 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त इन्दर गोप के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए थे और अन्य अभियुक्तों के संबंध में धारा 147/342/34/323/307/149 एवं 448 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए आरोप विरचित किए गए थे।

4. अभियुक्तगण का बचाव यह था कि उन्हें इस मामले में झूठा फँसाया गया है सूचक स्वयं एक अपराधी है और अनेक दांडिक मामलों में संलिप्त है। अभियुक्तों का आगे बचाव यह था कि इस

मामले के सूचक ने इंदर गोप की पत्नी अर्थात् शांति देवी को अपनी रखैल बना कर रखा था जिसपर अभियुक्त इंदर गोप द्वारा आपत्ति जतायी गयी थी और इंदर गोप एवं उसकी पत्नी के बीच पृथक्करण के लिए एक वैवाहिक मामला दर्ज किया गया था जिसमें सूचक ने इंदर गोप की पत्नी के पक्ष में साक्ष्य दिया था। इसी प्रकार, इस संबंध में सूचक के विरुद्ध धारा 497 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए एक अन्य मामला दर्ज किया गया था और अंतत: उक्त मामले में सूचक को दोषसिद्ध किया गया था और इस दुश्मनी के कारण सूचक ने पूर्वोक्त अभियुक्तों के विरुद्ध यह मामला दर्ज किया है।

5. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए बारह गवाहों का परीक्षण किया है। बचाव पक्ष ने भी दो गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 3 स्वयं पीड़ित सूचक है, अ॰ सा॰ 6 आई॰ ओ॰/अन्वेषण अधिकारी है। अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर है जिसने घायल का परीक्षण किया था और नर्सिंग होम में उपचार किया था। अ॰ सा॰ 1, 4, 5, 8, 9 और 10 ने अभिकथित घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है और अ॰ सा॰ 11 टेन्ट के स्वामी है।

6. दोनों अपीलों में अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने निवेदन किया है कि घटना के तरीके, घटनास्थल के संबंध में और अभियुक्तगण द्वारा हथियार धारित किए जाने के संबंध में भी अभियोजन गवाहों के साक्ष्य में महत्वपूर्ण विसंगतियाँ है। घटना का वास्तविक तरीका अभियोजन द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है। उन्होंने पुन: निवेदन किया है कि यद्यपि इंदर गोप के हाथ में हथियार होने के संबंध में साक्ष्य संगत में है लेकिन अन्य अभियुक्तगण के संबंध में महत्वपूर्ण विसंगतियाँ है। उन्होंने आगे तर्क किया है कि यद्यपि गवाहों की एक संख्या ने अभिकथित घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है लेकिन अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य दर्शाते है कि उनमें से अधिकतर ने अपीलार्थीगण को पीड़ित पर प्रहार करते नहीं देखा था।

7. श्री त्रिपाठी निवेदन करते हैं कि खारु गोप (अपीलार्थी सं॰ 2) की घटना स्थल पर उपस्थिति काफी संदेहास्पद है क्योंकि अ॰ सा॰ 5 और अ॰ सा॰ 9 ने खारु गोप के बारे में यह कथन नहीं किया है कि वह अन्य सह-अभियुक्तों के साथ घटनास्थल पर उपस्थित था। इस प्रकार, उसके विरूद्ध अपना मामला प्रमाणित करने में अभियोजन विफल रहा है। उसको कम से कम संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए। आगे यह निवेदन किया गया है कि यद्यपि खारु गोप घटनास्थल पर उपस्थित नहीं था लेकिन चूँकि वह बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ में काम कर रहा है, इसलिए सूचक ने उसका नाम उल्लिखित किया है और प्रतिशोध लेने हेतु, ताकि वह नौकरी गँवा बैठे उसे इस मामले में फँसाया है।

8. अभियोजन गवाहों के साक्ष्य के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अ॰ सा॰ 1 ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि अभियुक्तगण उसके घर में घुसे और सूचक को जबरन अपने घर ले गए। तत्पश्चात्, उसने कथन किया है कि घर से बाहर खड़े अभियुक्तगण अपने हाथों में हथियार लिए हुए थे और इंदर गोप ने उसके भाई के बाएं हाथ पर कटरा से प्रहार किया था जिससे उसका बायां हाथ कट गया और त्वचा से झूलता हुआ जुड़ा हुआ था। लेकिन उसने कथन किया कि वह अपने घर से बाहर नहीं आया था बल्कि उसने अपने घर की छत से घटना को देखा था। सूचक (स्वयं पीड़ित) ने अपने फर्दबयान और अपने साक्ष्य में भी विनिर्दिष्ट तौर पर कथन किया है कि वह अभियुक्तगण द्वारा इंदरगोप के कमरे में ले जाया गया था। इस प्रकार एक अन्य घर, जो सड़क के दूसरी ओर है, के छत से सायंकाल में घटना देखना अ॰ सा॰ 1 के लिए संभव नहीं है। इस प्रकार, अधिकाधिक यह कहा जा सकता है कि उसने आपराधिक गृह अतिचार और सदोष परिरोध, किन्तु प्रहार नहीं, की सीमा तक घटना के अंश को देखा था।

9. अ॰ सा॰ 2 ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि जब वह उसी दिन सायं 5.00 बजे चास से लौटा और गाँव के सड़क के निकट पहुँचा, उसने अनिल गोस्वामी को जमीन पर पड़ा देखा जिसका हाथ कटा था और सिर्फ त्वचा से जुड़ा था और वह पानी मांग रहा था। अ॰ सा॰ 2 ने उसे पानी दिया और तत्पश्चात् सूचक के घर की ओर दौड़ा। अत: उसने अभिकथित घटना के किसी भाग को नहीं देखा है।

10. अ॰ सा॰ 11 और 12 के साक्ष्य से, मैं पाता हूँ कि उन्होंने घटना के अंश का समर्थन किया है क्योंकि उन्होंने कथन किया है कि अनिल अपने घर में घुसा और तत्पश्चात् क्या हुआ, उन्होंने नहीं देखा, केवल अगली सुबह ही वे घटना के बारे में जान पाए।

11. गवाहों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर, मैं पाता हूँ कि सारे गवाहों ने अभियोजन के मामले के अंश का उस सीमा तक समर्थन किया है कि अभियुक्तगण सूचक (पीड़ित) को इंदर गोप के घर तक घसीट कर ले गए थे। स्वीकृत तौर पर अभिकथित घटना के समय पूर्वोक्त व्यक्तियों के समूह में खारु गोप की उपस्थिति के बारे में कुछ गवाहों ने उल्लेख नहीं किया है। अत: घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति बहुत संदेहास्पद है।

12. अ॰ सा॰ 3 जो पीड़ित है, का साक्ष्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसके साक्ष्य पर विचार करने के बाद, मैं पाता हूँ कि घटना जो इंदर गोप के घर पर हुई का वह एक मात्र गवाह है और उसने प्राथमिकी में उल्लिखित अपने साक्ष्य में अपने विवरण का समर्थन किया है और अभियोजन मामले का भी समर्थन किया है। नि:संदेह, अभियुक्तगण द्वारा हथियार धारण करने और घटना के तरीके के भी संबंध में कुछ विसंगतियाँ है लेकिन उसने सिद्ध किया है कि उसे अभियुक्तगण द्वारा इंदर गोप के घर ले जाया गया था और तत्पश्चात् पूर्वोक्त अभियुक्तों ने उसे पकड़ा था और इंदर गोप ने कटरा के एक प्रहार से उसका बायां हाथ काट दिया था।

13. अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर के साक्ष्य से मैं पाता हूँ कि उन्होंने कथन किया है कि पीड़ित का बायां हाथ पूरी तरह विच्छेदित हो गया था और केवल त्वचा से झूल रहा था। उन्होंने आगे कथन किया है कि इस उपहति की प्रकृति गंभीर प्रकृति की थी और जीवन के लिए खतरनाक। इस प्रकार डॉक्टर का साक्ष्य पीड़ित अ॰ सा॰ 3 द्वारा कथित उपहति को पुष्ट करता है। डॉक्टर ने अपने साक्ष्य में आगे कथन किया है कि अन्य उपहति केवल खरोंच थी जो सरल प्रकृति की है।

14. सूचक के विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ एस॰ पी॰ साह निवेदन करते हैं कि अभियोजन गवाहों ने अभियोजन मामला सिद्ध किया है यद्यपि कुछ गौण विसंगतियाँ है लेकिन उनका महत्व अधिक नहीं है। अत: आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी अभियुक्तगण को सही दोषसिद्ध किया गया है।

15. इस प्रकार, डॉक्टर के बयान और पीड़ित सहित अभियोजन गवाहों के साक्ष्य पर विचार करने के बाद मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि धनेश्वर गोप, हरि गोप, जंगरु गोप, गौतम गोप (दांडिक अपील सं॰ 624 वर्ष 2004 में अपीलार्थीगण) के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 147/448/342/323/307/149 के अधीन आरोप स्थापित करने में अभियोजन सक्षम रहा है। इसी प्रकार इंदर गोप, दांडिक अपील सं॰ 646 वर्ष 2004 में एकमात्र अपीलार्थी के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 148/448/326 और 307 के अधीन आरोप भी अभियोजन ने सिद्ध किया है।

16. चूँकि दांडिक अपील सं॰ 624 वर्ष 2004 में घटनास्थल पर अपीलार्थी सं॰ 2 खारु गोप की उपस्थिति सिद्ध नहीं की गयी है, इस कारण मेरे मत में वह दोषमुक्ति का हकदार है। तद्नुसार, मैं उसे उसके विरुद्ध विरचित आरोपों से दोषमुक्त करता हूँ, और विचारण न्यायालय द्वारा उसे अधिनिर्णीत

दोषसिद्धि और दंड को अपास्त करता हूँ। चूँकि अपीलार्थी सं॰ 2 खारु गोप जमानत पर है, उसे अपने जमानत पत्र की जिम्मेदारियों से उन्मोचित किया जाता है।

17. अंत में श्री त्रिपाठी निवेदन करते हैं कि इंदर गोप (दांडिक अपील सं॰ 646 वर्ष 2004 में एकमात्र अपीलार्थी) दिनांक 26.3.2004 अर्थात् साढ़े पाँच वर्षों से अधिक समय से कारावास की अभिरक्षा में है और वर्तमान में 66 वर्ष से अधिक आयु का है। उन्होंने **(2009)4 SCC पृष्ठ 26** में प्रकाशित **मध्य प्रदेश राज्य बनाम काशीराम एवं अन्य के मामले** में सर्वोच्च न्यायालय का एक मामला उद्धृत किया है जिसमें अभियुक्तगण ने पीड़ित के बाएं पैर का निचला हिस्सा (पैर का एक-तिहाई) काट दिया था और ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंड अर्थात् धारा 307 भा॰ दं॰ सं॰ के अपराध के लिए जुर्माने के साथ पाँच वर्षों का सश्रम कारावास और धारा 149 और 148 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए छः माह के सश्रम कारावास को संपुष्ट किया था। पूर्वोल्लिखित मामले में लिए गए सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण पर विचार करते हुए और अपीलार्थी इंदर गोप की आयु अर्थात् पैंसठ वर्षों से अधिक आयु पर विचार करते हुए मैं यह भी महसूस करती हूँ कि धारा 307 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए जुर्माना सहित छः वर्षों का सश्रम कारावास न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करेगा। अतः दस वर्षों के सश्रम कारावास के बजाए मैं उक्त दंड को उपान्तरित करता हूँ और इसे छः वर्षों तक सश्रम कारावास और 10,000/- रुपयों के जुर्माने के भुगतान तक घटाता हूँ। तद्नुसार उक्त उल्लिखित सीमा तक दोषसिद्धि को पुष्ट करती हूँ और दंड को उपान्तरित करता हूँ। इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा ऐसे अधिनिर्णीत दंडों के आदेश में पूर्वोक्त उपान्तरण करते हुए दांडिक अपील सं॰ 646 वर्ष 2004 खारिज की जाती है। इस आदेश की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर विचारण न्यायालय में 10,000/- रुपयों की पूर्वोक्त जुर्माना राशि जमा करने का निर्देश मैं अपीलार्थी को देता हूँ जिसके व्यतिक्रम में, दोषसिद्ध को इसके अतिरिक्त दो वर्षों की कैद की सजा भुगतनी होगी। यदि अपीलार्थी विचारण न्यायालय में पूर्वोक्त राशि जमा करता है, तो विचारण न्यायालय इस मामले में सूचक (पीड़ित) को उक्त राशि का भुगतान करेगा।

18. उक्त उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों में और मामले को समग्र रूप से लेने पर मैं मुख्य अभियुक्त इंदर गोप, दांडिक अपील सं॰ 646 वर्ष 2004 के एक मात्र अपीलार्थी को दिए गए दस वर्षों के सश्रम कारावास की सजा को छः वर्षों के सश्रम कारावास की सजा में घटाती हूँ। दांडिक विधि शास्त्र के इस सर्वविदित सिद्धांत कि ''प्रत्येक मामले का विश्लेषण किया जाना चाहिए और दंड की समुचितता प्रत्येक मामले के आधार पर विनिश्चित की जानी चाहिए'' का अनुसरण करते हुए मैं न्याय का उद्देश्य प्राप्त करने हेतु दंड के अनुपात में सामंजस्य बनाए रखना आवश्यक महसूस करती हूँ। अतः, इंदर गोप द्वारा दिए गए गंभीर उपहति के अतिरिक्त पीड़ित के शरीर पर केवल एक खरोंच है इस तथ्य पर विचार करते हुए दांडिक अपील सं॰ 624 वर्ष 2004 के अपीलार्थीगण अर्थात् (1) धनेश्वर गोप, (2) गौतम गोप, (3) जंगरु गोप, (4) हरिगोप को विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए सात वर्षों के सश्रम कारावास की सजा को चार वर्षों के सश्रम कारावास की सजा में घटाती हूँ। यह कहना अनावश्यक होगा कि धारा 428 दं॰ प्र॰ सं॰ के अनुसार अपीलार्थीगण द्वारा भुगते गए निरोध की अवधि कारावास की सजा के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा। चूँकि दांडिक अपील सं॰ 624 वर्ष 2004 में पूर्वोक्त चारों अपीलार्थीगण जमानत पर हैं, उनका जमानत रद्द किया जाता है और उन्हें दंड का शेष भाग भुगतने का निर्देश दिया जाता है।

19. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, इस निर्णय के पैरा 17 में उल्लिखित दंड के पूर्वोक्त उपान्तरण के साथ दांडिक अपील सं॰ 646 वर्ष 2004 को खारिज किया जाता है। जहाँ तक दांडिक अपील सं॰ 624 वर्ष 2004 का संबंध है, अपीलार्थी सं॰ 2 अर्थात् खारु गोप को अनुज्ञात और दोषमुक्त किया जाता है और अन्य अपीलार्थीगण अर्थात् अपीलार्थी सं॰ 1 धनेश्वर गोप, (3) गौतम गोप, (4) जंगरु गोप और (5) हरि गोप के लिए उक्त अपील विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दंड में पूर्वोक्त उपान्तरण के साथ खारिज किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

श्रीमती शालिनी केशरी उर्फ शालिनी कुमारी केशरी

बनाम

मिन्टु केशरी

F.A. No. 42 of 2009 dated 6th January, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 9, नियम 13—एकपक्षीय डिक्री का अपास्त किया जाना–तलाक के एकपक्षीय डिक्री को चुनौती–अपीलार्थी पर नोटिसें वैधतापूर्वक तामील नहीं की गयी थीं–केवल सामान्य प्रक्रिया और रजिस्टर्ड डाक द्वारा नोटिस तामील न होने पर ही समाचार-पत्र में प्रकाशन द्वारा नोटिस की तामीला किया जाना अंतिम अवलम्ब है–समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा नोटिस की तामीला के लिए आदेश पारित करने के पहले न्यायालय को कारण दर्ज करना होगा कि तामीला से बचने के उद्देश्य के लिए प्रतिवादी सामने नहीं आ रहा है–वैवाहिक मामलों में, नोटिस की तामीला करने के मामले में न्यायालय को काफी सतर्क और चौकन्ना रहना चाहिए–चूँकि नोटिसें वैधतापूर्वक तामील नहीं की गयी थी, एकपक्षीय डिक्री को विधि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता है–अपील अनुज्ञात। (पैरा 5 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Kashi Nath Roy, For the Appellant; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondent.

आदेश

पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और उनकी सहमति से ग्रहण के चरण पर ही अपील निपटायी जा रही है।

2. अपीलार्थी-पत्नी ने वैवाहिक वाद सं॰ 161 वर्ष 2007 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा पारित एकपक्षीय निर्णय एवं डिक्री को चुनौती दी है जिसके द्वारा उन्होंने प्रत्यर्थी द्वारा विवाह अकृत करने के लिए दाखिल मामले को डिक्री किया है।

3. अपीलार्थी द्वारा एकपक्षीय डिक्री को चुनौती देने का मुख्य आधार यह है कि वाद में नोटिस समुचित रूप से और वैधतापूर्वक तामील नहीं किया गया है। अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी ने अवर न्यायालय से एकपक्षीय डिक्री जल्दबाजी में ले ली और छः माह बीतने के तुरन्त बाद शादी कर ली।

4. नोटिस के वैध तामीला के संबंध में, हमें संतुष्ट करने के लिए, अवर न्यायालय से अभिलेख मंगाए गए। अवर न्यायालय के अभिलेख के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी द्वारा दिनांक 2.7.2007 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12 के अधीन आवेदन दाखिल की गयी थी और वैवाहिक वाद सं॰ 161 वर्ष 2007 के तौर पर दर्ज की गयी थी। अगली तिथि अर्थात् 7.7.2007 पर, अवर न्यायालय ने शेरिस्तेदार की रिपोर्ट का परिशीलन किया और वाद ग्रहण किया और प्रत्यर्थी-पति को नोटिस की तामीला के लिए अपेक्षित वस्तुएँ दाखिल करने का निर्देश देते हुए दिनांक 28.8.2007 तक मामला स्थगित कर दिया। यद्यपि सामान्य प्रक्रिया द्वारा भेजी गयी नोटिसों की तामीला नहीं हो पाया था, अवर न्यायालय ने स्थानीय समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशित करने का आदेश दिनांक 28.8.2007 को दिया। बेहतर अधिमूल्यन हेतु प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा दिनांक 7.7.2007, 9.7.2007 एवं 28.8.2008 को पारित आदेश यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किए जाते हैं:-

> ***7.7.2007*** *को याची अनुपस्थित है लेकिन अधिवक्ता के माध्यम से हाजिरी दी गयी है। स्वीकार किए जाने के बिन्दु पर सुना गया शेरिस्तेदार के रिपोर्ट का परिशीलन किया। ''याचिका क्रम में है।''*
>
> *अतः यह मामला ग्रहण किया जाता है।*

28.8.2007 को प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थिति के लिए रखा जाय। याची को आदेशिका शुल्क, अपेक्षित वस्तुयें दाखिल करनी है, इसके उपरांत प्रत्यर्थी पर नोटिस की तामीला की जानी है।

9.7.2007 *को अपीलार्थी की ओर से प्रक्रिया शुल्क अपेक्षित वस्तुओं के साथ दाखिल किया गया है। वि० प० को कार्यालय नोटिस जारी करे।*

28.8.2007 *को आवेदक उपस्थित है और याची के व्यय पर दैनिक समाचार पत्र में नोटिस प्रकाशित करने के लिए वहाँ उसमें कथन करते हुए हाजिरी दाखिल की है।*

प्रत्यर्थी की उपस्थिति हेतु दिनांक 22.9.2007 मुकर्रर किया जाता है। आवेदक को एक सप्ताह के भीतर अपेक्षित वस्तुएँ दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है।

5. यहाँ इसमें ऊपर उद्धृत आदेशों से, यह पूरी तरह स्पष्ट है कि अपीलार्थी पर नोटिस वैधतापूर्वक तामील नहीं की गयी थी। यह सुनिश्चित है कि सामान्य प्रक्रिया और रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा नोटिस तामील नहीं होने के बाद ही समाचार पत्र में प्रकाश द्वारा नोटिस की तामीला किया जाना अंतिम अवलंब है। समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा नोटिस की तामीला करने के लिए आदेश पारित करने से पहले न्यायालय को कारण दर्ज करना होगा कि तामील से बचने के उद्देश्य से प्रतिवादी सामने नहीं आ रहा है और इस कारण सामान्य प्रक्रिया द्वारा नोटिस तामील करना व्यावहारिक नहीं है। प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय (श्री अनिल कुमार चौधरी) को या तो नोटिस की तामीला करने की प्रक्रिया की प्रारंभिक जानकारी नहीं है अथवा उन्होंने जल्दबाजी में आदेश पारित किए हैं जिसका कारण केवल उन्हीं को ज्ञात है। विशेषत: वैववाहिक मामलों में, नोटिस की तामीला करने के मामले में न्यायालय को बहुत सावधान और सतर्क रहना चाहिए।

6. चाहे जो भी हो, चूँकि नोटिसों को वैधतापूर्वक तामील नहीं किया गया था, अत: एकपक्षीय डिक्री विधि में मान्य नहीं ठहरायी जा सकती है।

7. पूर्वोक्त कारणों से, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है और अवर न्यायालय द्वारा पारित एकपक्षीय डिक्री अपास्त की जाती है और मामले को फिर से सुनने के लिए प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, जमशेदपुर को वापस भेजा जाता है। अपीलार्थी-पत्नी लिखित कथन दाखिल करने और वाद का प्रतिवाद करने हेतु स्वतंत्र है।

8. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अपीलार्थी जो न्यायालय में उपस्थित है, प्रत्यर्थी के साथ रहने के लिए सदैव इच्छुक और तैयार है और इसलिए, विवाह के लंबित रहने के दौरान उसे भरण-पोषण दिया जाना चाहिए।

9. हमारी दृष्टि में, विवाद के लंबित रहने के दौरान भरण-पोषण पाने के लिए अपीलार्थी को अवर न्यायालय में याचिका दाखिल करनी चाहिए जिसपर अवर न्यायालय विचार करेंगे।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

छोटा बिरसा ओराँव

बनाम

भारत कोकिंग कोल लि॰, धनबाद, अध्यक्ष-सह-प्रबन्ध निदेशक के माध्यम से एवं अन्य

WP(S) No. 496 of 2007. Decided on 11th December, 2009.

श्रम एवं औद्योगिक विधि-सेवानिवृत्ति-उम्र-जन्म तिथि को लेकर विवाद-फॉर्म B रजिस्टर अभिलेख का एक समूह गठित करता है जो याची की जन्म तिथि (15.2.1947) दर्शाता है-याची अभिलेखों का दो समूह, खनन सरदार प्रमाण पत्र एवं अपना विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र लेकर आया है, दोनों उसकी जन्म तिथि को 6.2.1950 के तौर पर इंगित कर रहे

हैं–याची के दावे को मात्र इस कारण से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसने फॉर्म B रजिस्टर पर इसे खोले जाते समय हस्ताक्षर किया था एवं उसमें जन्म तिथि की प्रविष्टि उसमें अभिलिखित के तौर पर शामिल है–यद्यपि याची का अपनी सेवा पुस्तिका में अन्य विशिष्टियों में त्रुटि सुधारे जाने के दावे की अभिस्वीकृति दी गई थी परन्तु जन्म तिथि में सुधार की उसकी मांग पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया था–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 8 से 12 एवं 14)

निर्णयज विधि.–LPA No. 18 of 2000—Distinguished; LPA No. 296 of 2006—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने इस रिट याचिका में, प्रोजेक्ट अधिकारी, बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के जमुनिया ओ॰ सी॰ पी॰ क्षेत्र (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा पारित दिनांक 2.8.2006 के उस आदेश (परिशिष्ट-6) के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है, जिसके द्वारा उसके सेवा अभिलेखों में प्रविष्ट उसकी जन्मतिथि 15.2.1947 के आधार पर याची को संसूचना दी गयी थी कि वह दिनांक 28.2.2007 के प्रभाव से अधिवर्षिता प्राप्त करेगा।

3. संक्षेप में याची के मामले के तथ्य निम्नलिखित है:–

माइनर लोडर के पद पर दिनांक 31.1.1973 को प्रत्यर्थी–बी० सी० सी० एल० के जमुनिया ओपेन कास्ट प्रोजेक्ट की सेवा में याची को नियुक्त किया गया था।

उसकी नियुक्ति के समय, उसकी जन्मतिथि, जिसे 15.2.1947 दर्ज किया गया था, सहित उसके व्यक्तिगत सूचना के विवरण उल्लिखित करते हुए उसका सेवा अभिलेख खोला गया था।

याची वर्ष 1986 में, माइनिंग सरदारशिप में उत्तीर्ण हुआ और उसे माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र दिया गया था जिसमें उसकी जन्मतिथि 6.2.1950 दर्ज की गयी थी। यह जन्मतिथि दिनांक 12.10.1979 को दर्ज विद्यालय स्थानांतरण प्रमाण पत्र के अभिलेख के अनुकूल थी।

वर्ष 1987 में, नेशनल कोल वेज एग्रीमेन्ट–III में अंतर्विष्ट क्रियान्वयन अनुदेश सं० 76 के अनुसरण में और अपने कर्मचारियों के सेवा अभिलेखों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उनके सेवा अभिलेखों के विवरणों को अंतर्विष्ट करते हुए नाम निर्देशिति फॉरम कर्मचारियों को दिए गए थे। याची को भी उसका नामनिर्देशन फार्म दिया गया था और उसका परिशीलन करने पर उसने पाया कि फॉरम-B में दर्ज किए गए उसके पिता के नाम उसका स्थायी पता और नियुक्ति की तिथि के संबंध में विवरण गलत थे। उसने फॉर्म-B रजिस्टर में की गयी गलत प्रविष्टियों पर अपनी शिकायत की और आवश्यक शुद्धिकरण किए जाने की प्रार्थना की। अन्य शुद्धिकरणों के अतिरिक्त, याची ने विनिर्दिष्टतः कथन किया कि उसकी जन्मतिथि माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र में दर्ज तिथि की तरह 6.2.1950 है और तद्नुसार सेवा अभिलेखों में की गयी गलत प्रविष्टि को शुद्ध किया जाना चाहिए।

याची की आपत्ति प्राप्त होने पर, प्रोजेक्ट अधिकारी, जमुनिया ओपेन कास्ट प्रोजेक्ट (प्रत्यर्थी सं० 5) ने सेवा अभिलेखों में याची के व्यक्तिगत विवरणों में आवश्यक शुद्धिकरण करने के लिए संबंधित प्राधिकारियों को याची की आपत्तियाँ अग्रसर कर दी।

याची को बाद में ज्ञात हुआ कि यद्यपि फॉर्म-B रजिस्टर में उसके पिता का नाम और स्थायी पता सही कर दिया गया था, लेकिन उसकी जन्मतिथि और नियुक्ति तिथि को सही नहीं किया गया था। उसने अपने प्रोजेक्ट अधिकारी (प्रत्यर्थी सं० 5)

के समक्ष नया अभ्यावेदन दिया, और जब उसकी शिकायत दूर नहीं की गयी तो उसने अपने यूनियन के माध्यम से विवाद उठाया, जिसने भी माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र के आधार पर याची की जन्मतिथि की प्रविष्टि को सही करने के लिए संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष दबाव बनाया था।

बार-बार कहे जाने पर भी, उसके सेवा अभिलेखों में उसकी जन्मतिथि की तात्पर्यित गलत प्रविष्टि को प्रत्यर्थीगण ने सही नहीं किया और इसके बजाय दिनांक 28.2.2007 के प्रभाव से अधिवर्षिता का आक्षेपित नोटिस तामील किया, हालांकि याची के अनुसार, दिनांक 28.2.2010 को ही वह अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करता।

4. आक्षेपित आदेश का आलोचना करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि नेशनल कोल वेज एग्रीमेन्ट-III के अधीन दर्ज संयुक्त द्विपक्षीय करार के निबंधनों के अनुसार कर्मचारी की जन्मतिथि के प्रमाणस्वरुप विद्यालय परित्याग प्रमाणपत्र एवं माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र को प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रामाणिक दस्तावेज माना जाना होगा, जब तक कि इन्हें अवास्तविक प्रमाण पत्र के तौर पर विवादित न किया जाए। प्रत्यर्थीगण ने प्रमाण पत्र की वास्तविकता पर विवाद नहीं किया है और इसलिए, वे इसे स्वीकार करने और उसके सेवा अभिलेखों में याची की जन्मतिथि की प्रविष्टि सही करने के लिए बाध्य है।

विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि यह वैसा मामला नहीं है जहाँ याची ने अपनी सेवा के अंतिम दौर में विवाद उठाया है। बल्कि उस समय भी जब उसे वर्ष 1987 में उसका नाम निर्देशन फॉर्म दिया गया था, जिससे उसने पाया कि प्रविष्टियाँ गलत थी, उसने गलत प्रविष्टियों पर आपत्ति जताते हुए और शुद्धिकरण की मांग करते हुए विरोध दर्ज किया था लेकिन यद्यपि याची के पिता के नाम और स्थायी पता के संबंध में शुद्धिकरण कर दिया गया था लेकिन जन्मतिथि और याची की सेवा में शामिल होने की तिथि से संबंधित शुद्धियाँ नहीं की गयी थी और ऐसी शुद्धियों को इंकार करने के लिए कोई कारण भी नहीं दिया गया है।

5. प्रतिशपथ पत्र में, प्रत्यर्थीगण ने याची के समस्त दावे को इंकार किया है और विवाद उठाया हैं। प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया दृष्टिकोण यह है कि याची की जन्मतिथि 15.2.1947 अंतर्विष्ट करता सांविधिक फार्म B रजिस्टर उसकी जन्मतिथि का अंतिम प्रमाण है। किसी कर्मचारी की जन्मतिथि के विनिश्चय के संबंध में माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र कुछ नहीं कर सकता है। फॉर्म B रजिस्टर न सिर्फ याची का फोटोग्राफ बल्कि उसका हस्ताक्षर भी अंतर्विष्ट करता है, जो संपुष्ट करेगा कि याची ने अपनी जन्मतिथि की प्रविष्टि जानकारी में सही स्वीकृत की है और उस पर अपना हस्ताक्षर भी किया है। इस प्रकार, याची 20 वर्ष बाद और वह भी अपनी सेवा के अंतिम दौर में विवाद नहीं उठा सकता है।

6. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन ने तर्क किया कि एन० सी० डब्ल्यू० ए०-III का क्रियान्वयन अनुदेश सं० 76 याची के मामले पर लागू नहीं होता है, चूँकि उसकी जन्मतिथि और अधिवर्षिता की नोटिस प्राप्त करने पर सेवा से पहले ही अधिवर्षित होने की तिथि में कोई फर्क नहीं है। विलम्ब से दायर रिट याचिका इस प्रकार पोषणीय नहीं है। इसके अतिरिक्त, याची, यदि वह व्यथित है, तो उसके पास औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन औद्योगिक विवाद उठाकर अपने दावे के प्रतितोष के लिए वैकल्पिक उपाय है।

7. पूरक प्रतिशपथ पत्र द्वारा प्रत्यर्थीगण ने स्पष्ट करना इप्सित किया है कि याची को मधुबन कोलियरी से जमुनिया ओपेन कास्ट प्रोजेक्ट में स्थानान्तरित कर दिया गया था और उसके सेवा उद्धरण मधुबन से बरोरा क्षेत्र सं० 1 को दिनांक 10.12.1983 को अंतरित कर दिए गए थे और तत्पश्चात्, याची की उपस्थिति में फॉर्म-B रजिस्टर उसकी जन्मतिथि 15.2.1947 दर्ज करते हुए खोला गया था और याची द्वारा इसे अभिस्वीकृत किया गया था जिसने इसपर अपना हस्ताक्षर भी किया और इसे उसके द्वारा विवादित नहीं किया जा सकता है और न ही परिवर्तित किया जा सकता है।

अपने तर्कों के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता **मेसर्स सेन्ट्रल कोल फील्ड लि॰ बनाम जमुनावाली मियाँ एवं अन्य, एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 18 वर्ष 2000** में पारित इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय पर विश्वास किया है और इसे निर्दिष्ट किया है।

8. तर्कों को सुनने और अभिलेखों का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि याची को बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के मधुबन कोलियरी में माइनिंग सरदार के पद पर दिनांक 1.5.1973 को सेवा में प्रथम नियुक्त किया गया था और 10 वर्ष बाद उसे जमुनिया ओपेन कास्ट प्रोजेक्ट में स्थानांतरित कर दिया गया था। उसने वर्ष 1986 में माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र प्राप्त किया जिसमें दिनांक 12.10.1979 को जारी विद्यालय स्थानान्तरण प्रमाण पत्र के आधार पर उसकी जन्मतिथ 6.2.1950 दर्ज की गयी थी। यह तथ्य सूचित करता है कि याची पूर्णत: अनपढ़ व्यक्ति नहीं था। प्रत्यर्थीगण की घोषणानुसार फॉर्म-B रजिस्टर सहित सेवा अभिलेख दिसम्बर, 1973 में उस समय खोला गया था जब उसने स्थानांतरण पर जमुनिया ओपेन कास्ट प्रोजेक्ट में सम्मिलित हुआ था। उसकी जन्म तिथि 15.2.1947 दर्ज करता हुआ फॉर्म-B रजिस्टर अविवादित रूप से उसका हस्ताक्षर किया था। इस प्रकार, याची की जन्मतिथि को उपदर्शित करता फॉर्म-B रजिस्टर अभिलेख का एक समूह है। दूसरी ओर, याची ने अन्य दो अभिलेख संवर्गों अर्थात् माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र और विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र को प्रस्तुत किया है जो दर्शाता है कि उसकी जन्मतिथि 6.2.1950 है।

9. याची को अपनी जन्मतिथि और अन्य विशिष्टियों को दर्ज करने में उसके सेवा अभिलेख में प्रविष्टि की शुद्धता पर विवाद करने का अवसर वर्ष 1987 में मिला था जब उसे सत्यापन के लिए और आवश्यक सूचना देने के लिए उसे नाम निर्देशन फॉर्म दिया गया था। जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है, एन॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰-III और वहाँ उसमें अंतर्विष्ट कार्यान्वयन अनुदेश सं॰ 76 के निबंधनों के अधीन एक आवेदन के माध्यम से प्रत्यर्थीगण-बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा अपने कर्मचारियों को नामनिर्देशन फॉर्म दिया गया था। अपने कर्मचारियों के सेवा अभिलेखों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए और उनके अपने-अपने सेवा अभिलेखों में किए गए प्रविष्टियों के संबंध में कर्मचारियों द्वारा उठाए गए विवादों के समाधान हेतु नियोक्ता द्वारा यह काम किया गया था। कार्यान्वयन अनुदेश सं॰ 76 अपने कर्मचारियों की जन्मतिथि के अवधारण सत्यापन के लिए प्रक्रिया विनिर्दिष्ट करता है और अधिकथित करता है कि नन-मैट्रिकुलेट के मामले, जैसा कि वर्तमान याची का मामला है, में विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र में दर्ज जन्म तिथि सही जन्मतिथि मानी जाएगी। सांविधिक माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र और वाइंडिंग इंजीनियर प्रमाण पत्र पर बराबर जोर देते हुए अधिदेश प्रक्रिया देती है कि ऐसे सांविधिक प्रमाण पत्रों में दर्ज जन्म तिथि की प्रविष्टि प्रामाणिक मानी जाएगी। इन प्रमाण पत्रों का निर्देश स्पष्टत: उनके सेवा अभिलेखों में उनकी जन्मतिथि की प्रविष्टि से संबंधित कर्मचारियों द्वारा उठाए गए विवादों के संदर्भ में है और मार्गनिर्देश देती है कि कैसे इन विवादों को संबोधित किया जाए।

10. प्रत्यर्थीगण यह दावा नहीं कर सकते है कि याची ने अपनी सेवा के अंतिम दौर में पहली बार अपना विवाद उठाया है। उलटे तथ्य उपदर्शित करते हैं कि अपने कब्जे में रखे गए प्रमाण पत्रों के आधार पर वर्ष 1987 में ही उसे विवाद उठाने का अवसर मिला था। प्रत्यर्थीगण से आशा की जाती थी कि वे कार्यान्वयन अनुदेश से मार्गदर्शन प्राप्त कर याची द्वारा उठाए गए विवाद का प्रत्युत्तर देंगे और संतुष्ट नहीं होने पर, परिस्थितियों के अधीन जैसा भी वे उचित समझे आगे जाँच करेंगे। उल्टे यह प्रकट है कि यद्यपि अपने सेवा अभिलेखों में अन्य विशिष्टियों के शुद्धिकरण के याची के दावे को अभिस्वीकृत किया गया था, परन्तु, जन्मतिथि के शुद्धिकरण की उसकी मांग पर विचार नहीं किया गया था और न ही कोई कारण दिया गया था कि सांविधिक माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र और विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र के आधार पर शुद्धि क्यों नहीं की गयी थी।

11. अपनी जन्मतिथि सहित अपने सेवा अभिलेखों में अंतर्विष्ट प्रविष्टियों के शुद्धिकरण इप्सित करने का लाभ अन्य कर्मचारियों की तरह याची को भी देने पर याची के दावे से सिर्फ इस आधार पर कि उसने वहाँ दर्ज जन्मतिथि की प्रविष्टि अंतर्विष्ट करता हुआ फॉर्म-B रजिस्टर खोले जाते समय उस पर हस्ताक्षर किया था, इंकार नहीं किया जा सकता है। **गोमती बाइ बनाम बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ एवं अन्य, (एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 296 वर्ष 2006)** के मामले में, इस न्यायालय की खंड पीठ को ऐसे ही समरुप विवाद्यक पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ था जहाँ जन्मतिथि की प्रविष्टि अंतर्विष्ट करके विभाग द्वारा अनुमोदित दस्तावेज कर्मचारियों के सेवा अभिलेखों में दर्ज जन्मतिथि से भिन्न थे। चूँकि ऐसे दस्तावेज वर्ष 1987 के पहले के थे, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि जब दस्तावेज उपलब्ध थे, तब वास्तविक जन्मतिथि की गणना करने से पहले कर्मचारी द्वारा उठाए गए विवाद पर नियोक्ता को जाँच संचालित करना चाहिए था।

12. वर्तमान मामले में भी, सांविधिक माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र याची द्वारा वर्ष 1986 में प्राप्त किया गया था और उसमें दर्ज की गयी जन्मतिथि, उसको वर्ष 1979 में जारी विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र के आधार पर आधारित थी। इन दोनों दस्तावेजों को याची की विरोध याचिका के साथ-साथ उसके उच्चतर अधिकारियों द्वारा संबंधित विभाग को पृष्ठांकित और अग्रसर किया गया था और यह नियोक्ता के पास भी उपलब्ध था। नियोक्ता द्वारा विवाद की जाँच की जानी चाहिए थी और तब कारण बताना था कि उसकी जन्मतिथि से संबंधित सेवा अभिलेखों में प्रविष्टियों के शुद्धिकरण से क्यों इंकार किया गया था।

13. मेसर्स सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लि॰ बनाम जूनावाली मियाँ एवं अन्य (ऊपर) के मामले में निर्दिष्ट तथ्य वर्तमान मामले के तथ्य पर लागू नहीं होंगे क्योंकि वर्ष 1986 में कर्मचारी को जारी पहचान-पत्र में की गयी कुछ प्रविष्टि के आधार जन्मतिथि की प्रविष्टि के शुद्धिकरण की मांग को करते हुए विवाद उठाया गया था और स्वीकृत तौर पर ऐसा विवाद सेवा के अंतिम दौर में उठाया गया था। इसके विपरीत, वर्तमान मामले में, दो प्रासंगिक दस्तावेजों अर्थात् सांविधिक माइनिंग सरदार प्रमाण पत्र और विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र के आधार पर विवाद उठाया गया है और इसके अतिरिक्त ऐसा विवाद सेवा के अंतिम दौर में नहीं बल्कि अधिवर्षिता की घोषित तिथि के दस वर्षों से भी अधिक पहले उठाया गया था।

14. उक्त चर्चा के प्रकाश में और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में, मैं इस याचिका में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 2.8.2006 का आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-6) अभिखंडित किया जाता है। एन॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ III के कार्यान्वयन अनुदेश सं॰ 76 के अनुकूल, उसके सेवा अभिलेखो में उसकी जन्म तिथि से संबोधित की गयी प्रविष्टि के शुद्धिकरण हेतु उसके दावे पर याची द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्रों के आधार पर इस आदेश की तिथि से तीन महीने के भीतर प्रत्यर्थीगण जाँच संचालित करेंगे और कारण बताते हुए लिए गए निर्णय को याची को प्रभावपूर्वक संसूचित करेंगे।

15. इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण को दी जाए।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

विष्णु देव सिंह एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr.M.P. No. 265 of 2007. Decided on 15th December, 2009.

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धारा 7 सह-पठित विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 की धारा 3/4—संज्ञान–काला बाजार में एल॰ पी॰ जी॰ रिफिल का बेचा जाना–एल॰ पी॰ जी॰ सिलिण्डर बरामद किए गए–याची के पास एल॰ पी॰ जी॰ वितरण लाइसेन्स के साथ विस्फोटक विभाग का विस्फोटक लाइसेन्स भी था–याची द्वारा विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करने का अभिकथन नहीं–साक्ष्य निर्दिष्ट नहीं कर सका कि कालाबाजार में एल॰ पी॰ जी॰ सिलिण्डर बेचने में याची का हाथ था–अभियुक्त पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा यदि संज्ञान लेते समय उसके द्वारा अभिकथित तौर पर किए गए अपराध के लिए विधि के दांडिक प्रावधानों को उसके समक्ष प्रकट नहीं किया जाता है–ई॰ सी॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंड देने के लिए याचीगण द्वारा अभिकथित तौर पर उल्लंघित किए गए नियंत्रण आदेश अथवा एकीकरण आदेश के प्रावधानों को विनिर्दिष्ट करने और दर्शाने में अभियोजन विफल रहा–आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैरा 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeeva Sharma, For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, For the State.

आदेश

विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, साहेबगंज द्वारा पारित दिनांक 6.11.2006 के उस आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा साहेबगंज (टी॰) पी॰ एस॰ केस सं॰ 178 वर्ष 2005, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 401 वर्ष 2005, में आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 7 के अधीन और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी उनके विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन हेतु याचीगण ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का अवलम्ब लिया है।

2. साहेबगंज पुलिस थाना के अधिकारी-प्रभारी के समक्ष सूचक प्रखंड विकास पदाधिकारी, साहेबगंज द्वारा प्रस्तुत उस लिखित रिपोर्ट के आधार पर अभियोजन प्रारंभ किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ कथन किया गया था कि उसने दिनांक 18.11.2005 को सूचना प्राप्त की थी कि स्थानीय एल॰ पी॰ जी॰ वितरक अर्थात् श्री विष्णु देव सिंह अपने कर्मचारीगण की सहायता से कालाबाजार में एल॰ पी॰ जी॰ रिफिल बेच रहा था। पुलिस बल सहित कार्यपालक दंडाधिकारी, जिला आपूर्त्ति अधिकारी और कई अन्य अधिकारियों से मिल कर बनी टीम छापामारी करने के लिए गठित की गयी थी। यह अभिकथन किया गया था कि बेनी प्रसाद टाँटी यद्यपि भाग गया था लेकिन तलाशी के दौरान इण्डेन गैस के तीन भरे हुए एल॰ पी॰ जी॰ सिलिण्डर बरामद किए गए थे जिसका कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका था। लेकिन उक्त बेनी प्रसाद टाँटी की पत्नी ने कथन किया कि ये सिलेन्डर उसके घर में उसके पड़ोसी शम्भू प्रसाद गुप्ता द्वारा रखे गए थे जो स्थानीय गैस वितरक अर्थात् श्री विष्णु देव सिंह का कर्मचारी था। उस स्थान से छापामार दल स्थानीय वितरक याची सं॰ 1 श्री विष्णु देव सिंह के आवासीय कार्यालय गया लेकिन यह अभिकथन किया गया था कि वह अपना कार्यालय बन्द कर भाग गया था और उसके परिवार के सदस्यों ने गैस सिलिण्डर का कूपन प्रस्तुत करके जाँच में कोई मदद नहीं किया। वरिष्ठ अधिकारियों की उपस्थिति में उसका कार्यालय सील कर दिया गया और अंतत: यह अभिकथन किया गया था कि याची सं॰ 1 श्री विष्णु देव सिंह ने कर्मचारीगण की सहायता से याची सं॰ 3 बेनी प्रसाद टाँटी के घर में तीन भरा सिलिण्डर रखा ताकि सिलिण्डरों को काला बाजार में बेचा जा सके। आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के अधीन भी तीनों याचीगण के विरुद्ध कार्रवाई करने की प्रार्थना की गयी थी।

3. आरंभ में ही, विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री राजीव शर्मा निवेदन करते है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन अथवा विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याचीगण का दांडिक अभियोजन पोषणीय नहीं है और इस कारण समस्त अभियोजन अभिखंडित किए जाने योग्य है। विद्वान वरीय अधिवक्ता आगे निवेदन करते है कि बिना यह विनिर्दिष्ट किये कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन विरचित नियंत्रण आदेश अथवा एकीकरण आदेश के किस प्रावधान का उल्लंघन याचीगण द्वारा किया गया है ताकि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन उन्हें दंड दिया जा सके, ऐसी धाराओं के अधीन अपराध का संज्ञान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने लिया है।

4. स्वीकृत तौर पर, याची सं० 1 ने इंडेन कम्पनी से एल० पी० जी० सिलेन्डर के वितरण हेतु लाइसेन्स प्राप्त किया था और उप प्रमुख विस्फोटक नियंत्रक, विस्फोटक विभाग, भारत सरकार से भी लाइसेन्स प्राप्त किया था जिसे 31.3.2006 तक नवीकृत किया गया था जैसा इस याचिका के परिशिष्ट-2 से प्रकट होगा। एल० पी० जी० सिलिण्डर के वितरण हेतु विस्फोटक अधिनियम, न कि विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के अधीन लाइसेन्सी को ऐसे लाइसेन्स दिए जाते थे, अतः विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के अधीन याचीगण का अभियोजन करना घोर अन्याय होगा जब ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि विस्फोटक पदार्थ का प्रयोग कर विस्फोटक कारित करने की बात तो दूर, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन किया गया है समस्त अभिकथन गलत है और साक्ष्य निर्दिष्ट नहीं कर सका है कि इन्डेन एल० पी० जी० सिलिण्डर कालाबाजर में बेचने में याचीगण का हाथ है।

5. मैं याचीगण की ओर से दिए गए तर्कों में सार पाता हूँ कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंड देने के लिए याचीगण द्वारा अभिकथित तौर पर उल्लंघन किए गए नियंत्रण आदेश अथवा एकीकरण आदेश के प्रावधानों को विनिर्दिष्ट करने और दर्शाने में अभियोजन विफल रहा है। यह एक सुनिश्चित विधि है कि अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा यदि संज्ञान लेते समय उसके द्वारा अभिकथित तौर पर किए गए अपराध के लिए विधि के दांडिक प्रावधान को प्रकट नहीं किया जाता है। मैं अभिलेख से पाता हूँ कि न तो सूचक और नहीं विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने याचीगण द्वारा अभिकथित तौर पर उल्लंघित किए गए आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन विरचित विधि के ऐसे प्रावधान को विनिर्दिष्ट और प्रकट किया है ताकि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंड दिया जा सके। इसी प्रकार, तथ्यों और परिस्थितियों से मैं पाता हूँ कि उक्त अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अभिकथित अपराध की बात तो दूर, याचीगण ने विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन नहीं किया है और इसलिए यहाँ इसमें पहले निर्दिष्ट उन धाराओं में लिए गए अपराध के संज्ञान को किसी भी याचीगण के विरुद्ध प्रासंगिक नहीं पाता हूँ। परिणामस्वरूप मैं संप्रेक्षित करता हूँ कि उनका दांडिक अभियोजन स्पष्ट रूप से न्याय के उल्लंघन में होगी।

6. मैं इस याचिका में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 7 के अधीन और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी अभिकथित अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध साहेबगंज (टी०) पी० एस० केस सं० 178 वर्ष 2005 तत्सम जी० आर० सं० 401 वर्ष 2005 में दर्ज दिनांक 6.11.2006 के संज्ञान के आक्षेपित आदेश को अभिखंडित किया जाता है और याचिका अनुज्ञात की जाती है।